

यौवन के द्वार पर चरण रखते ही रूप से हमारा परिचय होता है। रूप-दर्शन से होता है आकर्षण। आकर्षण चाहता है मिलन। मिलन में देरी होती है तो उत्पन्न होती है विह्वलता। इन स्थितियों को प्रत्येक नवयुवक और प्रत्येक नवयुवती को एक बार अपने जीवन में पार करना पड़ता है, परन्तु आश्चर्य की बात है कि यौवन और रूप के वातावरण में रात-दिन साँस लेने पर भी यदि हमसे कोई प्रश्न करे, यौवन क्या है? रूप क्या है? प्रेम क्या है? तो शायद ही हम कोई उत्तर दे सकें।

भावनाओं के आन्दोलन के थक जाने पर एक दिन आता है जब प्रश्न उठता है, आखिर यौवन क्या है? रूप क्या है? और क्या है ईश्वर? क्या यौवन और रूप का कोई सम्बन्ध है? क्या रूप और ईश्वर किसी सम्बन्ध-सूत्र में बँधे हुए हैं? पर यौवन, रूप, प्रेम और ईश्वर चिंतन के ही विषय नहीं, भावनाओं के विषय भी हैं। इस उपन्यास में एक मार्मिक कहानी के आधार पर इन्हीं चिर-परिचित विषयों को स्पष्ट किया गया है। उपन्यास के पात्रों में रानी है, न्याय मंत्री है, पुजारी है, कवि है, विद्यार्थी है, डाक्टर है, और हैं कुछ रूपवती कोमल-हृदया बालिकाएँ। इनमें से सब रूप और ईश्वर को समझना चाहते हैं, परन्तु किसने कितनी गहराई से इन्हें समझा, यह उपन्यास को पढ़कर ही जाना जा सकता है।

'रूप और ईश्वर' अध्यात्म का ग्रन्थ नहीं, एक उपन्यास है, ऐसा उपन्यास जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक आपको उत्सुकता की डोर से बाँधे रहेगा और रस के छींटों से बराबर सिक्त करेगा।

रूप और ईश्वर

लेखक

धर्मेंद्र

किताब महल, इलाहाबाद

बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, भोपाल, हैदराबाद

१९६०

द्वितीय संस्करण, १६६०

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ जीरो रोड, इलाहाबाद।

१

सूर्य पश्चिमी क्षितिज पर स्थित हो कर अपनी अन्तिम किरणों से झुककर पृथ्वी को नमस्कार कर रहे थे। दूसरी ओर चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से तारक-मण्डल की कार्यात्मक-प्रणाली का निरीक्षण करने के लिये उदयाचल पर आ चुका था। क्षितिज पर प्रकाश की प्रगाढ़ नीलिमा धीरे-धीरे अपना प्रभाव फैला रही थी। वायु गतिहीन होकर पथिकों का सन्देश कहने के लिये ठहर गया था। उस गोधूलि बेला में रँभाती हुई गाएँ महानदी के कछार से अपने भूपतियों की अट्टालिकाओं की ओर दौड़ रहीं थीं। उस शान्त वातावरण में दिन भर के थके-माँदे पक्षी अपने घोसलों में विश्राम करने के लिये आ चुके थे। पथिकों का आना जाना भी वन्द हो चुका था। पूर्णिमा होने के कारण मछुए आज अपनी छोटी नावों की यात्रा पहले से ही स्थगित कर चुके थे। उनकी नावें अपने मालिकों की निराशा का द्योतक बन कर खड़ी लहरों से अठखेलियाँ कर रही थीं। शून्य की नीलिमा पृथ्वी पर उतर आई थी किन्तु समुद्र का वक्षस्थल शान्त न था। उसकी उन्मादिनी लहरें आकाश स्थित चन्द्रमा के साम्राज्य के नाश के लिये उठ उठ कर फिर शिथिल हो जाती थीं। जब वे आकाश से होड़ न ले सकीं तब उन्होंने पृथ्वी को ही अपने

क्रोध का भाजन बनाना चाहा। उत्ताल तरङ्गें पृथ्वी पर सैकड़ों गज आगे बढ़ जातीं किन्तु रत्नाकर अपने अस्तित्व को समझ कर फिर उन्हें बटोर लेता। रत्नाकर और लहरों का इस प्रकार द्वन्द-युद्ध देखकर पवन झंझा-रूप धारण करके उपस्थित होकर आगे बढ़ा। तरङ्गों ने उनका स्वागत किया। फिर क्या था। तूफान ! लहरों की विशालता !! वायु का वेग और किनारों का टकरा-टकरा कर टूटना ! महानदी का वेग उस तूफान में शून्य की भाँति लय हो गया !

कवि प्रकृति के इस दृश्य को देख कर हँस पड़ा। उसे तनिक भी विस्मय न हुआ। सम्भवतः यह उसके सामने एक खेल था। कल्पना में असंख्य तूफानों को निर्मित करके फिर नष्ट कर देने की क्षमता ने कवि को प्रकृति के इस कार्य-कलाप पर समालोचना करने के साहस को उचित ही समझा। जीवन के कण-कण में यौवन ला देने वाली हड्डियों में भी सुन्दरता का प्रदर्शन करने वाले ससीम को असीम और असीम को ससीम बना देने वाले कवि ने तूफान का स्वागत करने के लिये अपनी बाहें खोल दीं और उतुङ्गशिला से कूद कर अतल जल में उठती हुई लहरियों में वह विलीन हो गया; किन्तु तब भी लहरें शान्त न हुईं। वे कुछ और चाहती थीं। सम्भवतः भूखे मानव की तरह उन्हें भी सन्तोष न था। रात भर समुद्र की लहरों में अपार साहस बना रहा। वे चट्टानों से टकराती रहीं।

प्रातः उन्हें भी हार मान लेनी पड़ी। सूर्य की प्रथम किरणों के साथ ही उनमें कम्पन होने लगा। भय का प्रकोप इतना अधिक हुआ कि उन्होंने कवि का अर्धमूर्छित शरीर भी चट्टानों पर छोड़ दिया। सूर्य की अरुण किरणें उसे जगाने लगीं। कई बार उस मनुहार में कवि ने अँगड़ाइयाँ भी लीं किन्तु उठा नहीं। उसे अपने जीवन पर ही पश्चात्ताप हो रहा था। शरीर और प्राण अलग न

हुए उसे इसी पर विस्मय हो रहा था। अरुण किरणें कवि की उदासीनता पर प्रखर होती हुई चली जा रहीं थीं। उन्होंने चट्टान को ताप प्रदान कर के कवि पर प्रहार करना चाहा। वह प्रहार के पहले ही उठ कर बैठ गया और भर आँखें समुद्र की ओर देखता हुआ सोचने लगा कि इस विशाल उदधि में भी एक मानव को स्थान नहीं। यदि आज मैं सुखी होता तो उसकी गगन चुम्बी लहरें एक बूँद के सदृश्य मुझे भी अपने में छिपा लेतीं किन्तु मैं दुखी जो हूँ। मुझ दुखी के भार से इनमें भी दुख और पीड़ा का संचार होने न लगे—इसी से इन्होंने मुझे अपने में विलोड़ित करने से इनकार कर दिया! मूर्ख रत्नाकर तेरे गर्व को खण्ड खण्ड करके एक दिन प्रलय के पंजे तुझे भी अपने अस्तित्व की परिधि में लाने के लिये अस्तित्वहीन कर देंगे। समुद्र शान्त होकर एक आतङ्कित दास की तरह सब कुछ सुन रहा था। उसमें कल का सा गर्जन न था। वह कोलाहल न था। गर्व घट गया था। सम्भवतः अपनी भूल पर उसे खेद हो रहा था। इतने में एक झोंका समुद्र की ओर से आया! समुद्र की इस सान्त्वना को कवि स्वीकार नहीं करना चाहता था। इसलिये वह उठ कर पर्वत श्रेणी की ओर महानदी के किनारे-किनारे चल पड़ा।

कलिङ्ग की भूमि पर आज ब्रिटिश सत्ता का शासन है। न्याय के स्थान पर अन्याय का धुरा लगा कर मानव जाति का तेल निकाला जा रहा है। धर्म पर आघात, ऐश्वर्य पर आघात और रोटी पर भी आघात। रोटीवाद का युग है। रोटी के लिये ही संसार शीघ्रता से लालायित होकर एक दूसरे पर अत्याचार करने के लिये दौड़ लगा रहा है। इस सफेद चमड़ी वाली जाति में रोटी के पीछे ईश्वर के अस्तित्व को भी उखाड़ फेंकने की क्षमता है। आज कवि अपने नये गीत गाकर देश में विप्लव की चिनगारी

नहीं सुलगा सकता । उसकी शक्ति शंकर के ताण्डव नृत्य का अभिसार कर सकती थी किन्तु आज वह दो शब्द भी अपने अन्तःकरण से नहीं निकाल सकता। वह चलते हुए भी निश्चल है और बोलते हुए भी मूक । जिस ओर भी वह अपनी भुजाएँ उठा कर घुमाना चाहता है उधर ही उसे बन्धन और वज्र से भी कठिन दीवारों के समान प्रहरी रोक लेते हैं । आज वह केवल विलास के गीत गा-गाकर अपनी अन्तरात्मा को सुख पहुँचाना चाहता है। किन्तु प्रतारण में वह कब तक भूला रहेगा। उसे सत्य के निकट आना ही होगा! उसे भैरव नाद की सृष्टि करनी ही होगी ! उसे निर्जीव हड्डियों में जीवन फूँकना ही होगा । वह इनकार नहीं कर सकता । उसका परिवर्तन समुद्र की लहरों से भी विकराल होगा । उसके हृदय की लहरें आकाश ही नहीं समस्त मण्डलों को अपने में बटोर लेंगी। आज समुद्र उसे शरण नहीं दे सकता। कल वह समुद्र को शरण देगा। वह ऐसे गीत गायेगा कि संसार उसके चातुर्य पर चकित हो जायगा। किन्तु उसने अपने को लहरों को समर्पित क्यों करना चाहा ? उसमें पीड़ा क्या थी ? उसकी रागिनी में करुणा कहाँ से उमड़ पड़ी ?

हमारा कवि पूर्ण ब्रह्मचारी था। उसने कभी भी संसार के बन्धनों को प्रधानता न दी। वह स्वामी दयानन्द बनना चाहता था। उसका आदर्श धर्म था। सुख और शान्ति का कारण रोटी नहीं अपितु धर्म है। पेट की भूख ही नहीं, अपितु हृदय की भूख भी है। यह भूख कौतूहल से जागृत होती चली जाती है। कवि धर्म की परिक्रमा में सन्यास मार्ग की ओर दौड़ रहा था। संसार की नश्वरता उसकी आँखों के सामने प्रज्वलित हो उठी थी। वह ऋषि के अधूरे कार्यों को पूर्ण करने के विचारों में तल्लीन था। उसकी साधना चल रही थी। उसमें विराम न था। संसार

केवल कार्य क्षेत्र ही ज्ञात होता था। माया का विकराल रूप तपस्वी के सामने न आया। यह अवश्य था कि उसकी भावनाएँ कोमल थीं। अपनी वीणा के सप्तस्वर पर वह चितेरी प्रकृति को स्तम्भित कर देता था। वृक्ष उसकी स्थिरता देख कर अपनत्व की भावना को अपना रहे थे। कलिङ्ग की पर्वत मालाए तपस्वी से अपने अगों की तुलना करती थीं। जीवन की विषम होड़ थी।

एक दिन आकाश ने गरज कर कहा—तपस्वी तेरी साधना शीघ्र भंग कर दी जायगी।

दूसरे दिन वायु ने तूफान लाकर सूचना दी—पथिक और तपस्वी ये दोनों मेरे से ही गति पाते हैं।

बादल ने जल की धारा बहा कर कहा—इतना बड़ा विप्लव होगा कि तू मेरी धारा मे बेह जायगा।

कलिङ्ग की चोटियों ने अपने वक्षस्थल से बर्फ हटाते हुए कहा—तुम्हारी तपस्या से पृथ्वी हिलने लगेगी। तुम सचेष्ट हो जाओ! एक दिन पृथ्वी फटेगी और तुम्हारे साथ मुझे भी ले डूबेगी! तब क्या होगा!

सूर्य ने अपनी प्रखर किरणों से जल-शोषण करते हुए कहा—तूने इतने दिनों से मुझे कर नहीं दिया। तेरी साधना के कारण मैं क्षमा नहीं कर सकता। सावधान! तपस्वी! तुझे संसार में सृष्टि सृजन और पालन तथा नाश करने वाले पाँचों पदार्थ अपना-अपना संदेश देकर अन्तर्निहित हो गये हैं! मैं भी जा रहा हूँ। परीक्षा निकट है।

पीने के लिये जल भरते हुए तपस्वी ने अपना प्रतिबिम्ब महानदी में देखा। उसकी विशाल जटाएँ मस्तक छोड़कर दोनों कधों पर लटक रही थीं। बड़ी-बड़ी आँखें, विशाल भुजाएँ घड़े की

ओर झुकी हुईं, कान खड़े हुये, मुख पर स्फूर्ति और पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदे, एक क्षण को वह रुक गया। जब दृष्टि ऊपर उठाई तब देखा—हिरनों का एक जोड़ा पानी पी रहा है। तपस्वी ने भरा घड़ा रख दिया और देर तक अपने सौन्दर्य से मृगों के सौन्दर्य की तुलना करते हुए उसने कहा—यह रूप है।

तपस्वी आगे बढ़ गया। उसने निकट ही खड़े हुए मृग शावक को उठा लिया और पुचकारता हुआ फिर अपने स्थान पर आकर उसे छोड़ दिया। शावक ने तपस्वी के प्रेम को देख कर अपनी बड़ी-बड़ी कातर आँखों से कृतज्ञता प्रकट की और बड़ी देर तक उधर ही घूरता रहा। तपस्वी ने घड़े उठा लिये और अपनी पर्ण-कुटी की ओर चल पड़ा। शावक अपनी माँ का साथ छोड़ कर निकट के आश्रम की ओर चल पड़ा। तपस्वी ने यथा स्थान पहुँच कर घड़े रख दिये और जब पीछे घूम कर देखा तब शावक को खड़े हुए पाया।

उसका प्रेम फिर जग उठा। वह अपनी बाँसुरी लेकर बैठ गया। अपने गीत की लय में तन्मय हो गया और वह मृग शावक उसी प्रकार खड़ा रहा। तपस्वी के स्वर में आज एक विशेषता थी। एक अनोखा आनन्द था। एक अनुपम संगीत था। शावक दत्तचित्त आँखें फाड़-फाड़ कर बाँसुरी के छिद्रों तक अपना मुँह ले जाता और फिर घुमा लेता। तपस्वी देखकर भी न देख पाता था। बड़ी देर तक यह व्यापार चलता रहा। पसीने की बूँदें प्रगाढ़ परिश्रम का द्योतक बनकर मुख पर छा गईं। तपस्वी थक गया था। उसने वीणा उठा कर रख दी। एक स्वर हुआ। जंगल के अनेक जीवधारी लौटते हुए दिखाई पड़े।

आज मेरे स्वर में कौन शक्ति आ गई है जिसके कारण ये जीवधारी मेरा संगीत सुनने को दौड़ पड़े ? आज तक तो कभी

ऐसा न हुआ था। मैं तो प्रतिदिन ही अपनी वीणा के तारों से खेला करता था किन्तु तब इतना आकर्षण न था। प्रतिदिन मैं मानवता के नहीं, ईश्वर की गौरव-गरिमा के गीत गाता था। आज मानवता का गीत गा उठा। मानवता ही का गीत सुनने के लिये प्राणी समुदाय मुझे घेर कर खड़ा हो गया था। ईश्वर का गुण-गान करते हुए कभी भी, इतने वन-चरों को कौन कहे, दो चार भी नहीं उपस्थित हुए किन्तु आज—आज तो कोयल, हंस. चक्रवाक, मयूर, मृग, बाघ और हिंसक जन्तु भी गीत सुन कर लौटे जा रहे हैं। क्या ज वधारी अथवा शरीर धारी केवल अपने ह' वर्ग को प्यार कर सकता है? उसे नहीं प्यार कर सकता जिसने सबको बनाया है। जिसके संकेत पर चर-अचर सभी साँ न लेते हैं। किन्तु नहीं। यह भ्रमपूर्ण धारणा है। इनमें ज्ञान नहीं है। परन्तु मृग-शावक अभी तक क्यों खड़ा है? क्या इसे तृप्ति नहीं हुई? तपस्वी ने उठकर शावक को फिर अपनी गोद में उठा लिया और बड़ी देर तक खेलता रहा।

शावक के साथ क्रीड़ा करते समय उसे अपने बाल्यकाल की स्मृति फूटती हुई ज्ञात हुई। उसने उसे रोकना चाहा। परन्तु भावनाओं के नीले परदे पर बचपन उमड़ पड़ा।

"पिता जी. आकाश में तारे क्यों हैं? क्या आप इन्हें तोड़कर मुझे नहीं दे सकते?" बचपन में पिता के साथ घूमते हुए अमा के अन्धकार में कवि ने एक दिन पूछा था।

"नहीं बेटा! वहाँ कोई नहीं जा सकता। वहाँ लोग मरने के बाद ही जाते हैं" पिता ने स्नेह-पूर्वक उत्तर दिया!

"तो हम आज ही मरेंगे, हम तारों के पास रहेंगे और उन्हीं से खेलेंगे। मुन्नी मुझे मारती है। श्यामा रोटी छीन लेती है। हम वहीं जाँयगे। हम मरेंगे।" कवि ने कहा।

"बेटा, कोई अपने आप नहीं मरता। ईश्वर सबको मारता और पैदा करता है!"

"ईश्वर क्या है ?"

"उसे अभी तुम नहीं जान सकते। बड़े होने पर पता लगेगा। जब तुम मेरे बराबर हो जाओगे तब तुम्हें भी ज्ञात हो जायगा"

"अपने आप पता लग जायगा ?"

"नहीं"

"तब"

"तब तुम बहुत सी किताबें पढ़ोगे ! पढ़ते-पढ़ते तुम्हें भी ज्ञान हो जायगा और तब तुम ईश्वर को पहचानने लगोगे। ध्यान से अपना पाठ याद करना। जो लोग अपना पाठ ध्यान से नहीं याद करते उन्हें ईश्वर नहीं मिल सकता और न उन्हें तारों के साथ खेलने को ही मिल सकता है।"

"पिता जी ! आप तो बड़े हैं। क्या आप भी तारों के साथ खेलते हैं ?"

"नहीं बेटा। मैंने किताबें नहीं पढ़ीं। मैंने तुम्हें बताया है कि जो लोग अपना पाठ भली प्रकार नहीं याद करते उन्हें ईश्वर नहीं मिलता और वे ईश्वर को नहीं जान पाते"

"आप ने ईश्वर को नहीं देखा। किन्तु मैं अपना पाठ याद करूँगा और ईश्वर को देखूँगा। तारों के साथ खेलूँगा। वहाँ मुन्नी और श्यामा तो नहीं जायगीं ?"

"बिलकुल नहीं"

बालक चुप हो गया। कवि की भावना घूम कर सामने के हिरन के बच्चे के पास पहुँच गई। उसने कई बार शावक के मुँह से अपना मुँह लगा कर चूमा और फिर शावक खेलता, कूदता और उछलता हुआ वन में अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन शावक फिर आया। तपस्वी ने उसे गीत भी वीणा पर गा कर सुनाया। संगीत से आज और भी भीड़ बढ़ गई। गीत की समाप्ति पर भी बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। कोई हिला तक नहीं। कवि साधना से हट कर गीतों पर आ गया। वन के वृक्ष भी उसे प्यार करने लगे। महानदी की कलकल ध्वनि उसका स्वागत करने लगी। उसे उस वन से मोह हो गया!

एक दिन और रात्रि की अभिसन्धि के समय मृग शावक कवि की कुटिया के निकट खेल रहा था। कवि पानी भरने के लिये महानदी गया हुआ था। अचानक एक शिकारी आ पहुँचा। उसने शावक को पकड़ने के अनेक प्रयत्न किये किन्तु वह बस में न आ सका। कवि दूर से यह व्यापार देख रहा था। जब अधिक परिश्रम करने पर भी सफलता न मिली तब शिकारी ने अपना तीर धनुष उठाया और धनुष की प्रत्यन्चा चढ़ा कर बाण रक्खा! कई बार निशाना लगाया किन्तु शावक हट जाता था। शिकारी ने हार कर शावक के सामने से छिप कर संधान करना चाहा। तीर छूटने को ही था कि कवि ने अपना हाथ बड़े वेग से तीर के सामने कर दिया। लेकिन तीर छूट चुका था उसे रोकना सम्भव नहीं था। कवि ने अपना हाथ बढ़ा दिया। तीर कवि की हथेली में घुस गया। शिकारी भयभीत हो गया। कवि ने शिकारी की आकृति से ही उसका भेद जान लिया। उसने कहा--शिकारी। मेरे पीछे आओ!

शिकारी और कवि दोनों कुटिया में पहुँचे। कवि को देखते ही अपनी कातर आँखों से घूरता हुआ मृग शावक उसके पास जा खड़ा हो गया और अपनी गर्दन कवि की गोद में रख दी! शावक ने आँखों में पानी भर कर देखना प्रारम्भ किया। ऐसा मालूम

होता था कि कवि से वह शिकारी की बर्बरता का विश्लेषण कर रहा है। शिकारी कवि के घावों की ओर घूर कर देख रहा था। उसे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो रहा था। उसके मुँह पर अनेक आड़ी-तिरछी रेखायें बन आई थीं। कवि ने शिकारी की भावनाओं को समझते हुए कहा—शिकारी ! तुमने बाण क्यों चलाया ?

शिकारी—आनन्द और कौतूहल के लिये। किन्तु मुझे यह न मालूम था कि शावक आपका है अन्यथा मेरे आखेट के लिये सम्पूर्ण वन था।

कवि—सत्य कहो शिकारी, क्या तुम्हें शावक के प्राण ले लेने से आनन्द और कौतूहल प्राप्त होता है ? क्या तुम आनन्द और कौतूहल को जानते हो ? एक क्षण की इन्द्रिय तृप्ति का सुख ही आनन्द समझ कर क्या मृग शावक पर बाण चलाना न्यायसंगत था ? भूल जाते हो कि तुम से परे भी कोई वस्तु है।

शिकारी—प्राण और शरीर को सुचारु रूप से सम्बन्धित करने के लिये भोजन चाहिये। भोजन में ही अपार सुख है। उसके पश्चात् ही समस्त ज्ञान और ज्ञानेन्द्रियाँ जागृत होती हैं। मुझे भूख लगी थी। बड़ा बिलम्ब हो चुका था। वन में किसी अन्य पदार्थ से भूख मिटना स्वाभाविक न जान सामने खड़े हुए भोजन पर बाण चलाना न्यायसंगत था। अकाल से संसार के दुखी हो जाने पर विश्वामित्र ने कुत्ते के मांस से यज्ञ किया था। तब उसी के भोग लगा लेने पर मूसलाधार वर्षा हुई थी। संसार सुखी हो गया था। वेदों में भी यज्ञ के निमित्त अश्व-बलि, वृषभ-बलि और गोबलि का विधान है।

कवि—दया किसे कहते हैं ?

शिकारी—भूखे को भोजन देना दया का सब से बड़ा उदाहरण है। मनुष्य आज तक भूख नहीं जीत सका।

कवि—किसी के प्राण लेकर किसी के पेट की ज्वाला शान्त की जाय, क्या यही न्याय है ?

शिकारी—अन्याय ही कब है। तुम जिसे न्याय कहते हो उसे मैं मूर्खता कहता हूँ। तुम जिसे पाप कहते हो, उसे मैं पुण्य कहता हूँ। तुम जिसे रूप कहते हो, उसे मैं ईश्वर कहता हूँ। तुम जिसे झूठ कहते हो उसे मैं सत्य कहता हूँ। वन में विहार करके शावकों के साथ खेलने वाले योगी—तुम नहीं जानते कि आज रोटी का विकराल प्रश्न सब के सामने उपस्थित है। देश दाने-दाने को तरस रहा है। कल के बच्चे इन अंग्रेज़ों की जूतियाँ साफ़ करते करते चरित्र, ज्ञान और रोटी खोते चले जा रहे हैं। तुम अहिंसा का पाठ पढ़ा कर देश को भीरू और कायर बना दोगे। बुद्धधर्म ने भारत को यवनों के हाथ सौंप दिया। यवनों ने विलासिता में अंगरेज़ों के हाथ बेच दिया। यह तुम जैसे तपस्वियों की ही भूल का परिणाम है। यदि एक शावक की मृत्यु से असंख्य शावकों की रक्षा होती है तो एक की बलि होने दो। एक कुत्ते की बलि से यदि विश्वामित्र जलवृष्टि करा सकते हैं तो उन्हें यज्ञ में कुत्ते की बलि करने दो। धर्म अंगरेजों के मिटा देने में है। राज्य में रोटी मिलने की आशा गोरों को देश से निकाल देने में है। सुख और शान्ति उनके बनाए हुए महलों को गिरा देने में है। फूँक दो उनकी शासन प्रणाली। आग लगा दो उनकी इमारत में। जयघोष करो उनकी छाती पर पत्थर रख कर। तब न्याय होगा। तब तुम्हारे जंगल सुरक्षित रह सकेंगे। तब तुम्हारी गौवें और वन-पक्षी उसकी लगाई हुई बड़वानल से बच सकेंगे। शक्ति की उपासना वन में बैठ कर नहीं, जीवन की रक्षा जीवन को बचा कर नहीं, अपितु हथेली पर अपने प्राणों को लेकर रणक्षेत्र में प्रयाण करने में है। मैं समझा था कि तुम विश्वामित्र

याज्ञवल्क्य और गौतम की सन्तान हो! किन्तु नहीं, समझने में भूल हुई ? लो, जाता हूँ!

"ठहरो शिकारी"

"मैं अहिंसा की परिधि में बन्दी नहीं होना चाहता"

"सुनो भी तो"

"मुझे उपदेश की आवश्यकता नहीं"

"मैं स्वयं उपदेश चाहता हूँ। ठहर जाओ"

शिकारी फिर आकर नियत स्थान पर पहुँच गया। उसने बैठते हुए कहा—क्या है ?

कवि—क्या मेरे गीत में कोई स्वर नहीं। क्या मेरी दया में कोई बल नहीं ? क्या तपस्या वृथा है ? क्या मैं शक्ति संचय के बहाने अपने को धोखा दे रहा हूँ ?

शिकारी—मैं यह सब नहीं जानता। केवल इतना जानता हूँ कि यह तपस्या का युग नहीं। जंगल की तपस्या देश के लिये घातक है। नगर में, गाँवों में लोगों को निद्रा से जगाने में भी साधना है। उनके तरसते हुए बच्चों को अपनी भूख की बलि देकर भोजन का प्रबन्ध करने में सबसे बड़ा उद्योग है। माँ-बहनें वस्त्र के बिना घर से बाहर नहीं निकल सकतीं, उन्हें वस्त्र का प्रबन्ध करने में सब से बड़ी संस्कृति की रक्षा है।

"ठीक कह रहे हो शिकारी। किन्तु मन का द्वन्द नहीं मिटता। यह बात मैं भी सोचने लगा हूँ, किन्तु अभी पूर्ण रूप से तथ्य पर नहीं पहुँचा। कभी फिर आना तब हम पूर्ण रूप से तुम्हारे कार्य में सहयोग देंगे। आओगे न!"

"तब तक आप अपने में संयम की शक्ति उत्पन्न करेंगे और केवल मन के द्वन्द को मिटाने का प्रयास करेंगे यही न ?"

"सत्य तो यही है!"

"अच्छा, आओगे न"

"भविष्य जाने। किन्तु प्रयास करूँगा।"

शिकारी उठकर चला गया, किन्तु कवि की साधना में एक प्रहार करके गया। कवि अपने आप में विभोर था। उसे सांसारिकता से जोड़ने वाली कर्तव्य की बात आज पहले पहल दिखाई दी। सन्ध्या तक वह उसी प्रकार बैठा रहा। उसका द्वन्द तनिक भी शान्त न हुआ। वह उदास होकर कलिङ्ग की ऊँची चट्टान पर चढ़ गया और तब प्रकृति के स्वर से भी उसे अपना स्वर विपरीत ज्ञात हुआ जब उसे अपनी कुल तपस्या निर्जीव दृष्टिगोचर हुई। जब उसके परिश्रम पर पानी फिरता हुआ प्रतीत हुआ तब वह निश्चेष्ट हो गया और उसने अपना शरीर समुद्र की अतल जल से उभरी हुई लहरियों में फेंक दिया।

२

डलहौजी ने जहाँ स्वतन्त्र राज्यों को गोद लेने के अधिकार छीन कर उन्हें बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत किया वहाँ कुछ बहुत ही छोटे छोटे राज्यों को सहायता भी प्रदान की। डलहौजी भली प्रकार समझता था कि बिना तीन वर्ग में भारत को विभाजित किये हुए शासन में सुदृढ़ता सम्भव नहीं। यही कारण था कि उसने मध्य वर्ग की भी सृष्टि की। बड़ी-बड़ी जमीदारियों की स्थापना करना भी उसका उद्देश्य था। इन्हीं जमीदारों और ताल्लुकेदारों की नींव पर बृटिश सत्ता का शासन नदी के किनारे की स्थित अट्टालिका के समान खड़ा है। धारा उससे सट कर बहती है किन्तु गिरा नहीं पाती। इसे गिराने के लिये धारा के वेग को नींव में पहुँचना होगा। उसे मनमाना तोड़ना-मरोड़ना होगा। उन्हें भली प्रकार तोड़कर निम्न श्रेणी में मिला देना होगा। तब यह इमारत, ये महल, ये दासता के शासन और रोटियां छीनने वाले घातक अधिकार अपने आप मिट जांयगे। महल और गुलामी एक साथ मिटेगी।

उपर्युक्त ताल्लुकेदारों का एक छोटा सा प्रान्त गढ़वाल में भी है। उसे जयगढ़ कहते हैं। गढ़ के राजा त्रिभुवन वीर विक्रमसाह देव की मृत्यु हो चुकी थी। रानी तारा अत्यन्त उदास रह कर महलों

को ऊँची प्राचीरों को ईर्षा की दृष्टि से देखने लगी थी। कारण यह था कि उसके कोई सन्तान न थी। रानी ने वृटिश सत्ता से एक बालक को गोद लेने का अधिकार प्राप्त करना चाहा था। उसने प्रयत्न भी किया किन्तु परिणाम वर्षों के पश्चात् भी कुछ न निकला। अतएव रानी निराश हो गई। किन्तु मन्त्री देशराज न तो निराश ही हुए और न उन्होंने प्रयास ही करना छोड़ा। वे राजा के सच्चे भक्त थे। वह भक्ति उनके जीवित रहते हुए सिद्ध न हुई किन्तु राजा की मृत्यु के पश्चात् जिस संलग्नता के साथ मन्त्री देशराज नें कार्य किया, वह सराहनीय था। उन्हें राज्य कार्यों की समस्त देख रेख के पश्चात् रानी तारा की भी देख रेख करनी पड़ती थी। रानी पति की मृत्यु पर अत्यन्त दुखी थी। उसका अपार विरह रात-दिन उसे खाये जा रहा था। मन्त्री देशराज कभी कभी पूरी रात तारा को शिक्षा देने में बिता देते थे। जब तक मन्त्री रहते रानी का ढाढ़स बंधा रहता था। उनके जाते ही रहा सहा बाँध भी टूट जाता था। वे कातर होकर विलाप करने लगती थीं।

एक दिन मन्त्री अर्धरात्रि तक महलों से रानी को सान्त्वना देकर लौट रहे थे। राजमहल की सीढ़ियों पर पैर रखते हुए सोचा—यदि कोई देख ले तो? तब तक प्रहरी ने झुक कर सलाम किया। कोचवान ने गाड़ी बढ़ा कर अभिवादन किया और देशराज गाडी में बैठते हुए बोले—शीघ्रता करो—बहुत देर हो चुकी है।

कोचवान ने घोड़ों की पीठ पर चाबुक जमाते हुए कहा—अन्नदाता बस पहुँचे।

बेगवान घोड़े भरसक दौड़ रहे थे। सहसा देशराज ने कोचवान को गाड़ी खड़ी करने की आज्ञा दी। लगाम खिच उठी।

घोड़े अपने नथुनों की पीड़ा के कारण अगले पैरों को उठा कर खड़े हो गये। रथ की गति समाप्ति पर आ गई।

"बड़े कुशल हो सारथी ?"

"अन्नदाता की दया है"

"मेरे घोड़ों पर किसी भी सारथी का आतङ्क न जम सका था। तुमसे प्रसन्न हूँ। इस समय तुम गाड़ी ले जाकर मेरे महल में बाँध दो। यदि कोई दासी पूछे तो कह देना कि मन्त्री को रानी की अस्वस्था के कारण रुक जाना पड़ा। वे दूसरी गाड़ी से आयेंगे।"

"किन्तु इस निर्जन में—

"तुम केवल आज्ञा के दास हो"

देशराज की भाव भंगी बदली सी जान पड़ी। सारथी कातर हो उठा। वह सहम गया।

"जाओ"

आज्ञा के साथ ही रथ आगे बढ़ गया। भय के कारण सारथी फिर पीछे घूम कर न देख सका। उसके घोड़े फिर हवा से बातें करने लगे।

देशराज एक पत्थर की शिला के निकट बैठते हुए सोचने लगे। तारा कितनी सुन्दर है। उसके रूप में महान आकर्षण है। मैं उसे प्रति दिन नियम और संयम की शिक्षा देने जाता हूँ। उसे कर्तव्य का मार्ग दिखलाता हूँ। असत्य से सत्य की ओर उसकी प्रवृत्तियों को झुकाने का प्रयास करता हूँ। शरीर की नश्वरता का उपदेश देता हूँ। परन्तु यह धोखा है। मैं स्वयं पाप का शिकार होता जा रहा हूँ। रानी को उपदेश देकर मैं अपने को भुलानें का प्रयास करता हूँ। परन्तु अन्तर का पाप—

संगमरमर की शिला बादलों में से चन्द्रमा निकल आने के कारण चमक उठी। रात्रि में घूमने वाले हत्यारे पक्षियों का एक समूह आकाश के एक कोने से दूसरे कोने में चला गया। उनके फड़फड़ाते हुए परों ने एक क्षण को देशराज के विचारों में बाधा पहुँचाई किन्तु फिर वातावरण शान्त हो गया। विचारधारा आगे बढ़ी—दास आज चुप हैं किन्तु पीठ पीछे इनके वार्तालाप का विषय मेरा चरित्र ही रहेगा। मेरा आंतक समाप्त होने पर मुँह पर भी मेरे अनुचर मुझे गालियाँ देने में न हिचकिचाएँगे। अतः ऐसे उपदेशों की पहले अपने जीवन पर ही छाप छोड़ना चाहिये। रानी का विरह स्वयं एक दिन शान्त हो जायगा। ठीक भी है। उसे गोद लेने की आज्ञा भी मिल गई है। किन्तु रानी को इसकी सूचना देना ही भूल गया। मोह में भूल होना स्वाभाविक ही है। अधिक देर तक जब रानी के साथ रहता हूँ तब फिर उठने का जी नहीं चाहता। माया अपने चंगुल में बटोरती हुई दिखाई देती है। यद्यपि रानी भी मेरी ओर आकृष्ट हो गई है किन्तु इसका कारण मैं ही हूँ। जब तक मैं महलों की ओर चलता हुआ उसे खिड़की से दिखाई नहीं पड़ जाता तब तक वह बैठी हुई बाट जोहा करती है। महाराज की मृत्यु के पश्चात् तीर्थ यात्रा करते समय की रानी आज नहीं है। उसमें फिर से यौवन की लहर दौड़ आई है। मुझे भी मेरा बूढ़ापन जवान कह कर प्रतारणा पूर्ण व्यवहार कर रहा है। प्रेम की आग बालपन से उभरती हुई जवानी की वस्तु है। ढलते हुए यौवन के उतार पर उसको नष्ट हो जाना चाहिये। सावन-भादों की बढ़ी हुई नदी ही शोभित होती है। शरद में बादल नहीं अच्छे लगते। कोयल की कूक मधुमास ही में प्रकृति सौन्दर्य के गीत गाती है तभी अच्छा लगता है। ज्ञान, तप और पश्चाताप में बिताने वाली अवस्था में प्रेम केवल स्वांग है। इस नूतन कौतूहल से सम्बन्ध

धित दूसरी घटना का स्मृति-पटल पर आ जाना स्वाभाविक ही जान पड़ता है—

बात उन दिनों की है जब मैं अपनी तरुण-अरुण अवस्था में मस्ती के गीत गाता हुआ नारी के कोमल स्वप्नों के तानों-बानों पर काल्पनिक चित्र बनाया करता था। वीर विक्रमसाह देव भी समवयस्क होने के कारण मेरे ही साथ रहते और विचारों की समानता के कारण ही मित्रता हो जाना अनिवार्य हो गया। एक दिन वे मेरे पास बड़ी ही गम्भीरता के साथ आकर कहने लगे कि उनका विवाह नागपुर की राजकुमारी तारा के साथ होना निश्चित हुआ है। किन्तु वे बिना तारा को देखे हुए विवाह नहीं करना चाहते। मैं ही उनकी आँखों से तारा को देख आऊँ ऐसा प्रस्ताव उन्होंने मेरे सामने रक्खा। मित्र भाव के नाते मैं इस दुरूह कार्य को भी करने के लिये सहमत हो गया। मुझे स्वयं तारा को देखने में एक कौतूहल सा ज्ञात हुआ। इसलिये मैंने उनके इस कार्य में पूर्ण रूप से सहयोग दिया। उन्होंने कहा था कि सफलता पर मुझे जयगढ़ के मंत्री का शासन ग्रहण करना होगा। लोभ कुछ कम नहीं था। यद्यपि मैं यह जानता था कि राजकुमार राजा होने पर बाल्यकाल की घटनाओं को निराधार समझ कर भूल जाते हैं किन्तु तारा से मिलने का कौतूहल कुछ कम लालच बढ़ाने वाला न था।

मैं नागपुर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर मैंने अपने को तान्त्रिक के रूप में प्रसिद्ध किया। पत्रों में अनेक विज्ञापन मेरे नाम के छपे। आज कल के समाचार पत्र यदि विज्ञापन की सत्यता की परख करने लगते तब कठिनता अवश्य होती किन्तु भारतीय आधुनिक धन परम्परा में, किसी भी प्रकाशक ने रुपया प्रथम ही मिल जाने पर तनिक भी आपत्ति न की। मैं एक प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य बन कर नागपुर में एक सुसज्जित मकान लेकर ठहर गया। दिन भर मेरे

दरवाजे पर भीड़ लगी रहती। किन्तु मैं साधारण लोगों से कभी भी न मिलता था। मैंने अपना शुल्क भी अपनी मर्यादा के अनुसार ही रक्खा था। बेचारे दीन-हीन रोटी के मुहताजों की वहाँ पहुँच न थी। बड़े बड़े धनी ही आते थे। मैं उनसे केवल उनका भविष्य बताकर धन लेकर शीघ्र ही विदा ले लेता। ग्राहकों को कभी भी अधिक देर तक वार्तालाप का अवसर न देता था। एक दिन राजमहल में भी मुझे सम्मान के साथ बुलाया गया। मेरा यह नियम था कि मैं एक समय में एक ही व्यक्ति स बात-चीत करता था। उस समय मेरे कमरे में कोई दूसरा न होता था। राजमहल में बारी-बारी से सब ने अपने हाथ दिखलाए और मन-माने प्रश्न किये। मैंने सब को अपने तर्क से यथासम्भव उत्तर देते हुए तुष्ट किया। अन्त में कुमारी तारा की भी बारी आई। कुमारी लज्जा की देवी थी। उसने बड़ी कठिनता से अपना हाथ आगे बढ़ाया। काली साड़ी से निकलते हुए वे हाथ मुझे आज भी याद हैं। उनमें कितना कम्पन था। ओह!

देशराज ने मस्तक ऊपर उठा कर देखा—चंद्रमा का धवल प्रकाश! मानो कह रहा था कि तब इसके बाद क्या हुआ। चातक ने एक बार पी-पी की रट लगाई मानो वह भी कह रहा था—'तब'

तब ज्योतिषी ने कुमारी के हाथ पकड़ लिये। उसे भली प्रकार देखने पर मैंने पूछा—राजकुमारी, प्रश्न करो?

किन्तु राजकुमारी ने प्रश्न करने के स्थान पर मूक रह कर एक काग़ज़ का टुकड़ा आगे बढ़ा दिया। उस पर लिखा था—'मेरा पति कितना सुन्दर है? उसका स्वभाव कैसा है? वह किसी अन्य को प्यार तो नहीं करता?'

बस यही तीन प्रश्न थे जिनका उत्तर भली प्रकार लिख कर ज्योतिषी जी ने कुमारी के सामने रख दिया। कुमारी के चेहरे पर

मुसकराहट छा गई। उसने काग़ज़ के टुकड़े-टुकड़े करते हुए पूछा, "ऐसा ही है ज्योतिषी जी ?"

"मैं झूठ नहीं बोलता, जो कुछ है वह यही है।"

राजकुमारी चली गई। ज्योतिषीजी फिर देशराज बन कर जयगढ़ में चले आए। राजकुमार ने तारा से विवाह कर लिया। देशराज मन्त्री हुए। कुमार मन्त्री को राजा होने पर भी नहीं भूले। किन्तु मैं राजा के प्रति अन्याय कर रहा हूँ। उनकी साध्वी स्त्री को कुदृष्टि से देख कर मैं राजा का अपमान कर रहा हूँ। मै मित्र-घात करने ही नहीं राजद्रोह, देशद्रोह और अनेक द्रोह एक साथ करने पर तुला हुआ हूँ। कल से यह पाप का चक्र बन्द कर दूंगा। संयम का सहारा लूँगा। कर्तव्य का सहारा लूँगा।

आकाश के तारे धूमिल हो चले हैं। रात बीतती हुई ज्ञात होती है। चंद्रमा भी अपनी यात्रा में कहाँ से कहाँ पहुँच गया किन्तु मैं अभी आधे रास्ते में ही पड़ा हुआ हूँ। इस निर्जन में कोई मुझे देख कर क्या कहेगा ? इतनी बड़ी जागीर का मन्त्री देशराज निर्जन में न जाने किस षड़यन्त्र की सृष्टि कर रहा है। किन्तु देशराज की स्थिति ही क्या है ? देशराज और एक साधारण में केवल इतना ही अन्तर है कि देशराज के पास अधिकार सुरक्षित हैं। साधारण जनता पर अधिकारों का बोझ नहीं है। ये अधिकार वास्तव में प्रजा ने ही मुझे दिये हैं। प्रजा के दिये हुए अधिकारों पर इतना घमण्ड ? देने वाला बड़ा है। लेने वाला सदैव देने वाले के सामने हाथ पसारता है। देने वाले को नहीं लेने वाले को ही झुकना पड़ता है। अधिकार शून्य है। तथ्य कुछ नहीं। केवल भावना का उद्रेक मात्र है। अतः इन अधिकारों पर घमण्ड उचित नहीं। किसी का

दिया हुआ दान है अधिकार नहीं। अब महल की ओर चलना चाहिये।

देशराज के सन्तान न होती थी। बड़ी मान-मनौती के बाद एक लड़की का जन्म हुआ था किन्तु वह शीघ्र ही संसार छोड़ कर चल बसी। तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी की अनेक प्रार्थनाओं पर एक पुत्रेष्टियज्ञ करना निश्चित किया। उन्हें यज्ञ में विश्वास न था। अतः एक दिन स्त्री से उन्होंने कहा कि यदि इस बार भी लड़की ही हुई तो उसका गला घोट कर तुरन्त मार डालूँगा। देशराज की यह बात जब महलों में गूजीं तब रानी तारा ने बुला कर समझाया था कि यदि लड़का होगा तो देशराज का पुत्र होगा। किन्तु यदि लड़की होगी तो उसे मृत्यु की गोद में सुलाने से राजमहलों में ही पहुँचा देना श्रेयस्कर होगा। रानी तारा की यह बात मान ली गई थी।

देशराज जब महलों की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी ने एक कुमारी को जन्म दिया है। प्रातः यह सूचना राजमहल में पहुँची। रानी तारा अपने रथ में बैठ कर बालिका लेने के लिये चल पड़ी। देशराज अपने भाग्य पर सोच रहा था। उसने भाग्य को बलवान् समझ कर, लड़की को भगवान की देन समझ कर पालन करना ही उचित समझा था। इसी तर्क में उलझा हुआ था कि रानी तारा ने प्रवेश किया। देशराज ने सम्मान पूर्वक रानी को प्रणाम किया। रानी ने बैठते हुए कहा—अन्त में जीत मेरी ही हुई।

"आप सदैव विजयी हैं। विजय रानी तारा ही की होनी चाहिये। दीन-हीनों का विजय और पराजय कोई महत्वपूर्ण नहीं होती। रानी अथवा राजा की जीत और पराजय का प्रश्न देश और जाति की पराजय और जय है।"

"याद है अपनी प्रतिज्ञा ?"

"कैसी प्रतिज्ञा ?"

मनुष्य स्वार्थी है। अपने स्वार्थ के सामने वह अपने वचनों को भी भूल जाता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है।"

"कुछ समझ में नहीं आया।"

"साधारण सी बात है।"

"मैं भूल रहा हूँ। मुझे कुछ सहायता पहुचाएँ। विस्मृति कोई अस्वाभाविक वस्तु नहीं। तनिक मुझे सचेष्ट होने का समय चाहिये।"

"नहीं याद है ? आज से पाँच मास पूर्व मन्त्री देशराज ने लड़की होने पर उसे मृत्युदण्ड देने के स्थान पर मुझे देने का वचन दिया था।"

"याद है किन्तु अभी वह जी कैसे सकेगी। उसे गाय के दूध पर पालने के लिये तनिक कठोर हो जाने दीजिये। इतनी शीघ्रता !"

"मन्त्री उसे मार डालेंगे। मैं उसे ज़िला सकूँगी तो ठीक ही है नहीं तो उसके जीवन का अन्त निश्चित ही है।"

"नहीं, मैंने अपने विचार बदल दिये हैं। मैं हत्या का भागी नहीं बनना चाहता।"

"लेकिन दिन प्रति दिन बच्चे के यहाँ रहने से मोह बढ़ता ही जायगा। तब अधिक कष्ट होगा। मैं चाहती हूँ कि मन्त्री को कम कष्ट हो ! मैं उसे आज ही ले जाना चाहती हूँ !

"आज ही ?"

"इसी क्षण।"

देशराज की आँखें छलछला आईं किन्तु उन्होंने आँसू छिपाते हुए कुछ संकेत अपने नौकरों की ओर किया। थोड़े समय बाद

एक दासी आई। उसने बच्चे को रानी की गोद में देते हुए कहा—लीजिये।

रानी ने बच्चे को अपनी गोद में लेते हुए कहा—मन्त्री की यह प्यार की धरोहर मैं सँजोये रक्खूँगी। गाड़ी में बैठते हुए उसने दुहराया—मन्त्री न सही, मन्त्री की धरोहर ही बहुत है।

नमस्कार करते हुए देशराज के कानों में शब्द गूँज उठे—मन्त्री न सही, उसकी धरोहर ही बहुत है।

गाड़ी के घोड़े मन्त्री को छोड़ कर आगे बढ़ गये।

रानी तारा ने एक अष्टवर्षीय बालक को गोद ले लिया और वह राजकुमार की तरह पलने लगा। उसे समय आने पर अजमेर के राजकुमारों के विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया गया।

देशराज की पुत्री का नाम रानी तारा ने प्रेमा रक्खा। पिता की स्मृति स्वरूप उसका जातीय पद भी उससे जोड़ कर उसे प्रेमा-मण्डी के नाम से सम्बोन्धित किया गया। प्रेमा समय के चक्र पर दौड़ती हुई अपनी जीवन यात्रा पर चलने लगी। उसका पालन एक अँगरेजी बालिका की भाँति होने लगा। किन्तु वह इसका सदैव विरोध करती थी। भारतीय आदर्शवाद की छाप उसके पूर्व जन्म के संस्कारों को प्रभावशालिनी शक्ति ही कही जा सकती है। उसकी संरक्षिका मेरी जब प्रेमा को ईसा और विलियम की कहानियाँ सुनाने लगती तब वह उसे रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनाने के लिये बाध्य करती। पश्चिमी प्रेमाख्यान के स्थान पर सावित्री-सत्यवान, मनु और इडा की कहानियाँ सुनना चाहती। भारतीय साहित्य से अनभिज्ञ होने के कारण मेरी चुप हो जाती। मेरी की विवशता को प्रेमा समझ जाती और वह दासी के पास जाकर उसकी गोद में अपना मस्तक रख घंटों कहानियाँ सुनती। रानी

तारा को जब यह ज्ञात होता था तब वह अत्यन्त अप्रसन्न होती थी क्योंकि वह प्रेमा को पाश्चात्य प्रणाली और वातावरण में ही पालना चाहता थी। भारतीय आदर्शवाद उन्हें पीड़ा पहुँचा रहा था। सम्भवतः उनकी प्रेम का प्यास भारतीय संस्कृति में बँधे होने के कारण अधूरी रह गई थी। मन्त्री देशराज की अमूल्य निशानी प्रेमा सदैव रानी के समक्ष रह कर उसका प्रसन्नता का कारण बनती था। उस दिन से रानी तारा को किसी ने उदास न देखा।

मन्त्री देशराज बालिका को देकर दुखी अवश्य हुए किन्तु दुःख से अधिक उन्हें आश्चय हुआ—रानी दशराज को प्यार करती है। प्यार करना बुरा नहीं है। लेकिन उसकी सीमा जब ऐक्तिकता से टकरा जाता है, वह जब जावन की क्षणिक रंगीनी में ही विभोर हो उठता है तब अवश्य बुरा है। तब उसे क्षमा भी नहीं किया जा सकता। प्यार का दर्द छिप भी तो नहा सकता। वह अपने रूपों में नदी की बाढ़ की तरह बाँध ताड़ कर बह निकलता है। दबी हुई आग का तरह एक दिन उभर कर मनुष्य की मान-मर्यादा में बट्टा लगा देता हैं। प्यार का भालापन संसार के न्याय और अन्याय को न समझ कर बालकों को तरह मनमाना करता है। लोगों को उसके भालेपन में आनन्द नहीं आता। वे अपनी तार्किक दृष्टि से समाज की कसौटी पर उसकी भी परख करते हैं और यदि तराजू का पल्ला उसका ओर न झुका तब ता उपेक्षा की दृष्टियाँ उस पर तेजी के साथ दौड़ने लगती हैं। रानी का प्यार मर्यादा का उल्लंघन करना चाहता है। रानी मेरे सामने ही विचलित हो सकती है। अतः उसके पतन का कारण मैं ही हो सकता हूँ। एक के पतन से दोनों का पतन होगा। एक का मर्यादा के साथ दूसरे की भी मर्यादा उठ जायगी। ईश्वर इतना बड़ा अपराध क्षमा नहीं कर सकेगा। उसके न्याय दण्ड के सामने झुकना होगा।

वास्तव में मैं रानी को प्यार नहीं करता। मोह इसे ही कहते हैं। स्वार्थ और कामना पूर्ण प्यार ही मोह है। रानी तारा राजा के जीवन पर्यन्त किसी पर-पुरुष के सामने जाते हुए सहम जाती थी। वर्ष गाँठ के अवसर के अतिरिक्त रानी के प्रजा को दर्शन भी न होते थे। वही रानी मुझे प्रत्येक स्थल पर आने जाने की स्वतन्त्रता दे चुकी है। मुझे अधिकतर उसके शयनगृह ही में जाना पड़ता है जहाँ वासना के अनेक तैल चित्र प्रत्येक समय मेरी परीक्षा लिया करते हैं। रानी सदैव मेरी ओर तिरछी आँखों से देखा करती है कि मैं उन चित्रों को देखकर अपनी प्यासी आँखों से रानी की ओर घूरता हूँ या नहीं ? मेरा मस्तक नीचे ही देख कर वह एक करुण उसांस छोड़ती हुई कहती है—मन्त्री ! एक दिन यह हमारी केलि का प्रासाद था। आज कोई नहीं है। केलि करने वाला ही नहीं। जूठे बर्तनों की तरह छोड़ कर वे चले गये। अब उन वर्तनों में दूसरा कौन भोजन करेगा। कच्चे जो ठहरे। एक बार ही प्रयोग में लाने से उनमें अशुद्धता आगई। वे भी कड़ी आँच में पकाए गये हैं तब भी दुनियाँ उन्हें कच्चे बर्तन कहती है। रानी मेरी राय पूँछती। मैं निरुत्तर था किन्तु कई दिन तक एक ही प्रश्न की भूमिका सुन कर मैंने कहा था–रानी ! कुम्हार को धन्यवाद है जो सदैव वर्तन बनाता रहता है। झूठे बर्तन फ़ेंक दिये जाते हैं। उन्हें पृथ्वी फिर अपने में बटोर कर कच्ची मिट्टी बना देती है। कुम्हार नये सिरे से उसी मिट्टी से बर्तन बना देता है। वह पका कर भी, कड़ी आच देकर भी कच्चा ही कहता है क्योंकि कच्ची आँच ही के कारण उन पवित्र बर्तनों की महत्ता रहती है। अन्य धातु के बर्तनों की अपेक्षा उनमें पवित्रता अधिक विराजती है। कारण केवल यह है कि वे एक मनुष्य के काम की वस्तु हैं। उसी की सेवा में अपना जीवन भेंट कर देते हैं और दूसरे के पास जाने से वे टूट कर नष्ट हो

जाना अच्छा समझते हैं। उत्तर सुन कर रानी अवाक रह गई थी। उसने फिर कभी ऐसे प्रश्न न किये। परन्तु सम्पर्क बढ़ता ही गया।

मन्त्री को ध्यान आया कि वह मन्त्रित्व नहीं करेगा। रानी से दूर हो जायगा। रास्ते से काँटा दूर हो जाना ही अच्छा है। पीड़ा पहुँचाना मनुष्य का कर्तव्य नहीं।

दूसरे दिन रानी के समक्ष बैठते हुए मन्त्री देशराज ने अन्य-विषयों की समाप्ति पर अपनी अस्वस्थता की सूचना दी। उन्होंने बताया कि वे अब उतना काम नहीं कर सकते। समय ने उन्हें भी बूढ़ा बना दिया है। वे चाहते हैं कि दरबार से उन्हें छुट्टी मिल जाय। जीवन के अन्तिम दिन वे भी भगवान के चरणों में त्रिवेणी तट पर स्नान करते हुए ही काट देना चाहते हैं। रानी मन्त्री का तात्पर्य समझ गई। उसने व्यंग्यपूर्वक कहा—मन्त्री का अपने पर से विश्वास चला गया। अधेड़ होने पर भी दुर्बलता का सन्देह!

मंत्री—मन का पाप प्रायश्चित चाहता है। वह बड़े ऊँचे स्थान पर चढ़ कर पुकार कर कह रहा है। उसके स्वर में इतनी दृढ़ता है कि मैं काँप उठा हूँ।

तारा—एक दिन मन्त्री ने कहा था कि उसने कभी जान कर राज्य में अन्याय नहीं किया। किसी से उत्कोच लेकर पेट भरने का प्रयास नहीं किया। अपना वेतन वे दीन-हीनों की सेवा में ही व्यय करते रहे हैं। उनके कोई सन्तान भी न थी जिसके लिये धर्म-संचय करते। फिर प्रायश्चित किस बात का होगा? क्या प्रजा का पालन उनका धर्म नहीं है? क्या राज्य से अपना वेतन लेकर दान करने में उन्हें आनन्द नहीं आता? यह सृष्टि किसकी है? एक आदि शक्ति परमेश्वर ही की न? उसी का बनाया हुआ संसार है। यदि

संसार को ईश्वर का रूप कहें तो अत्युक्ति न होगी। उसके रूप से इतनी ईर्षा, और फिर उसी ईश्वर की पूजा होगी। रूप से घबरा उठे हो ? ईश्वर को पाना चाहते हो ? असम्भव है ! मन्त्री देशराज स्वप्न देख रहे हो ?

मन्त्री—तुष्टि में ईश्वर है, कौतूहल में नहीं। भाव में ईश्वर है, रूप में नहीं। ज्ञान में ईश्वर है, अज्ञान में नहीं !

रानी—मन्त्री देशराज घबरा उठे हैं। वे राज्य के कामों से ऊब उठे हैं ? उन्हें देशाटन करना चाहिये। उन्हें छुट्टी नहीं चाहिये। उन्हें विभिन्न देशों का परिभ्रमण करते हुए सम्पूर्ण भारत के नगरों में स्थित राज्य की कोठियों का निरीक्षण करना चाहिये !

मन्त्री—मुझे सदैव के लिये छुट्टी नहीं मिल सकती ?

रानी—भूल रहे हो मन्त्री। मैंने न तुम्हें मन्त्रिपद दिया और न मैं ले ही सकती हूँ। वह राजा का दिया हुआ है। मुझे उसे वापस ले लेने का कोई अधिकार नहीं। आज राजा नहीं हैं। राज्य की सम्पूर्ण समस्याओं को केवल आप ही समझ सकते हैं। राज्य की विकट परिस्थितियों में आप चले जाना चाहते हैं क्या यही न्याय है। क्या इतने बड़े राज्य की सेवा करने में आप को धर्म लाभ नहीं हो रहा है। गंगा का जल जयगढ़ में भी प्राप्त हो सकता है। सत्संग यहाँ भी हो सकता है। जयगढ़ में साधु-सन्तों की कमी नहीं। क्या जयगढ़ त्रिवेणी नहीं बनाया जा सकता ?

मन्त्री निरुतर हो गये। वे समझ गये कि तारा उन्हें अपने चंगुल से छोड़ना नहीं चाहती। किन्तु तीर्थ-यात्रा में कुछ दिन दूर रहूँगा। दिन क्या से क्या हो जायँगे। तब रानी के विचारों में भी परिवर्तन हो सकता है। अतः मन्त्री ने कहा—तीर्थ-यात्रा की अनुमति है न ?

रानी—कोठियों का निरीक्षण करने के साथ। केवल एक वर्ष के लिये ही। तदुपरान्त केन्द्र पर लौट आना होगा।

मन्त्री—केवल एक वर्ष ?

रानी—एक वर्ष ही बहुत बड़ी अवधि है। इस बड़े समय में भी राज्य की विशेष मन्त्रणाएँ आप समय समय पर देते रहेंगे। उसी के अनुसार मैं कार्य किया करूँगी। प्रजा में आन्दोलन बढ़ता जा रहा है। इसे समझाने-बुझाने के विभिन्न व्यापारों का निर्देशित करते रहना होगा।

मन्त्री—तब तीर्थ-यात्रा क्या रहेगी ?

रानी—तीर्थ से भी अधिक पुण्य राज्य की रक्षा में है।

मन्त्री—तब समय अधिक चाहिये। दो वर्ष—

रानी—मन्त्री के ऊपर रानी का शासन नहीं है। रानी स्वयं मन्त्री द्वारा शासित है। उसे कोई आज्ञा नहीं दे सकता।

मन्त्री—मैं रानी को अप्रसन्न नहीं करना चाहता।

रानी—मन्त्री की शिष्टता में कोई सन्देह नहीं। उससे व्यवहार-कुशल दूसरा कौन हो सकता है। उसी के इशारों पर राज्य के समस्त कर्मचारी दौड़ लगाया करते हैं।

मन्त्री—पात्र प्रशंसा के योग्य नहीं। केवल रानी की दृष्टि और कृपा के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता।

रानी—मन्त्री को प्रत्येक तीर्थ में स्नान करते समय दो डुबकियाँ लगानी होंगी !

मन्त्री—किसके लिये।

रानी—प्रेमा के लिये।

मन्त्री—दूसरी।

रानी—राजा के लिये।

मन्त्री ने देखा—रानी की आँखों के कोरों में आँसू के कण दिखाई पड़ रहे थे किन्तु रानी उन्हें धरोहर की भाँति छिपा रही थी।

मन्त्री बाहर आ रहे थे। रानी राजा और मन्त्री के मैत्री भाव के कारण उन्हें घर का एक प्राणी ही मानती आई है इसलिये उसका कुछ दूर तक पहुँचाना उचित ही था। महल के ऊपरी भाग से उतरते समय प्रेमा मिली। मन्त्री की आँखें एक बार घूमीं—एक दर्द सा हुआ किन्तु उस दर्द को छिपाए ही वे बाहर चले आए। गाड़ी चली जा रही थी और रानी प्रेमा को उठा कर गाड़ी की ओर संकेत कर रही थी।

प्रेमा में भी समय के साथ परिवर्तन हो रहा था। उसकी अवस्था आठ वर्ष की थी। उसका रूप संगठन एक विदेशी बालिका की तरह था किन्तु हृदय भारतीय। रानी तारा उसकी वेश-भूषा में पश्चिमीयता लाने में अवश्य समर्थ हुइ थी किन्तु हृदय भारतीय ही रह गया था। विचार भारतीय थे और कपड़े विदेशी।

एक दिन एक साधु पुत्र ने महल के दरवाजे पर पुकार लगाई। सन्तरी दूर चला गया था। वह हुक्का पी रहा था। उसने देखा कि एक भिखारी भिक्षा माँग रहा है। वह बन्दूक के कुन्दों पर बल देकर उसे पटकता हुआ शीघ्र आ पहुँचा और बालक को तिरछी निगाह से देखने लगा।

बालक डरा नहीं। उसने फिर कहा—बड़ा भूखा हूँ।

सन्तरी ने डरते हुए कहा—महल में भीख नहीं मिलती। भाग जाओ। राज महल है। देखते नहीं हो।

बालक—देखता हूँ। तभी भीख माँग रहा हूँ।

सन्तरी—यदि भीख ही दी जाती तो राजमहल न खड़ा होता। जाओ किसी ग़रीब के घर भीख माँगो।

बालक—जब राजा के घर नहीं मिला तब गरीब के घर क्या मिलेगा ? वह स्वयं गरीब है। दूसरे को क्या देगा।

सन्तरी—वही देगा ! उसके पास समझने के लिये हृदय है। वह कभी इनकार नहीं कर सकता। उसने भी तुम्हारी परिस्थितियों का अध्ययन किया है। उसे भी भीख माँगनी पड़ी है। वह भूख को भली प्रकार पहचानता है।

बालक—बिना भिक्षा लिये हुए मैं निराश कभी नहीं लौटता।

सन्तरी—चले जाओ। नहीं तो कुन्दों से मार कर निकाल दूँगा।

बालक—क्यों ?

सन्तरी—राजदरबार में भिक्षा नहीं मिलती। यदि भिक्षा ही चाहते हो तो राजमन्त्री देशराज के महल में जाओ। वहाँ सदैव भिक्षा मिला करती है। कोई भी वापस नहीं लौटता।

बालक—किन्तु मैं कह चुका कि मैं बिना भिक्षा लिये हुए किसी के दरवाजे से वापस नहीं लौटता।

सन्तरी—यदि तुम भिक्षा ही चाहते हो तो एक प्रार्थना-पत्र लिखो। महारानी के सामने कल दरबार में पेश करो। तब उस पर आज्ञा होगी। जो भाग्य में होगा मिल जायगा।

बालक—भूखा मैं आज हूँ और दान कल मिलेगा ? वह भी प्रार्थना-पत्र लिखने पर !

सन्तरी—राज नियम ही ऐसा है।

बालक—मैं राजनियम को उलट दूँगा।

सन्तरी—भोले बालक चले जाओ। नहीं तो कुन्दे की मार खानी पड़ेगी। अभी इज्जत से चले जाओ।

बालक—जो भीख माँगता है उसने अपना सम्मान बेच दिया है। किन्तु ब्राह्मण होने के नाते मैं भीख माँग कर भी अपने सम्मान

की रक्षा कर रहा हूँ। मेरा सम्मान भीख मागने में ही है। मुझे अधिकार है कि मैं अपनी रानी से भोजन माँगू। रानी का यह कर्तव्य है कि वह सम्पूर्ण प्रजा को भोजन देकर भोजन करे। मैं बिना भोजन पाये—बिना अपने अधिकारों को प्राप्त किये हुए नहीं लौट सकता।

भिखारी ने फिर आवाज दी। सन्तरी आगे बढ़ा। उसने बच्चे को ढकेलना चाहा। बच्चा घूम कर फिर खड़ा हो गया। सन्तरी तङ्ग आ गया था। उसने बन्दूक का कुन्दा बड़ी निर्दयता के साथ बालक की पीठ पर जमा दिया। वह गिर पड़ा और रोने लगा।

प्रेमा रोने का शब्द सुन कर बाहर शीघ्रता के साथ भागी। उसने ऊपर से एक अपने ही समवयस्क बालक को पीला कपड़ा पहिने देख कर निकट से देखना चाहा था। अतः वह स्वयं आ रही थी। किन्तु रोने की आवाज सुनकर वह वेग से चल पड़ी थी।

"कौन है।"

"एक लड़का" सन्तरी ने जवाब दिया।

"तुमने इसे मारा है ?"

"भीख माँग रहा था"

"क्या भीख माँगना बुरा है ?"

"राज दरबार में भीख देने का नियम नहीं।"

प्रेमा ने साधु-पुत्र की ओर घूमते हुए कहा—"ठहरो, अभी तुम्हें रुपये मिलेंगे।" यह कह कर फिर ऊपर दौड़ गई। उसने सोने की दो गिन्नियाँ उठाईं और फाटक पर वापस आकर बोली—"भिखारी, ले जाओ।"

बालक ने कातर आँखों से गिन्नियाँ उठाईं किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें बालिका प्रेमा की ओर फेंकते हुए कहा—"रुपया क्या होगा ? मुझे भूख लगी है।"

सन्तरी ने गिन्नियाँ उठा कर प्रेमा की जेब में रख दी। प्रेमा ने उसे फिर हाथ में लेते हुए कहा—रुको। खाना मिलेगा। सन्तरी, इसे अपने पास बैठने दो।

प्रेमा दौड़ती हुई रानी तारा के पास चली गई। रानी ने उसे गले से लगा लिया और पुचकारते हुए कहा—क्या है बेटी।

प्रेमा—एक लड़का महल के फाटक पर खड़ा है। उसे सन्तरी ने मार दिया है। वह रो रहा था। मैंने जाकर उससे रोने का कारण पूछा। उसने कहा—भूख लगी है। मैंने ले जाकर उसे दो गिन्नियाँ दीं किन्तु उसने गिन्नियाँ फेंक दी, कहा—मुझे भूख लगी है। खाना चाहिये। माँ! बड़ा सीधा लड़का है। पीला कुर्त्ता पहने हुए है। हमारी तरह उसके भी बड़े-बड़े बाल हैं। अगर वह हमारे साथ खेलता तो?

रानी—जब उसने कहा कि भूख लगी है तब तुमने क्या कहा।

प्रेमा—मैंने कहा, रुको खाना मिलेगा।

रानी तारा—यदि खाना मैं न दूँ तो!

प्रेमा—मैं अपना खाना दे दूँगी।

राजमहल से आज्ञा हुई—बालक को भोजन दिया जाय और उसे बाहर न जाने दिया जाय।

भोजनोपरान्त बालक महारानी तारा के सामने लाया गया। बालक के भूरे बालों की लटें उलझी हुई थीं। गोरा और गोल चेहरा, हाथ में दो लोहे के कड़े और पीला कुर्त्ता पहने हुए उसने झुक कर प्रणाम किया। वह प्रसन्न था।

रानी तारा ने कहा—कहाँ रहते हो?

बालक—पास के जंगल में।

रानी—किसके पास? तुम्हारे पिता क्या करते हैं?

बालक—पिता जी क्या करते हैं मैं नहीं जानता। मैं अपने गुरूजी के साथ रहता हूँ। वे जंगल में तपस्या करते हैं।

रानी—क्या तुम गुरू का साथ छोड़ कर महल में रहोगे? तुम्हें रोज़ इसी प्रकार भोजन मिलेगा। अच्छे कपड़े पहनने को मिलेंगे। प्रेमा के साथ खेलोगे।

बालक—प्रेमा कौन?

रानी—जिसने तुम्हें गिन्नियाँ दी थीं।

बालक—लेकिन गुरूजी ने कहा था कि भीख मांग कर भोजन करने के पश्चात् नगर से लौट आना। वे मेरी बाट जोह रहे होंगे।

रानी—उनसे कहला दिया जायगा।

बालक—तब मैं रहूँगा।

प्रेमा और बालक साथ-साथ खेलते थे। बालक उसे जंगल की बन और मोरों की कहानियाँ सुनाता था। आश्रम और झरनों की सुन्दरता का वर्णन करता। सरिता और स्रोतों के कल-कल-नाद की बातें करता था। प्रेमा राजमहल के नौकरों की कहानियाँ कहती। जलसों और नृत्य आदि की बातें करती। दोनों साथ ही साथ भोजन करते और दिन भर साथ-साथ इधर उधर दौड़ा करते थे। पीलेवस्त्रो के स्थान पर अब बालक के पास नये वस्त्र थे।

एक रात्रि को बालक ने कुछ डरावने स्वप्न देखे। स्वप्न में गुरू जी उसे ताड़ना दे रहे थे। बालक उठ बैठा था, उसे नींद न आई थी। जब प्रेमा भी प्रातः उठी तब बालक ने अपनी कहानी कह सुनाई। उसका मन क्षुब्ध हो उठा। राजमहल की परतन्त्रता उसे काटती हुई जान पड़ी। उसने अपना पुराना पीला कुर्ता फिर निकाल

लिया और नये कपड़े यथा-स्थान छोड़ कर महल छोड़ने को उद्यत हुआ। फाटक पर पहुँचते ही सन्तरी ने रोका।

"मैं बाहर जाऊँगा।" बालक ने कहा।

"रानी की आज्ञा है कि बालक को बाहर न जाने दिया जाय।" सन्तरी ने जवाब दिया।

बालक सीधे प्रेमा के पास पहुँचा। उसने कहा कि अब उसका मन महल में नहीं लगता। वह जंगल लौट जाना चाहता है। किन्तु सन्तरी उसे रोक रहे हैं।

"क्या मेरा महल अच्छा नहीं लगता?" प्रेमा ने कहा।

"आज तक अच्छा लगता था लेकिन अब अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे नौकर दूर तक खेलने नहीं जाने देते। गुरूजी के पास रह कर मैं बहुत दूर तक चला जाता था।" बालक ने उत्तर दिया।

"तुम जंगल में क्यों रहते हो?"

"ज्ञान प्राप्त करने के लिये। जब मैं ज्ञान प्राप्त कर लूँगा तब ईश्वर मिलेगा। वह हमें तारों के साथ खेलने देगा। गुरू जी भी यही कहते थे। पिता जी भी यही कहते थे। हम तारों के साथ खेलेंगे। तारे पाने का उपाय एक मात्र ज्ञान ही है।"

"तारों तक कोई नहीं पहुँच सकता।"

"मै पहुँच जाऊँगा।"

"आज तक कोई पहुंचा भी है?"

मैं पहुँचूंगा। तब तुम्हें भी बुला लूँगा। मुझे जाने दो। मैं अपने गुरू के पास जाऊँगा।"

"तब हमारे साथ कौन खेलेगा?"

बालक एक क्षण को रुक गया, किन्तु उसने सँभल कर उत्तर

दिया--खेलने के लिये मैं अपने गुरू के पास न जाऊँ,—यह भी ठीक नहीं। खेलने के लिये तुम्हारे खिलौने बहुत हैं।

प्रेमा—आज मत जाओ। तुम्हें सन्तरी बाहर भी नहीं जाने देंगे। एक बार तुम लौट चुके हो। कल जाना। मैं माताजी से तुम्हें आज्ञा दिलवा दूँगी।

बालक—बहुत अच्छा।

दूसरे दिन बालक महल के ऊपरी भाग में खेल रहा था। अचानक उसकी दृष्टि नीचे सड़क पर जा पड़ी। उसने अपने गुरू को पहचान लिया। महल की ऊँचाई से गुरू को पुकारा। वे ठहर गये। प्रेमा ने भी बालक के गुरू को देखा। दोनों गुरू से मिलने के लिये नीचे आए। सन्तरी ने फिर रोका। प्रेमा की आज्ञा से सन्तरी ने बालक को जाने की आज्ञा दे दी। बालक के सामने प्रेमा थी, पार्श्व में क्रूर संतरी और मन में गुरू। वह आगे बढ़ गया। प्रेमा अपने दो दिन के साथी को देखती रही। कुछ दिनों तक उसने अपने साथी को कई बार याद किया किन्तु समय के साथ साथ वह उसे भूल चली। विस्मृति स्वाभाविक गुण है।

बालक प्रेमा को शीघ्र भूल गया। अपने गुरू से मिलकर उसको बहुत प्रसन्नता हुई। उसे लेकर उसके गुरू गढ़वाल से चलकर इधर उधर घूमने लगे। कुछ दिनों के बाद वे अजमेर में जाकर ठहर गये। वहाँ उन्हें कुछ विद्यार्थियों को भारतीय दर्शन पढ़ाने के लिये आर्यसमाज के विद्यालय में कार्य मिला। गुरू ने कुछ दिन अजमेर रहना चाहा था। अतः उन्होंने इस कार्य को स्वीकार कर लिया। दिन भर विद्यालय में अध्यापन के पश्चात् शाम को बालक का गुरु वीणा सिखाते थे। बालक की प्रकृति संगीत की ओर झुकती हुई दिखाई पड़ी। अतः गुरु ने उसे एक विशेष संगीतज्ञ के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजना प्रारम्भ किया।

प्रेमा बड़ी होगई थी। उसकी शिक्षा के लिये उसे भी अजमेर के राजकुमारियों के कालेज में पढ़ने के लिये भेज दिया गया। वह वहीं के छात्रावास में रहने लगी। उसका शिक्षा क्रम मेरी की अध्यक्षता में बड़े ही सुचारु रूप से चलने लगा। एक दिन प्रेमा को नींद नहीं आरही थी। वह दिन में ही अधिक सो चुकी थी। सहसा उसे वीणा की ध्वनि सुनाई दी। ध्वनि बड़ी ही आकर्षक थी। उसने खिड़की से झाँक कर देखा। एक बालक वीणा बजाता हुआ चला आ रहा था। कभी-कभी वह रुक भी जाता। कुछ देर बाद वीणा बन्द होगई। उसके स्थान पर स्वर सुनाई पड़ा। स्वर फिर गीत की एक कड़ी में परिवर्तित हो गया—"जीवन की साध मिटी जाती।'स्वर निकट और साफ होता गया। निकट आने पर चांदनी में प्रेमा ने पहचान लिया। यह वही बालक था।

"कहाँ जा रहे हो भिखारी ?" प्रेमा ने कहा।

"गुरू के पास" एक स्वर हुआ। सम्भवतः बालक ने प्रेमा को पहचान लिया था।

"मुझे पहचानते हो ?,,

तुम्हारा नाम ?

"प्रेमा।"

"प्रेमा ? हां पहचानता हूँ। जयगढ़ नरेश की पुत्री प्रेमा। याद है। किन्तु इससे क्या ? तुम राजकुमारी और मैं भिखारी। जानने से कुछ नहीं होता।"

"क्या तुम आज तक अपने गुरू को ढूँढ़ नहीं पाये ? उस दिन भी अपने गुरू के पास जा रहे थे और आज भी।"

"मेरे गुरू दर्शन के अध्यापक हैं। मैं वीणा सीखने गया था। रात होने से लौट रहा था। मन में आया वीणा ही बजाता चलूँ। पथ कट जायगा।"

"तुम प्रतिदिन इसी तरह गीत गाते हुए जाते हो। मैंने कई दिन तुम्हें गाते हुए सुना, किन्तु पूछा आज ही। आज मैं समझ गई थी कि तुम ही हो। क्या कल भी इसी तरफ से जाओगे ?"

"मैं नित्य ही जाता हूँ।"

"लेकिन मैं तुमसे मिल नहीं सकती ?"

"क्यो ?"

"विद्यालय का नियम है कि कोई लड़की किसी लड़के से नहीं मिल सकती। मेरी भी यही कह रही थी।"

"मिलने को आवश्यकता ही क्या है ?"

"मिलना बुरा नहीं है। सभो अपने मित्रों से मिलते हैं।"

"परन्तु हम लोग आज ही मिल कर ठीक नहीं कर रहे हैं।"

"क्यों ?"

"गुरूजी की आज्ञा है कि किसी लड़की या स्त्री से मत बोलो। मैं उनका आज्ञा उल्लंधन कर रहा हूँ।"

इतने में मेरी आगई। उसने द्वार खटखटाया। प्रेमा ने वार्तालाप बन्द कर दिया। वह खिड़का से उतर कर नीचे आई और दरवाजा खोल दिया।

सड़क पर फिर वही स्वर सुनाई दिया—

'जीवन की साध मिटी जाती।'

गुरू अधिक दिन तक अजमेर न रह सके। वे रोग से पीड़ित हो गये। लोगों ने समुद्र सेवन की राय दी। बालक को लेकर वे कलिङ्ग चले आए। वहीं पर दो वर्ष बाद एक दिन समुद्र में कूद कर उन्होंने प्राण दे दिये।

वे संसार से उठ गये थे, किन्तु बालक को उन्होंने कवि और तपस्वी दोनों बना दिया था। मृत्यु के समय उन्होंने बालक को उपदेश भी दिया था। वे संसार में और भी जीवित रह सकते थे,

किन्तु उन्हें जीने में अधिक कष्ट हो रहा था। अतः उन्होंने समुद्र में कूद कर प्राण विसर्जन कर दिया।

बालक गुरु के बताये हुए मार्ग पर चल रहा था। उसकी वीणा ईश्वर के गुण गाती हुई समुद्र की तरह वायु में तरङ्ग उत्पन्न कर रही थी। अब वह बालक न था। उसमें पूर्ण यौवन फूट पड़ा था। कभी-कभी उसे प्रेमा की याद भी आती थी, किन्तु योग की कठिन क्रियाओं के प्रभाव ने पंचतत्व से बने हुए शरीर की महिमा और इसका अस्तित्व भली प्रकार प्रकट कर दिया था। तथ्य जानकर वह प्रेमा को भूल चुका था। नगर से वह सदैव दूर रहता था। पुराने आदर्शवाद की सत्ता उसके हृदय पर अपना गहरा प्रभाव स्थापित कर चुकी थी। उसमें ज्ञान था पर अभिमान न था। उसकी प्रेरणा में थकान न थी। उसकी गति में विश्राम न था।

तपस्या के कारण उसका शरीर झुलस उठा था। चेहरे पर कुन्दन से भी अधिक आभा झलका करती थी। वह मनुष्यों से दूर रहना चाहता था। यदि कभी किसी से भेंट हो जाती तो वह दूसरी ओर से निकल जाता था। बन के निकट के निवासियों ने उसे गूँगा समझ लिया था। रहस्य यदि किसी को ज्ञात था तो वह पक्षी ही थे। वे जानते थे कि कवि कितना बड़ा तपस्वी है। ऐसा था हमारा कवि।

———

३

गर्मी की छुट्टियां समाप्त हो चुकी थीं। विद्यार्थी गावों से नगरों को लौट रहे थे। गाड़ियाँ खचाखच भरी आती थीं। जो पास हो चुके थे, वे लौट रहे थे। जो किसी कारणवश उत्तीर्ण न हो सके थे उनमें बहुत कम ही लौट रहे थे। गाड़ी के डिब्बों में अध्यापकों की शिक्षा-पद्धति पर वाद-विवाद हो रहा था। कभी किसी डाक्टर की राजनीति समय के आगे बढ़ी हुई ज्ञात होती तो कभी अमुक की नीरसता पर लोग एक गर्म सांस खींचते। अमुक को एक सफल कलाकार मान लिया गया। परन्तु उसका व्यक्तित्व और कवित्व भली प्रकार विकसित न हो सका था। किसी को 'बोर' की उपाधि सर्व-सम्मति से मिल चुकी थी। एक सज्जन कभी विद्यालय समय से आते ही नहीं थे। विश्वविद्यालय का जब दस बज कर पैंतालिस मिनट वाला गजल बजता था तब ही उनकी साइकिल यूनीवर्सिटी कम्पाउन्ड के भीतर प्रवेश करती थी। कुलपति जी दीन-हीन विद्यार्थियों की सहायता के लिये अपने वेतन का आधा भाग व्यय कर देते हैं। विद्यालय की उन्नति की चिन्ता उन्हें सदैव सताया करती है। किन्तु अस्वस्थ होने पर भी वे विद्यालय के कार्य नहीं छोड़ते। उनकी महानता इसी में है। वे पक्के राजनीतज्ञ हैं। यूनियन का झगड़ा उन्होंने बड़े ही सुचारु रूप से समाप्त कर

दिया। विद्यालय में कभी भी हिन्दू-मुस्लिम विरोध का अंकुर जमने ही नहीं पाया। अंगरेजी विभाग के अध्यापक भी बड़े ही सहृदय हैं। वे वेश-भूषा से अंगरेज ही जान पड़ते हैं। अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये सम्भवतः वैसा ही करना पड़ता हो। उस बार जब 'पैलेस सिनेमा हाल' को तोड़ने फूँकने के लिये लड़के चल पड़े तब इन अध्यापकों ने रोकना चाहा था। बड़े परिश्रम के बाद भी सिविल लाइन्स की एक दूकान लूट ही ली गई। पैलेस का परदा फाड़ डाला गया। खिड़कियाँ और शीशे इत्यादि की क्षति भी कम न हुई। इतने में पुलिस भी आ पहुँची थी। उसने बालकों पर लाठी चार्ज किया। बेचारे सहृदय अध्यापक 'गुनाह बेलज्जत' के आधार पर लड़कों के साथ पिटे। एक साहब तो बुरी तरह घायल हो गये थे।

गाड़ी अपनी द्रुत गति से चली जा रही थी। अपर इण्डिया बीच में एक एक्सीडेन्ट हो जाने के कारण पाँच घन्टे लेट थी। वह अपनी कमी को पूरा करने के लिये चालीस मील प्रति घन्टा की चाल से बढ़ कर साठ मील प्रति घण्टा की चाल से चली जा रही थी। स्टेशन के बाद स्टेशन 'वायर पोस्ट' की तरह छूटते हुए चले जा रहे थे। प्रयाग उसे आठ बजे रात को पहुंचना चाहिये था। तीव्रता की विकटता भी उसे अब समय से प्रयाग न पहुंचा सकती थी। प्रयाग के पहले स्टेशन फाफामऊ में जब गाड़ी पहुँची तब ग्यारह बज कर चालीस मिनट हो चुके थे। विद्यालय जाने वाले विद्यार्थी अपना-अपना सामान बाँधने लगे थे। ठीक बारह बजे गाड़ी गंगा के पुल पर थी। घड़घड़ाहट की आवाज़ ने सोने वालों को भी जगा दिया था। अब वे भी सचेत थे। प्रयाग आते ही सब उतरने लगे। किन्तु गाड़ी 'लेट' होने के कारण कुलियों की धूम न थी।

बद्रीदत्त जी जब सेकन्ड क्लास कम्पार्टमेन्ट से नीचे उतरे तब उन्होंने कुली को आवाज दी। किन्तु कुली का पता न था। गाड़ी छूटने का समय आ गया। 'स्टार्टर' 'डाउन' हो गया। गाड़ी सीटी देने लगी, तब कोई चारा न देखकर स्वयं ही बक्स और दो बण्डल लुढ़काते हुए बोले—अगर ऐसा मालूम होता तो 'जङ्क्शन' चला गया होता।

एक एक करके सभी टिकट देकर 'प्लेट फार्म' से बाहर हो गये। रह गये केवल दो व्यक्ति। उनमें से एक हमारे बाबू बद्रीदत्त जी थे और दूसरी एक महिला थीं। उनके पास भी सामान अधिक था। कुछ देर तक प्रतीक्षा करने के बाद तांगे और इक्के भी चले गये थे। उनका अड्डा उस सूनेपन में विश्राम ले रहा था। अतः बड़ी देर तक लोगों के फाटक से निकल जाने के बाद जब बद्रीदत्त जी बाहर निकले तब उन्होंने देखा कि कोई सवारी भी नहीं है। वे निराश होकर वापस लौट आये।

जब बद्रीदत्त जी महिला के निकट पहुँचे तब उन्होंने नींद में अलसाई हुई महिला को खड़ी देखकर अपनी और उसकी परिस्थिति समान जानो और बाले—क्या आप भी कुली की प्रतीक्षा कर रही हैं ?

महिला—और क्या; आप भी ?

बद्रीदत्त जी—छोटा स्टेशन है। गाड़ी चार घण्टे 'लेट' थी। कुली निराश होकर लौट गये। तांगे इक्के भी नहीं हैं। मैं बाहर से देख कर आ रहा हूँ। आप कहां जायँगी ?

महिला—वीमेन्स हास्टल। और आप ?

बद्रीदत्त जी—के० पी० यू० सी०।

महिला—आप पढ़ते हैं ?

बद्रीदत्त जी—क्या आप भी पढ़ती हैं।

महिला—जी हां।

बद्रीदत्त जी—मैं भी विद्यालय का एक विद्यार्थी हूँ। क्या आपके साथ कोई और व्यक्ति नहीं है ?

महिला—जी नहीं।

बद्रीदत्त जी—किस तरह जाइयेगा ?

महिला—यही मैं भी सोच रही हूँ।

बद्रीदत्त जी टहलने लगे। कई बार अपने सामान से लेकर महिला के निकट तक चक्कर लगाते रहे। अचानक उन्हें कुछ ध्यान आ गया। वे सीधे स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचे और कहने लगे कि सामान अपने गोडाउन में रख लें। प्रातः हास्टल चला जायगा। इस समय इक्के तांगे भी नहीं हैं।

स्टेशन मास्टर बड़े दयालु थे। वे स्वयं उठ कर पल्लेदार को जगाने गये। उसे लेकर महिला और बद्रीदत्त जी का सामान 'बुकिङ्ग आफिस' में रखवाया गया। रसीद लेकर दोनों सज्जन बाहर आ गये। बद्रीदत्त महिला की ओर सर उठाते हुए बोले—देखिये, यहां से आपका हास्टल अत्यंत निकट है। उससे कुछ दूरी पर मेरा भी हास्टल है। आप को पहुँचा कर मैं अपने हास्टल चला जाऊँगा। महिला ने कोई उत्तर न दिया। वह बद्रीदत्त जी के पीछे चल पड़ी। बद्रीदत्त जी भी बिना उत्तर की प्रतीक्षा के ही आगे बढ़ गये।

रास्ता अधिक से अधिक सात मिनट का था। बद्रीदत्त जी महिला से कुछ बातें करना चाहते थे किन्तु किसी यौवना के सामने बोलते हुए लज्जा आ रही थी। विशेषतः उस सुनसान में जब पवन भी चुप था। हास्टल के निकट पहुँचने पर बद्रीदत्तजी ने कहा—यही आपके हास्टल का फाटक है।

महिला—मैं पहचानती हूँ।

बद्रीदत्त जी ने जा कर चपरासी को बड़े परिश्रम के बाद जागाया। वह गाढ़ी निद्रा का आनन्द ले रहा था। फाटक खुलने पर महिला ने भीतर जाते हुए कहा—धन्यवाद।

बद्रीदत्त जी ने कहा—नमस्ते।

किन्तु कुछ उत्तर न मिला। चौकीदार ने फिर हास्टल का फाटक बन्द कर लिया। बन्द होता हुआ फाटक शब्द करके सम्भवतः उत्तर दे रहा था।

सोलह जूलाई। विश्वविद्यालय का पहला दिन था। बड़ी भीड़ थी। विद्यार्थी प्राथना-पत्र लेकर घूम रहे थे। जिन लोगों को प्रवेश-पत्र मिल चुके थे वे अत्यन्त प्रसन्न होकर 'काउन्टर' पर बुकिङ्ग आफिस की तरह भीड़ लगा कर कोलाहल कर रहे थे। महिलाओं को काउन्टर पर नहीं जाना पड़ता था। वे सीधे आफिस में पहुँचती थीं। बालकों की फीस लेना रोक कर पहले क्लार्क उनकी फीस ले लेता था। लड़के कब चुप रहने वाले थे। वे व्यंग्य वाक्यों की झड़ी लगा रहे थे। तीन मास तक का जनशून्य देखते ही बनता था। भवनों की पुताई हो गई थी। वे विद्यार्थियों का स्वागत करने के लिये बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ रहे थें। सड़कों पर भी काफी जमाव था। अनेक प्रान्तोंके लड़के और अनेक भाषाओं में एक-एक गुट बना कर वार्तालाप कर रहे थे। कोई विश्वविद्यालय की इमारतों को देख कर ही चकित हो रहा था, कोई घन्टे भर को घड़ी की सुइयों के आकार की माप निश्चित कर रहा था। कोई फाटक पर बने हुए बरगद के वृक्ष के नीचे लिखे 'कोटा रामी टाट आरबोरस' की अपने समस्त ज्ञान द्वारा व्याख्या करने की असफल चेष्टा कर रहा था। चपरासी उद्विग्न होकर इधर से उधर दौड़ रहे थे। सिनेट हाल खुला हुआ था। वहां कहीं लिखा था—ऐडमिशन कार्ड कहीं

पर लिखा था 'इनक्वायरी' कहीं 'नो एडमिशन' आदि के 'पोस्टर्स' दिखाई पड़ रहे थे।

बद्रीदत्त जी विश्वविद्यालय कुछ देर से पहुँचे। अतः बड़ी शीघ्रता के साथ भीड़ में फीस देने के लिये घुसे। लगभग आधे घन्टे के पश्चात् पसीने से तर होकर जब फीस देकर लौटे तब मस्तक पर पड़ी हुई परिश्रम सूचक झुर्रियों ने कुछ संतोष की साँस ली। अपने फटे हुए खद्दर के कुरते की ओर उन्होंने कुछ उदास नेत्रों से देखा और अपनी शिक्षा पद्धति को कोसते हुए आगे बढ़ने लगे जो इतना पढ़ने लिखने के बाद भी सुविधापूर्वक कार्य करने की ओर हमें तनिक भी उन्मुख नहीं करती। अचानक उनके शरीर में एक हल्का सा धक्का लगा और साथ ही साथ 'माइन्ड यार सेल्फ प्लीज' की एक आवाज सी सुनाई दी। बद्रीदत्त ने इस आवाज़ को सुनकर भी अनसुना कर दिया। क्योंकि कभी-कभी आदमी अपनी निर्बलता के कारण असज्जनता का भी प्रत्युत्तर नहीं देता। लेकिन हाँ, कुछ दूर आगे चल कर यह सोचने लगे कि शायद यह किसी लड़की की आवाज़ थी। लैवेन्डर की खुशबू, उन्होंने एक गहरी साँस खींच कर देखा, उनके मस्तिस्क में भिद रही थी। अपने कुरते की बाँह फटी होने के कारण ऊपर चढ़ाते हुए उन्होंने सोचा आखिर वे यूनीवर्सिटी की लड़कियाँ इतनी गर्विता क्यों हो जाती हैं। क्या इनके अन्दर रूप का गर्व होता है ? नहीं, क्योंकि बहुत ही कम लड़कियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें वास्तव में सुन्दर कहा जा सके। इनके अन्दर शिक्षा का गर्व भी नहीं माना जा सकता। क्योंकि शिक्षा का गर्व तो अशिक्षितों के सामने ही उभर सकता है। यहाँ तो इनसे अधिक शिक्षित वातावरण रहता है। इसका सारा दोष लड़कों के सर पर मढ़ा जा सकता है और वास्तव में ये लड़के ही इन लड़कियों के गर्व के कारण हैं। ये

किसी न किसी रूप में इन लड़कियों से ऐसा व्यवहार कर बैठते हैं जिससे वे अपने को बहुत बड़ा समझने लगती हैं ! उदाहरण के लिए उन्हें मिस बिब्बो की याद आई जो देखने में बहुत भद्दी थीं । काले कलूटे मुख पर लिपस्टिक की छटा और सर के ऊपर सतरंगी छतरी और देह पर सटी हुई गुलाबी साड़ी। यह ऐसा लगता जैसे तारकोल से पुते हुए खम्भे पर बुरी तरह पान खा कर थूक दिया गया हो, फिर भी एक दिन जब एक मनचले लड़के ने पीछे से कह दिया कि यदि साड़ी काली होती तो ज्यादा अच्छा लगता क्यों मिस्टर किशोर ! हाँ, बात तो ठीक है,लेकिन फिर छतरी भी काली होनी चाहिए। और सचमुच दूसरे दिन जब वह काली छतरी और काली साड़ी पहन कर गर्व से यूनिवर्सिटी के हाल में राजिनीति का लेक्चर सुनने आईं तब लड़कों ने उनको मिस बिब्बो की जगह मिस कल्लो की उपाधि से विभूषित किया जो बाद में चल कर अमर हो गया। इसी तरह से लड़कियों की चाल, बातचीत, व्यवहार आदि सब पर लड़कों के 'रिमार्क्स' का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।

हिन्दी-विभाग शीघ्र आ जाने के कारण उनकी विचार-धारा रुक गई। वे सीढ़ियों पर चढ़ते हुए सामने के कमरे की ओर बढ़े। अचानक विभाग के अध्यक्ष के कमरे की चिक हिली और एक लड़की भी ठीक इन्हीं के साथ क़दम मिलाती हुई कक्षा की ओर बढ़ी। एक क़दम दरवाज़े के बाहर था और दूसरा क़दम दोनों का दरवाज़े के भीतर। दोनों की आखें ऊपर उठ गईं।

'अरे ! एक चीख सी दोनों के मुँह से निकली। किन्तु कक्षा के सामने दोनों ही ठिठके। फिर कोई शब्द न हुआ और दोनों प्रवेश पत्र अध्यापक के समक्ष रखते हुए बैठ गये। एक उत्तर के कोने में

बैठा और दूसरा दक्षिण की ओर। दोनों हतबुद्धि से एक दूसरे को देखते रहे। पलकें बड़ी देर तक न हिलीं। दोनों की आँखों में कौतूहल था—एक अपूर्व मादकता थी—एक प्रगाढ़ परिचय की भावना का उद्रेक था। अध्यापक का वीर-रस काव्य का शुष्क व्याख्यान अपनी भूमिका बाँध रहा था और इधर एक अपार साहस के साथ दो-दो चार आखें लज्जा छोड़ कर अनुपम व्यापार का उद्घाटन कर रही थीं। आखें कह रही थीं कि घन्टी न बजे। समय की ससीम की रेखायें असीम हो जाँय और चपरासी घन्टा बजाने के समय कहीं रजिस्टर लेकर चला जाय। परन्तु समय को सीमित करने वाली घड़ी ने घन्टा बजाने के लिये मजबूर कर दिया। टन-टन के स्वर के साथ ही पूरी कक्षा जन-शून्य हो गइ।

बद्रीदत्त जी एक बेचैनी लेकर हास्टल लौटे। उस बेचैनी में अभिलाषायें, पीड़ा, सुख, संयोग और वियोग छिपे हुए थे। उनकी धमनियों का रक्त प्रसन्नता प्रकट करने के लिये बड़ी ही तेजी के साथ दौड़ रहा था। भोजनोंपरान्त जब पिता तथा माता को प्रयाग पहुँचने की सूचना देने के लिये पत्र लिखने बैठे तो उनका मन न लगा। उन्होंने पोस्टकार्ड केवल पता लिखकर ही रख दिया। जब किसी काम में मन न लगा तब कमरे से बाहर निकल कर सामने की सड़क पर टहलने लगे। सामने ही महिला-छात्रावास में बिजली के बल्फ जगमगा रहे थे। गर्मी के कारण कमरों की खिड़कियां खुली हुई थीं। एक बार बद्रीदत्त जी ने सोचा कि यदि वे भी किसी प्रकार कूद कर रूप गर्विता महिला के कमरे में पहुँच जाते। इसी प्रकार प्रत्यक कौतूहल-जनक विचार-धाराओं से परेशान होकर वे हास्टल लौट पड़े।

बद्रीदत्त जी बड़े ही उत्साही व्यक्ति थे। दो बार एम० ए० में पहुँचने के पहले ही जेल-यात्रा करके स्वदेश भक्त बन चुके थे।

उनकी वेश-भूषा से भी उन्हें सच्चा स्वयंसेवक कहा जा सकता था। आठ वर्ष की अवस्था से ही वे खद्दर का प्रयोग करने लगे थे। सन् १९४२ की अगस्त की क्रान्ति में लाठियाँ खाते-खाते अनेक घाव हो हो गये थे जो आज भी उनका सम्मान बढ़ा रहे थे। अन्य सहपाठियों की सहायता करना हमारे नायक का प्रथम कर्तव्य था। किन्तु जिसकी सहायता की जाती थी उसे तनिक भी पता न चलता था। कपड़े स्वयं के लिये बनवा कर घर से आते थे किन्तु उनके पहनने वाले दान विद्यार्थी ही होते थे। परन्तु बद्रीदत्त का यह चरित्र अभी साधारण विद्यार्थी वर्ग के समक्ष न आया था। कारण यह था कि उनकी सहायता का रूप साधारण नहीं था। बद्रीदत्त जी के मित्र भी बहुत कम और लगभग नहीं के बराबर थे। पारसनाथ जी से इनकी खूब पटती थी। पारसनाथ जो बड़े ही मिलनसार और भावुक व्यक्ति थे। उनकी भावुकता में भी समाजवाद ठूस-ठूस कर भरा हुआ था। उन्होंने बद्रीदत्त जी से 'यूनियन' के सभापति पद के लिये खड़ा होने को कहा। बद्रीदत्त जी ने प्रथम बहुत आना-कानी की किन्तु अन्त में वे सहमत होगये। उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता का पाठ पढ़ाना था। मुसलमान लड़के एक अलग यूनियन बनाने वाले थे। बद्रीदत्त जी ने सोचा कि यदि वे यूनियन के सभापति हो जाँयगे तो नियमों की शिथिलता को दूर करके मुसलमान विद्यार्थियों से समझौता करके ऐक्य स्थापित करने में समर्थ होंगे। यही प्रधान मोह था जिसके लिये बद्रीदत्त जी ने सभापति के पद के लिये प्रयास करना निश्चित किया। चुनाव के दिन बद्रीदत्त जी की विजय हुई किन्तु विजय का कारण महिलावर्ग ही था। पुरुष विद्यार्थियों के बद्रीदत्त जी से उनके प्रतिवादी को अधिक वोट मिले थे किन्तु महिलावर्ग ने केवल बद्रीदत्त जी को ही वोट दिया।

आश्चर्य का विषय यह था कि बद्रीदत्त जी ने चुनाव में भाग

केवल लड़कों के ऊपर ही निर्भर होकर लिया था। लड़कियों से उन्होंने कनवेसिंङ्ग भी नहीं की थी। फिर भी वोट लड़कियों के मिल गये। ऐसी आकस्मिक जीत पर आश्चर्य स्वाभाविक ही था।

चाणक्काव्य का घन्टा था। महिला और बद्रीदत्त जी एक साथ ही बैठे हुए थे। अध्यापक ने बहुत लड़कों के पास पुस्तक न देख कर प्रश्न किया—किन किन विद्यार्थियों के पास पुस्तकें नहीं हैं ?

सब बालक एक ही साथ बोल उठे—बाज़ार में पुस्तक उपलब्ध नहीं।

अध्यापक—लेकिन मैं यह पूछ रहा था कि पुस्तक किन विद्यार्थियों के पास नहीं है।"

बद्रीदत्त के पास भी पुस्तक नहीं थी। इसलिये उन्होंने अपना हाथ उठा दिया।

अध्यापक की दृष्टि जब बद्रीदत्त जी पर पड़ी तब वे हंस पड़े। उन्होंने तनिक नेत्रों को चढ़ाते हुए कहा—पाण्डेय, तुम्हारे पास पुस्तक है तब भी तुम हाथ उठाये हुए हो। एम० ए० में भी बालपन नहीं गया।

बद्रीदत्त जी ने जब नीचे दृष्टि घुमाई तब वास्तव में अपने सामने पुस्तक पायी। तिरछी भृकुटियों से देखा—निकट की बालिका ने बड़ी ही सावधानी से अपनी पुस्तक बद्रीदत्त जी के सामने खिसका दी थी और वह बड़ी ही मधुरता के साथ मुस्करा रही थी। बद्रीदत्त जी ने अपने हाथ नीचे गिरा लिये और लज्जा से उनका मस्तक नत हो गया।

कक्षा के समाप्त होते ही बद्रीदत्त जी ने धन्यवाद के साथ पुस्तक वापस करनी चाही। पर बालिका ने अपनी कड़ी निगाहों से बता दिया कि इस समय पुस्तक लौटाना उचित नहीं। कक्षा के विद्यार्थी कमरे से बाहर चले गये किन्तु बद्रीदत्त जी बैठे ही रह

गये। बालिका ने लौटकर बद्रीदत्त जी को सुनसान में पाकर कहा, "हास्टल आइएगा ?"

"किताब लौटाने ?" बद्रीदत्त जी ने उत्तर देते हुए पूछा।

"नहीं, ऐसे ही।"

"कब ?"

"सायंकाल पाँच बजे।"

"अच्छा।"

बालिका शीघ्रता से कमरे के बाहर चली आई।

निराशा और आशा की उलझन में बद्रीदत्त जी अपने हास्टल पहुँचे और किसी प्रकार समय काटने लगे। पाँच बजाने के लिये उन्होंने अनेक उपचार किये किन्तु समय अपनी ही गति से चला। देर तक स्नान करके, भोजन करके और समाचार-पत्र के पन्ने भी उलटकर वे समय को शीघ्रता प्रदान न कर सके। अन्त में पाँच बज ही गये।

बद्रीदत्त जी ने 'चित्रलेखा' उपन्यास की एक प्रति हाथ में लेते हुए अपने कुर्ते का बटन ठीक करते हुए आइने में अपना प्रतिबिम्ब देखा और एक बार खिलखिलाकर हँस पड़े—यह रूप है।

उधर बालिका ने अपने बालों को और अधिक उलझाते हुए आइने के सामने कहा—यह जवानी है।

वीमेन्स हास्टल के गेट पर पहुँचकर पाण्डेय जी ने 'काल स्लिप'(Call Slip) भरते हुए कहा—"चपरासी इसे भीतर ले जाओ।"

'बाबू जी! कमरा नम्बर" चपरासी ने कहा।

"बत्तीस।"

और चपरासी भीतर चला गया—

ओ३म् कुमारी ने बाहर आते हुए कहा—"आ गये आप।"

"पाँच जो बज गये" बद्रीदत्त जो ने कहा।

यूनीवर्सिटी के क्लाक टावर की ओर देखते हुए ओ३म् कुमारी ने कहा—सवा पाँच। उफ़! मैं भूल ही गई थी। देखिये—आज मैंने कक्षा में जो धृष्टता की है उसे आप क्षमा करें। एक सामयिक उच्छृंखलता समझकर उसका विचार न करें। मैं अपने किये पर स्वयं लज्जित हूँ।

बद्रीदत्त जी, हृदय को भुलावा देना इसी को कहते हैं। अपने आप को धोखा मत दीजिये। उपकारों पर उपकार लादकर फिर भी चिढ़ाने के लिये क्षमा याचना! आपने मेरे लिए चुनाव में जो परिश्रम किया उसके लिये आपको कितने धन्यवाद दूँ। धन्यवाद ही देकर तो मनुष्य उऋण नहीं हो सकता।

ओ३म्—आप बदला चुकाना चाहते हैं? क्यों?

बद्रीदत्त जी—बदला नहीं, कम से कम मनुष्य अपने ऋण से मुक्त अवश्य होना चाहता है।

ओ३म्—आप सिनेमा चल सकेंगे?

बद्रीदत्त जी—आपके साथ?

ओ३म्—नहीं जाना चाहते?

बद्रीदत्त जी—कुछ भय मालूम होता है।

ओ३म्—यही पुरुष की कमजोरी है। मैं चाहती हूँ कि आप मेरे साथ चलें किन्तु आप कमजोर हैं। इसी कारण पीछे हट रहे हैं।

बद्रीदत्त जी—नहीं किन्तु समाज? परन्तु मैं चलता हूँ। चलिये न?

ओ३म् एक क्षण के लिये भीतर गई और पुनः तनिक व्यवस्थित होते हुए बाहर निकली और ताँगे के अड्डे की ओर चल पड़ी। एक ताँगे पर दोनों बैठ गये। घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

बाबू साहब ! कहाँ ले चलूँ ? ताँगे वाले ने कहा।

ताँगेवाले के शब्द दोनों के कान में गूँजे। दोनों एक दूसरे को देखने लगे। विलम्ब होते देखकर ओ३म् ने उत्तर दिया—'पैलेस।'

बद्रीदत्त जी ने कुछ सकुचाते हुए कहा—मैंने अपने आदर्शवाद को सदैव से बनाए रखने की चेष्टा की है किन्तु आज सिनेमा देखकर उसे तोड़ रहा हूँ।

ओ३म्—आप के त्याग के लिये धन्यवाद। किन्तु मैं किसी को कर्तव्य और आदर्शवाद के पथ से हटाना नहीं चाहती। ताँगे वाले को पुकारकर ओ३म् ने फिर दुहराया—सिविल लाइन्स गिर्जाघर।

आवाज आई—बहुत अच्छा।

बद्रीदत्त—यह आपने क्या किया ? मैं चलने को तैयार था। सिनेमा ही चलिये।

ओ३म्—आज से मैं भी सिनेमा नहीं देखूँगी।

बद्रीदत्त जी ने कहा—क्यों ?

ओ३म्—बेकार ही पैसा खर्च होता है। उतने से तो कई प्राणियों का भोजन चल सकता है। आज तक मैंने इस प्रश्न पर सोचा ही नहीं था। परन्तु 'यूनियन' की मीटिङ्ग में आप का व्याख्यान। उफ़ ! बड़ा ही मार्मिक था।

बद्रीदत्त जी—मनुष्य अपनी प्रशंसा ही सुनना चाहता है। इसलिये आप कहती जाइये। रुक क्यों गईं ?

ओ३म् लज्जित हो गई। उसने मुँह घुमाते हुए कहा—आप को चिढ़ाना खूब आता है।

बद्रीदत्त जी—मुझे नहीं, उसकी कला आप में अधिक विराजमान है।

ताँगे के रुक जाने के कारण वार्तालाप का क्रम रुक गया। गिर्जेघर के सामने दोनों ताँगे से उतर गये। ताँगा वाला दो रुपये का नोट अपने हाथ में देखकर मुस्कराता हुआ अपने ताँगे पर आ बैठा और फिर अपनी मन्थर गति से घोड़ा चलने लगा। थोड़ी देर में ताँगा अदृश्य हो गया। जब तक ताँगा दिखाई पड़ रहा था तब तक दोनों उसी की ओर घूरते हुए कुछ सोच रहे थे। सम्भवतः वार्तालाप का विषय ही न मिल रहा था। अन्त में ताँगे के अदृश्य हो जाने पर बद्रीदत्त जी गिर्जे की ओर मुड़े और उसकी संगमरमर की सीढ़ियों पर चढ़कर बैठ गये। ओ३म् ने बद्रीदत्त जी का अनुकरण किया।

बद्रीदत्त—ओ३म् जी, आप को प्रयाग कैसा लगा ?

ओ३म्—आपको कैसा लगा ?

बद्रीदत्त—मुझे प्रयाग ही अधिक अच्छा लग रहा है। गत वर्ष लखनऊ में पढ़ता था। न तो कुछ पढ़ाई हो पाती थी और न वहाँ मन ही लगता था। विद्यार्थी लड़कियों के पीछे घूमा करते थे। थावर्न की लड़कियाँ एक पटरी पर चलती थीं और विद्यालय के लड़के सड़क की दूसरी पटरी पर चलते थे। एक दूसरे पर व्यंग्यवाण छोड़ना साधारण बात थी। वातावरण भी बड़ा दूषित था। परन्तु प्रयाग में सभी बातें विपरीत हैं। घन्टा बजते ही विद्यालय की सड़कें साँय-साँय करने लगती हैं। बी० ए० तक सहशिक्षा भी नहीं है। एम०ए० में पहुँचते-पहुँचते विद्यार्थी परिपक्व हो जाते हैं। वे जीवन के गूढ़ तत्व को समझने लगते हैं। उन्हें समाज की सैद्धान्तिकता का पता भली प्रकार चल जाता है। वर्तमान और भविष्य का अनुमान लगाकर ही वे किसी कार्य का श्री गणेश करते हैं। अतः ऐसी अवस्था में यदि सहशिक्षा का क्रम चलता रहे तो कोई हानि नहीं हो सकती।

"क्योंकि हम लोग एम० ए० में पहुँच चुके हैं इसी लिये न" बात काटते हुए ओ३म् ने दुहराया।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, एम० ए० में सभी पढ़ने वाले पहुँचेंगे। मैंने तो साधारणीकरण ही किया था। लेकिन आप का व्यंग्य बड़ी ही मार्मिक चोट करता है। इसे आप को मानना ही पड़ेगा"।

"आप को समझाना खूब आता है।"

"और आप को व्यंग्यवाण चलाना।"

"क्या अब कुछ भी समझाने को नहीं रह गया ?"

"एक बात है।"

"उसे भी कह डालिये।"

किन्तु यह हास्यास्पद नहीं। काम यह है कि नोआखाली के उपद्रव में धन-जन और भारतीय सभ्यता पर जो आघात हुआ है उसे आपने भी पढ़ा ही है। इस समय सहस्रों की संख्या में नर-नारी, बालक-वृद्ध घरों को छोड़कर इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। उनके पास भोजन-वस्त्र की भी अत्यन्त कमी है। उसके लिये द्रव्य भेजना हम लोगों का परम कर्तव्य है।

"तो आप चन्दा चाहते हैं ?"

"नहीं नहीं, इतना शीघ्रता मत कीजिये। चन्दा चाहिये अवश्य लेकिन माँगने की एक नया पद्धति निकाली गई है।

"वह क्या ?"

वह यह है कि मैंने अपने मित्र सन्यासी कवि से एक बत्तीस पृष्ठ की कविता बंगाल और नोआखाली पर लिखवाकर छपवाई है। यदि उसे आप अपने हास्टल में बिकवा दें तो उसी से कम से कम सौ रुपये भेजे जा सकते हैं।

"उसका लेखक कौन है ?"

"जिसने लिखा है—कवि—मेरा मित्र।"

"मैंने सोचा कि सम्भवतः आप का नाम—"

"यदि मेरा नाम होता तब ?"

"तब मैं उसे न बेच सकती।"

"क्यों ?"

"मुझे नहीं मालूम" ओ३म् ने लजाते हुए उत्तर दिया।

"अब आप उसे सहज ही बेच सकेंगी। आप जो चाहती हैं वह मेरे मन में पहले से ही रहता है।"

ओ३म् ने उठते हुए कहा—"किताबें कब मिलेंगी ?"

"कल।"

"यह आप के हाथ में क्या है ?"

"चित्रलेखा।"

"क्या आप पढ़ चुके हैं ?"

"क्या आप पढ़ना चाहती हैं ?"

"किताब आप की है या लाइब्रेरी की ?"

बद्रीदत्त जी ने किताब ओ३म् को देते हुए कहा—"जिसके पास रहती है उसी की है।"

ओ३म् ने अधिकारी का नाम ढूँढ़ने के लिये प्रथम पृष्ठ खोला। उस पर लिखा हुआ था "ओ३म् कुमारी।"

किन्तु बद्रीदत्त जी तब तक सामने जाते हुए खाली ताँगे वाले को रोक रहे थे। ताँगा रुका और दोनों हास्टल की ओर चल पड़े।

४

देशराज देशाटन करते हुए जगन्नाथ ज पहुँच गये। जगन्नाथ जी के मन्दिर के निकट ही जयगढ़ का एक पुराना मन्दिर था। त्रिभुवन वीर विक्रम साहदेव राज्य के कामों से ऊबकर यहीं आया करते थे। दो-तीन मास तक कभी-कभी समुद्र की लहरों का आनन्द लेत थे। जगन्नाथ धाम उन्हें बहुत प्यारा था। तब भी जयगढ़ के मन्दिर पर उन्होंने तनिक भी दया न की। उसकी मरम्मत पर ध्यान न दिया गया। मन्दिर की ईंटें खिसकने लगीं और आज केवल उसका एक भाग ही मृत्यु के द्वार पर बैठे हुए बुड्ढे की तरह खड़ा है। पुजारी देशबन्धु को राज्य की ओर से नियत समय पर भोजन और वस्त्र के लिये जयगढ़ से धन आ जाता था किन्तु उसने कभी भी मन्दिर की दशा और उसके अधोःपतन की सूचना नहीं दी। पुजारी मनमाना करता है। उसे मन्दिर की ईंटों से कोई तात्पर्य नहीं। वह भगवान् के निकट रहकर उन्हीं से प्रार्थना करता है। भगवान् से ही प्रार्थना करके मन्दिर का जीर्णोद्धार कराना चाहता है। पत्थर की मूर्तियों में अपार साहस है। वे एक न एक दिन अपना चमत्कार दिखायेंगी। मन्दिर की प्रत्येक ईंट पर जादू हो जायगा और उनके स्थान पर विशालकाय मन्दिर रात के एक ही प्रहर में अपनी धवल पताका फहराने लगेगा। लोग आश्चर्य से देखेंगे। नास्तिकों में भी यह घटना आस्तिकता का संचार करेगी।

मन्दिर की महत्ता बढ़ जायगी और जगन्नाथ जी के मन्दिर से भी अधिक सम्मान की दृष्टि से लोग इसे देखने लगेंगे। पुजारी देश-बन्धु की कीर्ति राजा की कीर्ति से अधिक दिनों तक गाई जायगी। यही मोह था जिसके कारण पुजारी ने मन्दिर के पतन की सूचना न दी। अभी मन्दिर का प्रमुख भाग तो गिरा भी न था। पुजारी सोचता था कि जब मूर्ति के ऊपर ईंटें खिसककर गिरने लगेंगी तब भगवान् स्वयं उसका प्रबन्ध करेंगे।

पुजारी ने स्वप्न में भी न सोचा था कि देशराज जी कार्य की व्यस्तता से छुट्टी पाकर जगन्नाथ धाम के लिये चल पड़ेंगे। राज्य की विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान पुजारी को भली प्रकार था। देशराज का स्वभाव भी किसी भी राज्य से सम्बन्धित व्यक्ति से छिपा न था। अतः स्वयं मन्त्री के आने का समाचार पाकर पुजारी घबड़ा गया। उसकी चेतना को एक ठोकर लगी और वह मन्दिर के द्वार की ओर दौड़ा। देशराज अपने सेवकों समेत खड़े करुणा-पूर्ण दृष्टि से मन्दिर के अधःपतन पर विस्मित हो रहे थे। पुजारी ने द्वार पर पहुँचकर आशीर्वाद देते हुए प्रवेश करने के लिये दोनों हाथों से संकेत किया।

देशराज सचेष्ट होकर पुजारी के सामने झुक गये। उनकी वाणी से फूट पड़ा—तथास्तु !

भीड़ मन्दिर के भीतर चली गई।

भगवान् की मूर्तियों के सामने आसन बिछाते हुए देशबन्धु ने कहा—बैठिये !

उदास देशराज एक टीस सी उठती हुई अनुभव करके बैठ गये। दासों का झुन्ड सामान भीतर कर रहा था। भगवान् के बन्द द्वार खुल गये। मन्त्री ने मस्तक झुका दिया।

पुजारी बोल उठा—मन्त्री देशराज की जय हो।

मन्त्री में इस जय-जयकार के सहने की शक्ति न थी। वे झुंझला उठे थे। उनकी भौंहें तन गई थीं। उनसे न रहा गया वे बोले—किसकी जय मना रहे हो पुजारी ?

"धर्मध्वज देशराज की।"

"देशराज की ?"

"आश्चर्य क्यों मन्त्रिराज ?"

"आश्चर्य नहीं, महान् आश्चर्य।"

"पुजारी कुछ नहीं समझा।"

"उसे समझा कौन सकता है। जिसे भगवान् नहीं समझा सके उसे मैं, एक मूर्ख राजमन्त्री क्या समझा सकूंगा।"

"पुजारी दया की भीख माँग रहा है।"

दया की भीख मन्दिर की गिरती हुई ईंटों से माँगो। क्षमा गिरती हुई छतें दे सकेंगी और दान तुम्हें मन्दिर में स्थापित पत्थर की मूर्तियाँ देंगी। मन्त्री न्याय जानता है। देशराज दया जानता है। देशराज न तो न्याय जान सका और न मन्त्री दया को समझ सका। यदि ऐसा न होता तो जयगढ़ के किले की ईंटें भी तुम्हारे मन्दिर की भाँति ढह गई होतीं। कुमारी तारा से महाराज का व्याह कराने वाले पुरोहित! मैंने तुम्हारे विषय में उसी दिन अनुमान लगाया था। किन्तु उपहार-स्वरूप अथवा अपने पुरोहित्व का मूल्य जब तुमने जगन्नाथ का राज-मन्दिर माँगा तब राजा ने तो निःसंकोच अपने विवाह की प्रसन्नता में मन्दिर की पूजा सौंप दी परन्तु मैंने तुम्हारे प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करने के प्रथम ही प्रतिश्रुति करवाया था। वचन बद्ध होने पर भी पुजारी राज-नियम पालन न कर सका। खेद की बात है! राज्य की मान-मर्यादा में कलंक लगाने वाले पुजारी। जानते हो कि इतने बड़े अपराध का दण्ड क्या है ?

पुजारी निरुत्तर था। उसकी भावनाओं की हत्या हो चुकी थी। उसका विश्वास कुछ उड़ने-सा लगा था। भगवान् के दरबार में वह अपमानित हो रहा है। ईश्वर ही नहीं, उसका रूप भी उसके सामने है तब भी वह कुछ नहीं कर पाता। क्या रूप वृथा है? क्या उसकी मूर्तियाँ उसका वास्तविक रूप नहीं? ईश्वर का सारा रक्त क्या ज्ञान की सीमा से परे है? मोह की अभिव्यञ्जना में रूप भक्ति की ओर आकर दृढ़ हो गया। परन्तु उसकी दृढ़ता की नींव कहाँ है। ईश्वर कितना सरल है परन्तु उसका रूप कितना कठिन। मैंने उसके रूप के समझने में भूल की है। सत्य से दूर, अपने अपनत्व में ही भूला हुआ एकांगी मैं रूप समझ रहा हूँ।

'क्या सोच रहे हो ?' मन्त्री ने पूछा।

"दण्ड चाहिये अपराध स्वीकार है ?"

"मन्त्री नहीं, देशराज तुम्हें क्षमा करता है। भविष्य में अपने कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट रहो। कल से मन्दिर बनेगा। इसका उद्धार करना आवश्यक है। जब तक मन्दिर बन नहीं जाता तब तक मैं नगर की राज-धर्मशाला में रहकर निरीक्षण करूँगा।" कहते हुए देशराज मन्दिर से बाहर हो गये।

पुजारी अपनी मूर्तियों से लिपटकर रोने लगा। उसकी करुणा फूट पड़ी थी। उसके हृदय का सागर अपने बाँध तोड़कर बाहर निकल रहा था। उसे उन मूर्तियों के अतिरिक्त रोकने वाला भी कोई न था। मन्दिर के द्वार बन्द थे। भीतर कोई जा भी नहीं सकता था। रोते-रोते पुजारी को नींद आ गई।

सहसा किसी ने मन्दिर के द्वार पर थपथपाया! पुजारी जग उठा। उसने कपाट खोल दिये।

एक सन्यासी ने प्रवेश किया। उसने अन्धकार में आगे बढ़ते हुए कहा—आज अँधेरा क्यों है ?

स्वर फूटते ही पुजारी देशबन्धु ने कवि को पहचान लिया। और बोले—भयङ्कर तूफान में दीप नहीं टिकते। शीघ्र ही बुझ जाते हैं। फिर तुम्हारे लिये दीप की आवश्यकता भी तो नहीं है। सत्य से दूर रहकर कल्पना में विश्राम लेने वाले हो। अँधेरे में कविता अच्छी वन पड़ेगी। उस दिन तुमने कहा था कि भावनाएँ अँधेरे में ही अधिक दौड़ती हैं। प्रकाश सत्य का विस्फोट करता है।

"कैसी बातें कर रहे हो पुजारी! आज तूफान तो आया नहीं। प्रकाश उज्ज्वल है। कविता कर रहे हो क्या ? कवि बनने की इच्छा कोई बुरी नहीं है।"—कवि ने कहा।

"दीप जला दूँ ?"

"फिर कविता कैसे करोगे ?"

"किन विचारों की शृंखला जोड़ रहे हो। आज मेरा अपमान हुआ है। तुम्हें अपनी ही धुन है। विक्रम साहदेव के समय का पुरोहित आज अपमानित हो चुका है, एक राजमन्त्री से। बैठो, दीप जलाता हूँ। विचारों की उलझन में प्रतिघात की ठोकर पर सो गया था। दीप जलाने का समय भी निकल गया। तुम्हारी थपथपाहट पर उठा हूँ।"

पुजारी देशबन्धु ने दीप जला दिये। भगवान विष्णु की मूर्ति जगमग-जगमग चमकने लगी। पुजारी ने तत्पश्चात् भगवान् के जूठे वर्तन धोये और आरती उतारी। घन्टे वजे। पूजा समाप्त हो गई। पुजारी फिर उदास होकर कवि के निकट आकर बैठ गया।

कवि ने अपनी दृष्टि मूर्ति पर एकत्रित करते हुए कहा—मैं इतनी उधेड़-बुन के पश्चात् भी न समझ सका कि पुजारी का अपमान कैसे हुआ ? भगवान् के भक्त को भी अपमान की चिन्ता ? उसे स्वयं की—अहं की परवाह ही क्या ? साधु की नम्रता पर सम्मान की तलवार को कुण्ठित हो जाना चाहिये। परन्तु—

"परन्तु क्या ? वह भी कह डालो—उसे छोड़ो नहीं। कविता की व्याख्या में सब कुछ सत्य है। किन्तु सर्वत्र कविता—"

"संसार के कण-कण में कविता व्याप्त है। कविता न होती तो संसार कभी का नष्ट हो गया होता। लेकिन तुम—परन्तु छोड़ो इन बातों को। इसमें रक्खा ही क्या है ?"

"इतने निराश हो गये हो कवि ?"

तुम्हें देखकर, तुम्हारे अपमान का अनुमान करके यही कर सकता हूँ। जब पुजारी भी सम्मान की बात करता है तब विनीत और सम्मान को खो देने वाला कौन होगा ? वीर विक्रम साहदेव के समय से मन्दिर की पूजा करके भी तुम कुछ ऊपर न उठ सके। काम-क्रोध मोह के पुतलों द्वारा किया गया अपमान कभी अपमानित नहीं कर सकता। पुजारी का अपमान उस समय अवश्य होगा जब वह स्वयं कोई घातक कार्य करेगा। जब उसकी तपस्या से भी भगवान् का आसन न डोलेगा। सूर्य के ऊपर कीचड़ फेंकने वालों को भी सूर्य ताप प्रदान करता है। कर्तव्यधारी मनुष्य कभी संसार के मान-अपमान की चिन्ता न करके अपना कार्य किया करता है।"

"ठीक कहते हो कवि—माया में फँस गया था। भूल गया था कि मैं कौन हूँ। तुमने उपदेश देकर कृत्य-कृत्य कर दिया। किन्तु एक बात तुम नहीं जानते। तुम्हीं केवल एक मेरे मित्र हो। यद्यपि हमारी तुम्हारी आयु में आकाश-पाताल का अन्तर है किन्तु मैत्री के लिये आयु नहीं देखी जाती। मित्रता सदैव समान भावनाओं के व्यक्तियों में हो जाना असम्भव था। अतः तुम्हारी श्रद्धा और भगवत्भक्ति को देखकर यदि मैं तुम्हें अपना मित्र मान लूँ तो अन्याय न होगा।"

"उसके बाद।"

"उसके बाद एक कहानी सुनाऊँगा।"

"कहानी ?"

"हाँ कहानी। आश्चर्य क्यों ?"

"पुजारी के विचित्र चरित्र पर।"

"अच्छा तो सुनो पुजारी के चरित्र की विचित्रता—कान खोल-कर सुन लो। फिर पुजारी कहने को न बचेगा और संसार में एक सत्य-विशेष मौन ही रहकर चला जायगा। समय पर सम्भवतः कुछ न कुछ तुम्हें इस कथा से सहायता ही मिले। यह कहानी ही मेरे जीवन की धरोहर थी। आज इस धरोहर की उपयोगिता के लिये पात्र-विशेष तुम उपस्थित हो।

"ऐसी असूल्य कहानी ?"

"मेरी जीवन-निधि।"

"तो उसे निःसंकोच कह डालो। अन्यथा मुहूर्त निकल जाने पर कहीं व्यवधान न पड़ने लगे ?"

"अच्छा, तनिक दीपक धीमा कर दूँ और बाहर के फाटक बन्द कर दूँ। कल से मैं बन्द करने को न रहूँगा और न ये फाटक ही रहेंगे। नवीन मन्दिर का श्रीगणेश होगा !"

पुजारी देशबन्धु दीप धीमा करके फाटक बन्द करता हुआ अपने कम्बल का एक मुड़ा कोना सीधा करता हुआ कहने लगा—

"कवि, क्या तुम वीर विक्रम साहदेव को जानते हो ?"

"जयगढ़ के महाराज।"

"हाँ वही। उन्हीं का यह मन्दिर है। मैं उनका मित्र था—एक विश्वासपात्र मित्र और तब मेरे जवानी के दिन थे। तब इन हड्डियों में आसव लग रहा था। ये झुर्रियाँ, ये नसें और इन भौंहों में प्रलय की सूचना देने वाले भाव थे।" पुजारी तनिक सचेष्ट हो गया। उसकी नसें तन गईं और ओठ आगे कहने के लिये फड़फड़ा उठे—

"जीवन का सच्चा समीकरण सिद्ध हो रहा था। रानी.........नहीं नहीं.........किन्तु कहना ही पड़ेगा.........किन्तु नहीं.........पर कह ही डालूँ—अच्छा, तो सुनो—रानी मुझे प्यार करने लगी। मैं राज-महल का पुजारी था। राजा में रूप नहीं था केवल जवानी थी। रानी और मुझमें रूप और जवानी दोनों थे। पूजा का प्रसाद देते हुए रानी ने मेरे हाथ दबा दिये। उसकी आँखों से विलास की मादकता टपकती हुई ज्ञात हुई। मेरी जवानी ने और रानी के रूप ने धोखा दिया। प्रतारणा को घातक जन्जीरें—मृत्युपाश के यमदूतों की छाया के समान घेरकर मुझे सन्तप्त करने लगी! मैं अपने को ही भूल गया—पूजा भूल गई। वासना तड़प उठी। बस, अब मैं कुछ नहीं कह सकता—हा, कुछ नहीं कह सकता। जाओ, चले जाओ कवि। मैं तुम्हारा निरादर कर रहा हूँ। चले जाओ मेरे राजमन्दिर से। भागो—भाग जाओ।" कहता हुआ पुजारी दोनों हाथ मस्तक पर रखकर रोने लगा।

"सत्य कहने में डर रहे हो"—कवि ने कहा।

"अब मेरा अपमान मत करो।" चले जाओ कवि—पुजारी ने कहा।

बस, इतने में अधीर हो उठे? ले जाता हूँ—कवि ने कहा।

"लेकिन मैं वचनबद्ध हो चुका हूँ। ठहर जाओ। वह भी कह दूँ। वैठ जाओ। क्षमा कर दो। मैं स्वयं को ही भूल गया था"—पुजारी ने कहा।

"साँस लो पुजारी"—कवि ने कहा!

हाँ, तो मेरी वासना के नग्न रूप ने एक दिन मुझे राजा को विष देने के लिये आबद्ध कर दिया।

बस पुजारी अब मत कहो। विक्रम साहदेव की हत्या! नहीं सुन सकता। बस जाता हूँ। कान सुनकर कट क्यों नहीं गये?

यही तुम्हारा रूप है ? यही तुम्हारी जवानी है ? क्या तुम्हारे रूप में ईश्वर नहीं था। क्या तुम्हारी जवानी में साधना और संयम के ताले नहीं लगे हुए थे ? क्या तुम इतने बड़े पतित हो गये थे ? बस।

"घबरा उठे कवि ? आज तुम्हारी कल्पना की उड़ान कहाँ है। विभत्स का इतना भी रूप अपना भावात्मक परिधि में न खींच सके। सत्य बड़ा कठोर है। तुम्हारी कविता झूठी है। सत्य कड़वा होता है ? फूक दो अपनी कविता। भूल जाओ कि कवि हो। तुम मत सुनो। इन टूटती हुई दीवालों से कहूँगा। उड़ती हुई धूल से कहूँगा। आकाश के तारों से कहूँगा। सुनने को कलेजा चाहिए। दिल चाहिए। वह दिल तुममें नहीं है। नारी के कोमल किन्तु कठोर आघातों को सहते-सहते वह मर गया है। उसमें चेतना नहीं है। हृदय को तोड़कर कवि बने हो। आत्मा को भूनकर साधक बने हो, तुम्हारी हड्डियों ने केवल उत्थान देखा है। पतन की गहराई माप नहीं सकते। पुजारी ने बलिदान और सृजन, नाश और सृष्टि साथ-साथ देखा है। मैं तो यह कहूँगा कि जवानी जिसे मस्त न बना सकी, यौवन जिसे धोखा न दे सका, वह यौवन और वह जवानी वृथा है..................।"

"और कुछ कहोगे।"

राजा को विष देकर, अपने मित्र की हत्या करके भी मैं रानी तारा को न पा सका। उस दिन से वह मुझसे घृणा करने लगी। मुझे महलों में जाने से रोक दिया गया। अब मैंने सुना है कि रानी मन्त्री देशराज को प्यार करती है।

"रानी देशराज को प्यार करती है !"

"हाँ, कान खोलकर सुनो। रानी देशराज को प्यार करती है। वही मंत्री देशराज, जिसने मेरा अपमान किया है। वही मन्त्री

देशराज जो रानी के प्रेम की निशानी-स्वरूप मन्दिर का उद्धार ही नहीं उसे नया रूप देने की प्रतिज्ञा कर चुका है।''

"यह तो अच्छा ही है।"

"परन्तु मैं देशराज का प्रतिद्वन्द्वी जो ठहरा।' मुझे जीवन से घृणा हो चुकी है। मेरा रूप भी नष्ट हो चुका है। जवानी के दिन व्यतीत हो चुके हैं। अब कुछ करना भी नहीं है। दिन बड़ी ही कठिनता से कट रहे हैं।"

कवि को कुछ अच्छा न लगा। वह स्वयं उठकर चला गया। सम्भवतः वह समझता था कि पुजारी कायर है। वह कभी आत्म-हत्या नहीं कर सकता। ऐसे अनेक स्थलों पर उसने अपना चमत्कार दिखाने का प्रयास किया है। कितनी ही बार मृत्यु के वरदान माँगे हैं। किन्तु वरदान कभी पूरे न हो सके।

———

५

हिमालय की चोटियाँ वर्फ से ढकी हुई थीं। पर्वतीय वृक्षों की जड़ें और उनके तने भी सफेद बर्फ के निचले भाग में विश्राम ले रहे थे। पत्तियां झड़ चुकी थीं। उनकी नग्न काया और वर्फ के सफेद फुहारे वृक्षों के बुढ़ापे का सन्देश सुना रहे थे। विकट सर्दी थी। पक्षियों का आना जाना बन्द सा था। अलखनन्दा की पहाड़ियाँ उस सरकती हुई रात्रि में चन्द्रमा के विशाल आंगन में खड़ी मुस्करा रही थीं। झरने पानी जम जाने के कारण एक धवल पथ की सृष्टि कर रहे थे। ऐसा पथ जिसमें आदि अन्त सब लीन हो गया हो। पहाड़ी की ऊँची चोटी पर एक छोटा सा मैदान था और उस मैदान पर पहुंचने के अनेक टेढ़े-मेढ़े रास्ते थे। ऐसा ज्ञात होता था कि स्वर्ग की सीढ़ियाँ बनी हैं। इन रास्तों पर अपने को सभालना सरल न था। जहां ये अनेक टेढ़े-मेढ़े मार्ग थे वहां एक राजमार्ग भी था। यह मार्ग काफी चौड़ा था और उस पहाड़ी का चक्कर लगाते हुए ऊपर चढ़ता था। इस पर मोटरें सरलता के साथ दौड़ सकती थीं। ऊपरी चट्टान पर डा० भाटिया का विशाल सैनीटोरियम था। इस सैनीटोरियम में भारत के ही नहीं वरन् अन्य देशों के लोग भी तपेदिक का इलाज कराने को आते थे। पहाड़ी के ऊपर चारो तरफ छोटे-छोटे बगले बाहर की तरफ

बने हुए थे। इन्हीं बंगलों में बीमार रहा करते थे। बीच वाला बँगला स्वयं डाक्टर साहब का था। डाक्टरसाहब का दवाख़ाना भी इसी बँगले में था। निचले भाग तो दवाइयों की आलमारियों से ही भरे रहते थे। किन्तु ऊपरी भाग में डाक्टर साहब स्वयं रहा करते थे। बँगले बेलों से ढके हुए रहते थे। क्यारियां कभी फूलों से रिक्त देखी ही नहीं गईं। किन्तु ये वे फूल नहीं थे जिनमें सुगन्धि होती।

डाक्टर साहब बंगले के निचले भाग में उतरते ही एक विशेष मुद्रा बनाए हुए अपने कमरे में प्रवेश कर गये। सबसे पहले उनकी दृष्टि कैलेन्डर पर पड़ी। वह बदला नहीं गया था। कल की तिथि आज भी वैसी ही बनी थी। तिथि बदलते ही वे कुछ ठिठुके। मास का अन्तिम दिन था। उनके मुख से निकल पड़ा—तीस सितम्बर। कैलेन्डर से दूर हट अपनी कुर्सी पर बैठते हुए बोले—'यादव'।

"हाँ हुजूर।"

"ऊपर से आमदनी का बक्स उतार कर ले आना तो।"

"बहुत अच्छा सरकार।"

वह चला गया और दूसरे क्षण एक लड़की का बक्स उठा लाया। डाक्टर साहब दस-दस और पाँच-पाँच के नोट अलग करने लगे। दस-दस के नोट ही बक्स में अधिक थे। उन्हें इकट्ठा करते हुए बीस नोट अलग गिन गये। मनी आर्डर फार्म दूसरे तरफ की ड्रार से निकाल कर पता लिखकर रुपये लिखने के पहले कुछ रुक गये। क़लम ऊपर उठ गई और मस्तक पर बल देकर सोचते हुए से ज्ञात हुए। तत्पश्चात् एक तीसरी ड्रार में से एक पत्र निकाला। उसे अद्योपान्त पढ़ने पर ढेर से दस के पांच नोट और निकाले। फार्म का अधूरा अंश भी पूरा कर दिया। फिर चपरासी को आवाज दी। किन्तु कई वार पुकारने पर भी वह न आ सका।

तब मेज पर की घन्टी का स्विच दब गया। बंगले के चारो ओर की घन्टियाँ बज उठीं। कई बार बजाकर वे शान्त हो गये। कुछ समय पश्चात् हाँफता हुआ राधा उपस्थित हुआ। उसे देखते ही साहब एक लम्बी सांस खीचते हुए बोले—"अस्पताल छोड़ कर दूर जा बैठते हो। यह ठीक नहीं है। सुबह शाम कहीं भी बाहर मत जाया करो। तुमसे कितनी ही बार कह चुका हूँ किन्तु तुम मानते ही नहीं। मैं किसी दिन तुम्हारी चिलम और हुक्का दोनों फोड़ दूंगा। तब चैन आएगा और तभी तुम्हारा जाना भी बन्द हो जायगा। आज तुमने कैलेन्डर की तिथि तक नहीं बदली। आफिस में झाड़ू तक नहीं लगाई। दरवाजे और खिड़कियां साफ नहीं की गईं। उन पर वह देखो बर्फ के टुकड़े चमक रहे हैं। यह अस्पताल है राधे! कितनी बार समझाया कि दुनियाँ के हर काम से अस्पताल का काम जरूरी है। मैं कभी-कभी अपना स्नान और भोजन भी अस्पताल के काम के लिये बन्द कर देता हूँ। सोचता हूँ कि अगर किसी इन्सान की जिन्दगी मेरी मेहनत से भी बच सकती है तो मैं क्यो न मेहनत करूँ। मेरा काम दुनियाँ वालों को जिन्दा रखना है। जो मरना भी चाहते हों उन्हें भी एक बार जोर लगा कर कुछ न कुछ दिनों के लिये जान डाल देता हूँ। जानता हूँ कि ईश्वर नहीं हूँ, और बिना उसकी मर्जी के एक पत्ता भी नहीं हिलता। लेकिन कोशिश इन्सान का फर्ज है। लेकिन तुम—तुम चाहते हो कि यहां आकर लोग तबाह होकर भी कुछ न पायें और अपनी जान गवां करके जायें ताकि उनके सामान पर तुम अपना अधिकार कर सको?"

"बाबू, आप यह सब क्या कह रहे हैं? आज रमणी बाबू की बहन की मृत्यु हो गई। उसे जब मैं बंगले से हटाने के लिये गया तब रमणी बाबू फूट-फूट कर रो उठे। वहां और कोई नहीं

था। मेहतरों से अपनी बहन की लाश उठाने के लिये वे मना कर चुके थे। ऐसी दशा में यदि मैंने लाश फूकने में उन्हें मदद पहुँचाई तो कोई बुरा नहीं किया। आप सोचते हैं मैं मरीज़ों के मरने पर उनके सामान लेता हूँ! मगर आज तीन वर्ष हो चुके मैंने किसी भी बर्बाद मरीज़ के घर वालों से एक पैसा भी नहीं मांगा। जो लोग अच्छे हो जाते हैं वे जरूर कुछ न कुछ दे जाते हैं। खुशी से दिया हुआ धन लेने में मैंने तनिक भी संकोच नहीं किया। यह अवश्य मेरी गलती हो सकती है।" राधा ने कहा—

सरोज मर चुकी? कब? मुझे क्यों नहीं बताया? रमणी बाबू कहां हैं? उनको तुम हमारे पास क्यों नहीं लाये? डाक्टर साहब कह रहे थे राधा, एक दवा और बाक़ी थी। अखिरी सुई और लगा लेने पर मुझे यकीन हो जाता लेकिन.........खैर! जाओ यह मनी आर्डर जल्दी डाकखाने में देकर रमणी बाबू को यहां भेजो। परन्तु नहीं, पहले रमणी बाबू को भेज दो। फिर डाकखाने जाओ। अभी तो साढ़े नौ ही बजा है। कोई जल्दी नहीं। मगर भूलना नहीं। मनी आर्डर जरूर चला जाय। रुपये" गिनो कहकर पच्चीस बार रुपये गिनकर डाक्टर साहब ने चपरासी को बिदा किया।

यादव ने साढ़े नौ की घन्टी बजाई और मरीज़ों का आना जाना प्रारम्भ हो गया। यह घन्टी प्रतिदिन साढ़े नौ पर बजती थी और तभी मरीज़ों का झुण्ड दवाखाने की ओर चल पड़ता था। कम्पाउन्डर के तीन दिन के अवकाश पर चले जाने के कारण डाक्टर को मरीज़ों का हाल देखकर पुरजे पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् दवा भी देनी पड़ती थी। अतः डाक्टर साहब अत्यन्त परेशान से ज्ञात हो रहे थे। पर आज यह ऊपरी परेशानी ही न थी। उनका हृदय भी उलझनों से पूर्ण दिखाई देता था। यदि कोई

मरीज़ तनिक भी बोल देता था तो वे निरुत्साह से खड़े हो जाते और कहने लगते—जो कुछ कहना हो एक साथ कहो। बार-बार सुनने की शक्ति मुझमें नहीं है। दवा देते समय कई बार वे अपने कमरे की तरफ भी देख लिया करते थे—सम्भवतः रमणी बाबू के लिये उनका ध्यान खिच जाता था किन्तु खाली कुर्सी को देखकर के निराशा से फिर दवा वितरण में लग जाते थे। घंटों बीत गये। मरीज़ों का ताता भी टूट गया। कुछ इने-गिने शेष मरीज़ों को दवा दे चुकने पर उनकी आखें घड़ी की सुई की ओर घूम गईं। घड़ी में एक बज चुका था। यादव ने अस्पताल बन्द होने की घंटी बजा दी। किन्तु डाक्टर साहब तब भी बैठे ही रह गये। यादव ने डाक्टर साहब से जलपान के लिये कहा। किन्तु डाक्टर साहब ने मना कर दिया। अभी वे कुछ काम वहीं बैठ कर करेंगे। डाक्टर साहब की स्त्री रामा ने देर होते देखकर पति को बुलाने के लिये अपनी कनिष्ठा पुत्री कृष्णा कुमारी को भेजा। कृष्णा की चंचलता बहुत बढ़ी हुई थी। वह किताब की पोथी पिता के सामने से अलग सरकाते हुए और उसके पन्ने बन्द करते हुए कहने लगी—पिता जी अम्मा बुला रही हैं। यह कह कर उसने अपना छोटा सा मुँह पिता के मुँह पर रख दिया।

पिता ने अपने प्यारे बच्चे को गोद में खीचते हुए, तथा प्यार करते हुए कहा—अच्छा, चलते हैं।

बच्चा—नहीं पिता जी, अभी चलिये।

पिता—चलता हूँ बेटा, वह देखो राधा किसी को उठाये हुए चला आ रहा है। उसे देख लूँ तब चलूँ।

बच्चा—अम्मा कहती हैं कि बाबू जी का हाथ पकड़ कर घसीट लाओ। और वह हाथ पकड़ कर खींचने का उपक्रम करने लगी। पिता ने कई आश्वासन दिये परन्तु उसे तनिक भी सन्तोष

न हुआ। तब नितान्त वे झुंझला कर डाटने वाले ही थे कि राधा के ऊपर लदे हुए मनुष्य की कराह सुन कर कृष्णा उनके हाथ छोड़ कर खड़ी हो गई। डाक्टर साहब कुर्सी से उठते हुए बोले—कौन है राधा ?

राधा—रमणी बाबू।

डाक्टर—रमणी बाबू ?

राधा—हाँ रमणी बाबू ही हैं। बहन की लाश फूँककर वापस आ रहे थे। चट्टान की पकडन्डी पर चढ़ने का अभ्यास न था। बेचारे बड़ी कठिनता से चढ़ रहे थे। अचानक पैर लड़खड़ा गये और लड़खड़ाने के साथ-साथ बाबू बीस फिट की ऊँचाई से नीचे आ गिरे। बेहोश पड़े थे। मैं डाकखाने से वापस लौट रहा था। इन्हें देख कर निकट के झरने से पानी लाया। कुछ देर तक छींटे देता रहा। फिर होश आने पर सहारा देकर सैनीटोरियम की सीमा तक ले आया। वहाँ तक आते आते 'सरोज' कह कर फिर बेहोश हो गये। तब मैंने इन्हें अपने कन्धों पर उठा लिया और यहाँ तक किसी प्रकार ले आया।

डाक्टर—तुमने आज बहुत अच्छा काम किया। मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। बोलो क्या इनाम चहते हो ?

डाक्टर इस प्रकार प्रसन्न होगा, यह राधा ने तनिक भी न सोचा था। किन्तु डाक्टर के मुख पर कृतज्ञता के लक्षण देखकर उसने कहा—केवल आपकी दया चाहता हूँ।

डाक्टर ने कहा—राधा ! देर मत करो। पैर पकड़ कर शरीर 'अपरेशन रूम' मे ले चलो। मुझे सहायता दो। देर करने से काम बिगड़ जायगा। बातचीत फिर भी की जा सकती है।

दोनों ने रमणी बाबू का अर्ध-मूर्छित शरीर बड़ी सरलता के साथ उठा लिया। रमणी बाबू बहुत दुबले पतले आदमी थे।

उनकी हड्डियों में मज़बूती चाहे रही हो किन्तु वज़न अधिक न था। खून तो बहन सरोज़ की सेवा करते-करते ही समाप्त हो चुका था।

एक्स-रे से डाक्टर साहब को ज्ञात हो गया कि रमणी बाबू को केवल दो प्रकार की चोटें लगी हैं। कुछ फूट गया है और केवल सर में पीछे की तरफ एक गहरा घाव है। डाक्टर अपनी तेज़ कैंचियाँ छुरी और काँटे लेकर आपरेशन के लिये बैठ गया। कम्पाउन्डर की अनुपस्थिति उसे पहले कुछ बुरी अवश्य लगी किन्तु थोड़ी देर में वह भूल गया अपने ही को, और आपरेशन में तल्लीन रहा। राधा डाक्टर की तल्लीनता पर आश्चर्य प्रकट कर रहा था। उसे विश्वास हो रहा था कि अब रमणी बाबू किसी प्रकार भी मर नहीं सकते। राधा जहाँ अपने डाक्टर के स्वभाव से परेशान था वहाँ उसे डाक्टर की सहानुभूति में और उनके परिश्रम में पूर्ण आस्था थी। दो घन्टे के कठिन परिश्रम के पश्चात् डाक्टर का आपरेशन और पट्टियाँ पूर्ण हो गईं। पसीने से लथपथ डाक्टर 'रूम' के बाहर निकल आया। राधा मरीज़ पर पंखा करने लगा। डाक्टर मरीज़ का चार्ज राधा को देकर अपने कमरे की सीढ़ियों की ओर चल पड़े। यादव परेशान था। उसने डाक्टर को ऊपर जाते हुए देखकर एक ठन्डी सांस ली और हास्पिटल के फाटक चरमर करते हुए बन्द हो गये।

पाँच बजते ही डाक्टर के पगचाप फ़िर सीढ़ियों पर सुनाई पड़े। यादव चैतन्य हो गया। डाक्टर के सामने आते ही उसने कहा—बेग ले आऊँ ?

डाक्टर—नहीं।

यादव—हुज़ूर का आज बगलों में मुआइना करने का दिन है।

डाक्टर—लेकिन आज का इन्स्पेक्शन कल भी हो सकता है।

तुम्हारी याददाश्त का शुक्रिया। जाओ आराम करो। तुम्हारी बारी समाप्त हुई।

दिन भर का थका मादा यादव अपने क्वार्टर की ओर चल पड़ा। डाक्टर हाथ की अंगूठी निकाल कर नचाता हुआ आगे बढ़ा। उसने आपरेशन रूम की ओर झांक कर देखा—मरीज वैसे ही पड़ा है। उसमें कोई हरकत नहीं है। राधा का पखा अपनी मन्द गति से अविरल चल रहा है। डाक्टर और आगे बढ़ गया। उसने क्वार्टरों की ओर चलना प्रारम्भ किया। कुछ दूर जाकर वह फिर बंगलों की ओर चल पड़ा। सात बजे तक सब बंगलों का निरीक्षण कर चुकने पर वह फिर आपरेशन रूम की ओर मुड़ा। सामने कम्पाउन्डर आता हुआ दिखाई दिया। कम्पाउन्डर ने निकट जाकर डाक्टर को प्रणाम किया और आशीर्वाद सुनकर डाक्टर के पीछे-पीछे चलने लगा।

कब आए कम्पाउन्डर ?—डाक्टर ने पूछा

'केवल आधा घंटा ही बीता होगा।'

"तो तुम जा सकते हो।"

"कोई ऐसा काम नहीं है ?"

"घर पर सब कुशल है न ?"

"जी हाँ।"

"लड़के का यज्ञोपवीत भली प्रकार हो गया ?"

"किसी प्रकार आपकी दया से।"

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। डाक्टर के पग आगे बढ़ते चले जा रहे थे। आपरेशन रूम का फाटक सामने ही खुला हुआ दिखाई पड़ रहा था। कम्पाउन्डर ने शान्ति भंग करते हुए पूछा—आज इस समय भी 'आपरेशन रूम' का फाटक खुला है ?

डाक्टर—रमणी बाबू की बहन आज सुबह चल बसी। उसे

दाह करके लौट रहे थे कि अचानक पकडंडी से पैर फिसल गया। वे सड़क पर गिर पड़े। चोट आ गई। उन्हीं का एक बजे से अकेले आपरेशन करता रहा। पांच बजे तक उन्हें होश नहीं था। चलो देखें क्या समाचार है।

कम्पाउन्डर—अकेले आपने आपरेशन कर दिया? वह तो कल भी हो सकता था। मेरी छुट्टी आज ही तक थी।

डाक्टर—'केस' 'सीरियस' था। मुझे रमणी बाबू किसी बहुत बड़े घराने के मालूम होते हैं। मुसीबत के मारे हैं। बहन को लेकर परेशान हो रहे थे।

कम्पाउन्डर—यह इनकी सगी बहन नहीं है। किसी मित्र की बहन है। मुझे तो इनकी बहन नहीं ज्ञात होती। दोनों की मुख-प्राकृति में आकाश पाताल का अंतर है।

डाक्टर—तुम्हें इसका ज्ञान कैसे हुआ?

कम्पाउन्डर—एक दिन दोनों भाई-बहन कुछ बातें कर रहे थे। में अचानक पहुँच गया। बात का कुछ अंश मेरे कानों में पड़ा। उससे सिद्ध है कि यह दोनों एक खून के सगे भाई-बहन नहीं।

डाक्टर—मुझे भी ज्ञात होता है कि रमणी बाबू किसी बड़े घराने के लखपती आदमी हैं। सम्भवतः घर से अलग बहन के नाम पर किसी दूसरी लड़की अथवा अपनी 'बहन' को ही प्यार करते रहे हों। इतना परिश्रम कोई भी दूसरे के लिये नहीं कर सकता।

कम्पाउन्डर—ऐसी बात नहीं है। रमणी बाबू मुझे तो एक महान् आदर्शवादी व्यक्ति ज्ञात होते हैं। उनको आज तक किसी ने बहन सरोज की चारपाई पर बैठे हुए नहीं देखा। एक मित्र की अवश्य याद किया करते हैं। नौकरों से भी वे हरीसिंह, एक पंजाब की बातें सुनाया करते थे।

डाक्टर—कुछ भी हो रमणी बाबू एक रहस्य पूर्ण व्यक्ति हैं।

कम्पाउन्डर—और उनकी सज्जनता में तनिक भी संदेह नही किया जा सकता। उनका शरीर चाहे जितना पिघल जाय किन्तु उनके मस्तक और चेहरे पर वीर्य टपकता है।

डाक्टर—अभी रमणी बाबू का स्वास्थ्य ठीक होने दो। फिर कभी पूछूँगा।

कम्पाउन्डर—कदाचित ही इस बात का उद्घाटन हो सके।

डाक्टर—जानते हो मैं डाक्टर हूँ।

कम्पाउन्डर कुछ अधिक न कह सका। मौन हो गया। वे दोनों आपरेशन रूम में प्रवेश कर चुके थे। राधा खड़ा हो गया। डाक्टर साहब बगल की कुर्सी के ऊपर एक पैर टेक कर मरीज़ की नब्ज देखने लगे। हाथ उठते ही मरीज़ की आँखें बरबस खुल गईं। उसके मुख से निकल पड़ा—

डाक्टर साहब !

डाक्टर साहब बोल उठे—हाँ डाक्टर भाटिया ही हूँ। पानी चाहिये ?

मरीज़ ने सर हिला दिया। राधा ने जल के दो घूँट मुँह में छोड़ दिये। फिर सिर हिलाया और राधा अलग हट गया। मरीज़ के होंठ फड़फड़ाए। ऐसा मालूम हुआ कि वह कुछ कहने के लिये व्याकुल हो उठा हो। डाक्टर ने रोकना चाहा। परन्तु उसकी आँखों में तब तक आँसू की खारी बून्दे छलछला आई थीं। उसके मुँह से निकला—बहन सरोजिनी कहाँ हो !

डाक्टर—इतने घबरा गये रमणी बाबू ? धैर्य धारण कीजिये। बोलियेगा तो घावों पर ज़ोर पड़ेगा। इतनी असमर्थता में बोलना ठीक नहीं। चुप हो जाइये।

रमणी बाबू—दम घुट रहा है डाक्टर साहब। बोलने दीजिये। मुझे बोलने से आराम मिलता है।

डाक्टर ने यों ही प्रश्न किया—सरोजिनी तुम्हारी बहन थी न ?

"जी हाँ, मेरी बहन ही समझिये।"

"समझने की बात नहीं। ठीक-ठीक बताओ कि सरोजिनी तुम्हारी बहन थी या नहीं। कोई रिश्ते की या—"

"नहीं, वह हमारे एक मात्र मित्र की बहन थी। मेरा मित्र एक बहुत निर्धन आदमी था। उससे यों ही मित्रता हो गई थी। वह अगर किसी को प्यार करता था तो सरोजिनी को और मुझको। दुनियाँ में उसका कोई दूसरा न था। मैंने उसकी दरिद्रता मिटाने के अनेक उपचार किये किन्तु उसकी राष्ट्रीयता ने उसे सदैव टुकड़ों का मुहताज रक्खा। एक बार, आज से तीन वर्ष पहले नैनी जेल में उसके पैर में एक फोड़ा निकला। वह आगे चल कर जहर बाद हो गया और सारे शरीर में फैल गया। उसने किसी को सूचना भी न दी। जेल से उस दशा में भी उसे छुट्टी न मिली। वह क्रान्तिकारी जो ठहरा। बस ! उसी पीड़ा में उसका प्राणान्त हो गया। अस्पताल के मृत्यु के डाक्टरों ने दो दिन पूर्व हम लोगों को सूचना दी। उस समय हम लोगों के हाथ पैर कट चुके थे। हम लोग कर ही क्या सकते थे। तीसरी सन्ध्या को हरी सिंह चल बसा।

"मरीज़ ने आँसू पोंछ कर कहने का क्रम जारी रक्खा—मृत्यु के दो घन्टे पूर्व अपनी बहन सरोजिनी को मेरे सामने कर के उसका हाथ मेरे हाथ में देते हुए हरीसिंह ने कहा था—भाई, मेरी और तुम्हारी बहन में कोई अन्तर नहीं। आज तक तुमने मेरी सुधि ली। अब जा रहा हूँ। जाते समय भी तुम्हें मुक्त छोड़ना नहीं चाहता। इस बहन का भार आज से तुम्हारे सर पर है। इसका ब्याह किसी अच्छे किन्तु मेरे ही विचारों वाले व्यक्ति से कर देना जिससे मेरे मिटने के बाद भी लोग मेरा नाम लेते रहें।"

"तब मैंने उसका हात पकड़ लिया। उसके सर पर हाथ रख कर उस दिन से सरोजिनी का भार अपने कन्धों पर ढ़ोता रहा। मित्र की अमिट निशानी मानकर मैं इसे बड़े प्यार से पालने लगा। किन्तु भाई की याद इसके हृदय से तनिक भी न मिट सकी। वह पागलां की भाँति बातें करती। मैं उसे सदैव बहलाने का प्रयास करता। वायु परिवर्तन के लिये कलकत्ता लेकर चला गया। नागपुर से कलकत्ता। कलकत्ते से नागपुर! किन्तु कुछ फल न निकला। अन्त में यक्ष्मा ने आ घेरा। मैं जानता था कि भाई-बहन, माता-पिता सब अप्रसन्न हो जायंगे। एक यक्ष्मा के मरीज़ के साथ कौन रह सकता है। अतः मैं उन लोगों का साथ छोड़कर सरोजिनी को अमर करने के लिये आप के सैनोटोरियम की ओर चल पड़ा। आप का नाम मैंने अखबारों में बहुत पढ़ा था। कितने मरीज़ प्रति वर्ष अच्छे हो जाते हैं। इसी ज्वलन्त आशा को लेकर आप के सैनाटोरिमय में आ पहुँचा। किन्तु जब आप ने कहा कि आने में देर हो गई तभी मुझे निराशा हो गई थी। मैं आज की घटना का उद्घाटन बहुत पहले कर चुका था।"

"किन्तु उसके मरने का समय तो अभी नहीं आया था। वह एक महीने जा सकती थी। मुझे उसकी आज की मृत्यु पर आश्चय ही नहीं अपितु महान आश्चर्य है। मेरे भी सर में चक्कर आ गया जब मैंने सुना कि सरोजिनी चल बसी। मैं तभी से बहुत परेशान हूँ। हमारा डाक्टरी को इस मृत्यु से बहुत धक्का पहुँचा है। मैंने आज तक मृत्यु और जीवन तथा रूप और जवानी को ही पहिचानने का प्रयास किया है। परन्तु आज मैं हार चुका हूँ।" बीच में डाक्टर ने बात काट कर एक सांस में कह डाला।

"नहीं डाक्टर तुम बिलकुल ठीक कहते हो। उसे आज नहीं

मरना चाहिये था। वह मेरे लिये मर चुकी है। अपनी मृत्यु से नहीं मरी है। उसने अपने को मार डाला है।"

"अपनी मृत्यु नहीं मरी? उसने आत्म हत्या कर डाली? इसका क्या कारण है? आद्योपान्त सब रहस्य ही रहस्य है।"

"रहस्य नहीं डाक्टर। इसे रहस्य नहीं कहते। यह त्याग है। महान त्याग, जिसकी गतिविधि ईश्वर और उसके विशेषज्ञ ही जान सकते हैं।"

"अच्छा! को उसने आत्म हत्या कैसे की?

"यह भी सुनोगे।"

"यदि कुछ बुरा न मानो।"

"बुरा मानने की कौन सी बात है।"

"तो कह डालो। सुनने की बड़ी उत्सुकता है।"

"वह मेरे लिये मरी। उसे जब विश्वास हो गया कि वह बच नहीं सकती तब उसने दवा भी पीना बन्द करना चाहा किन्तु मेरी प्रार्थना पर उसने कभी भी "नहीं" नहीं की। वह जानती थी कि यह छूत का रोग है। एक दिन मुझे भी हो जायगा। अतः वह रोज ही लौट जाने के लिये वाध्य करती। कहती थी कि सैनीटोरियम का नौकर मेरे लिये बहुत है। मैं उसे कुछ व्यय के लिये भेज दिया करूँ। बस। किन्तु आप ही सोचिये डाक्टर साहब, मैं उसे छोड़ कर कैसे जा सकता था। मैं नहीं गया। वह मेरी जिद भली प्रकार जानती थी। इसलिये उसने अपने प्राणों का अन्त करना ही उचित समझा। आज से पाँच दिवस पूर्व—मरीज को हिचकी आगई। वह रुक गया। उसने पानी मागा। पानी पीकर वह फिर बोला—"पाँच दिवस पूर्व मेरे शरीर में दर्द हो रहा था। मै आप के पास आया। आपने कोई ज़हरीली दवा दी थी। उस पर अंगरेजी में लिखा था—प्वाइजन्स। बस। वही दवा पीकर वह

सोगई। सोते समय उसने कहा था—नहीं जाते हो तो अब जाना पड़ेगा। मैंने कहा था—क्यों ? उस पर उसने उत्तर दिया था कि मैं कल कुछ कहने को न बचूँगी। उसने मेरे चरण छुए। न जाने कहाँ से उसमें उठने की भी शक्ति आ गई थी। वह फिर चारपाई पर सो गई। केवल एक बार रात में उसने पानी मांगा था। मुझे भी लगा कि वह नहीं बचेगी। मैं भी उसे मन ही मन नमस्कार करके उसके भाई की मृत आत्मा को सौंपकर आया था। जैसा कि आप जानते हैं मैं बाहर सो रहा था। चार बजे उसके कराहने का स्वर हुआ। मैं भीतर गया—देखा—प्राणपखेरु उड़ चुके हैं। मरीज़ की आंखों में आँसू छलछल कर दोनों कोरों से बह कर गालों पर आ गये थे।"

डाक्टर ने पूछा—किन्तु आपने यह कैसे जाना कि प्वाइजनस दवा ही पीकर वह सो गई थी ?

"यह तो एक सरल सी बात है। मैंने देखा—मेरे दवा की शीशी उसके सिरहाने लुढ़की हुई पड़ी थी। बिछावन पर उसकी एक भी बून्द नहीं गिरी थी।"

"किन्तु इस बात को ठीक इसी तरह कैसे मान लिया जाय। मान लिया आप ही ऊब कर उसे जहर देना चाहते हो तो।

खड़े-खड़े कम्पाउन्डर सब सुन रहा था। उसका भी पैर दर्द करने लगा था। किन्तु डाक्टर की इस बात पर उसके शरीर में बिजुली सी दौड़ गई। उसके मुँह से निकल पड़ा—डाक्टर साहब, यह कभी नहीं हो सकता।

तब तक मरीज़ ने अपनी कमीज़ से एक लाल काग़ज़ निकाला और डाक्टर के हाँथों में देकर बोला—यह लीजिये। डाक्टर ने काग़ज़ खोलकर पढ़ना प्रारम्भ किया। उसमें लिखा था—यदि तुम

नहीं घर लौटते हो तो अब मैं लौटा कर छोड़ूँगी। मैंने तुम्हारे मलने के लिये जो दवा आई थी उसे पी लिया है। कल तक किसी प्रकार भी नहीं बच सकती। अच्छा विदा—तुम अपने मित्र के सच्चे मित्र तथा हितौषी थे। तुम मेरे भाई थे। मैं तुम्हारी वहन। किन्तु आज वह नाता भी टूट रहा है। तुम्हारे वहन न थी। मैं बहन मिली थी। मेरे भाई की मृत्यु के बाद तुम मेरे भाई मिले थे। जाओ। ऐसे भाई-वहन दुनियाँ में बड़ी कठिनता से मिलेंगे।

तुम्हारी वहन

चिठ्ठी पढ़ कर डाक्टर साहब की आँखें भी छलछला आईं। मरीज़ को थका जान उसे सोने का एक इन्जेक्शन देकर बोले—कम्पाउन्डर। इसे मेरे ऊपर के कमरे में पहुँचा दो। यह मेरा लड़का है।

मरीज की आखें बन्द होने लगीं।

डाक्टर ने राधा से पूछा—मनीआर्डर भेज दिया ? "जी हाँ तार द्वारा मनीआर्डर गया। अब तक मिल भी चुका होगा।"

डाक्टर—लेकिन मैं एक्स्प्रेस लिखना भूल गया।

राधा—मैं जानता था कि इसे एक्स्प्रेस ही जाना चाहिये इस-लिये यह एक्प्रेस ही गया है।"

डाक्टर—"बहुत खूब, राधा तुम एक अच्छे आदमी हो।

कम्पाउन्डर—कहाँ का मनीआर्डर था।

डाक्टर—मेरी लड़की ओ३म् जो प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ती है। उसने व्यय बहुत पहले मागा था किन्तु मैं भूल गया। रात्रि में मैंने विचार किया। अब वह लौटने का उपक्रम कर रही

होगी। दशहरे की छुट्टी कल से प्रारम्भ होगी। आज उसे यदि रुपया न मिलेगा तो वह किस प्रकार यहाँ आ सकेगी। कम्पाउन्डर तुम परसों सुबह मेरी मोटर लेकर उसे लेने के लिये स्टेशन चले जाओ। प्रातःकाल ही जाना नहीं तो सायंकाल की गाड़ी नहीं देख सकोगे।

काम्पाउन्डर—बहुत अच्छा।

डाक्टर ने देखा—मरीज सोगया है।

६.

'वीमेन्स हास्टल' के 'गेट' पर पहुँचते ही बद्रीदत्त जी को ओ३म् जो आती हुई दिखाई पड़ीं। वे वहीं ठहर कर प्रतीक्षा करने लगे। सामने खड़ा हुआ तांगा और नज़दीक आ गया था। ओ३म् जी ने जैसे हास्टल की सीमा पार की वैसे ही 'क्लाक टावर' ने सवा पांच का गजल बजा दिया। दोनों का ध्यान उधर ही चला गया। वे दोनों एक साथ कह उठे—सवा पांच। उनके चेहरे पर एक विचित्र मुस्कराहट छा गई। कारण यह था कि दोनों जब पहली बार आए थे तब भी सवा पांच इसी स्थान पर बजे थे। दोनों के हाथ नमस्ते करने के लिये लगभग एक साथ ही उठे। ओ३म् ने कहा—पन्द्रह मिनट लेट।

बद्रीदत्त जी ने कहा—नहीं तो मुझे पन्द्रह मिनट बाट जोहनी पड़ती।

ओ३म् जी ने तांगे पर बैठते हुए कहा—मुझे तो बाट जोहने में ही अधिक आनन्द आता है।

फिर दोनों चुप हो गये। कोई कुछ न बोला। फाफामऊ पुल के निकट दोनों तांगे से उतर पड़े। गंगा के किनारे चलते-चलते धोवियों के घाट पर दोनों दो निकट की शिलाओं पर बैठ गये। उनके चरण गङ्गा के कलकल करते हुए नहीं अपितु शान्त जल से

अठखेलियाँ कर रहे थे। दोनों एक दूसरे की ओर कातर नेत्रों से देख रहे थे। परन्तु कोई कुछ बोल नहीं रहा था।

गंगा अपनी ध्वनि से 'हरहर' करती वह रही थी। उसके किनारे पहाड़ की चोटियों की तरह मौन खड़े थे। किन्तु उनकी मौनता में भी एक विचित्र भयानकता दिखाई देती थी। दूर, नदी के पार पेड़ों की आड़ में फाफामऊ बसा हुआ था। उस नगर की चिमनियां अब भी धुआँ उगल रही थीं। आटे की मशीन की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। पुल की छाया जल पर हाथियों की कतार के समान दृष्टिगोचर हो रही थी। पुल पर आने जाने वाले यात्रियों की संख्या अत्यन्त कम थी किन्तु रेलगाड़ी की घड़घड़ाहट अवश्य थोड़ी देर के बाद सुनाई पड़ती थी। कारण यह था कि पुल दोहरा बना था। ऊपर आदमियों तथा अन्य सवारियों के आने-जाने का रास्ता था और नीचे गाड़ी जाने के लिये पटरियाँ बिछी हुई थीं। ऐसे दोहरे पुल भारतवर्ष में अधिक नहीं हैं। दूर दृष्टि दौड़ाने पर पश्चिमी मोड़ के निकट एक नौका रंगीन पाल चढ़ाये हुए इधर ही बढ़ी आ रही थी। उस पर पाल थामें हुए दो चार व्यक्ति बड़ी सतर्कता के साथ बैठे हुए थे। पक्षियों का झुण्ड पानी पी-पी कर घोसलों के लिये विदा हो रहा था। गायें भी वापस जा रही थीं। दिन भर के थके मादें धोबी, जिनके पास कपड़े अधिक धोने को थे वे भी अपना काम समाप्त करके गदहों को ढूढ़ कर उन पर लादियाँ लाद चुके थें और अपना डंडा ढूढ़ रहे थे। तात्पर्य यह है कि वे भी चल ही रहे थे। तट शान्त था और उसकी शान्ति को पूर्ण करने के लिये थे बद्रीदत्त जी और ओश्म् कुमारी।

सहसा शान्ति भङ्ग हो गई क्योंकि कबूतरों का जोड़ा आपस में लड़ने लगा और गुटरू गूँ गुटरू गूँ करने लगा।

ओ३म् ने अँगुली ऊपर उठाते हुए कहा—ये कबूतर कितने सुखी हैं बद्री ! पक्षियों का जीवन भी कितना सुखमय होता है। अगर हम तुम भी पक्षी होते ? हमारा क्रीड़ा स्थल सारा संसार होता। हम तुम स्वतन्त्र आकाश में उड़ सकते। न कोई बन्धन होता न कोई कर्तव्य। उन्मुक्त वातावरण में एक डाली से दूसरी डाली पर बैठ कर जीवन का आनन्द लेते। कितने सुन्दर हैं ये पक्षी ?

"किन्तु जब बहेलिया अपना पेट भरने के लिये गोंद और कम्पों का प्रयोग करके चंगुल में फँसा लेता है तब ये सदैव के लिये मनुष्य के गुलाम हो जाते हैं। इनकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और अनन्ताकाश के स्थान पर केवल एक लकड़ी का ढाबली या लोहे का जलता हुआ ६ इन्च का पिंजड़ा ही उनकी सीमा बाँध देता है। इनकी दृष्टि भी घर की चहारदीवारी तक ही सीमित रह जाती है। आकाश और पाताल सब स्वप्न हो जाते हैं। तुम्हीं बताओ ऐसे रूप का मूल्य ही क्या है ? मृग अपनी सींगों पर कितना गर्व करता है किन्तु वे रूपवान सींग ही उसे मृत्युपाश में बाँध देती हैं। ऐसे रूप का अस्तित्व ही क्या ? वह तो क्षणिक है।"

"किन्तु एक क्षण में ही यदि वह आनन्द मिल जाय जो वर्षों और पूर्ण जीवन में प्राप्त हो सके तब तो उसे उपयोगी समझियेगा। रूप में चाहे जितने दोष हों किन्तु उन दोषों के साथ-साथ उसमें आकर्षण भी हैं। आकर्षण से ही संसार के सभी कार्य होते हैं। पृथ्वी, सूर्य, तारे ही नहीं अपितु संसार के सभी जीवधारी किसी न किसी आकर्षण पर ही स्थित हैं। आकर्षण जिस दिन नहीं रहता, जिस दिन रूप नष्ट हो जाता है उस दिन प्रलय हो जाती है। रूप संसार की सृष्टि के साथ उत्पन्न हुआ है और प्रलय के साथ नष्ट हो जायगा।"

"रूप अमर है ? तो यौवन भी अमर होना चाहिये। रूप और यौवन दो साथ-साथ की वस्तुएँ हैं। दोनों का सम्बन्ध इतना गहरा है कि वे विना एक दूसरे के नहीं रह सकते। यौवन आते ही पक्षी ही नहीं वरन् बुरी से बुरी लड़की और कुरूप से कुरूप मनुष्य रूपवान बन जाता है। प्यासों की आखें एक साथ उनके अधरों से लिपट जाने को उत्सुक हो जाती हैं।"

"यह बिलकुल पूर्ण रूप से सत्य नहीं माना जा सकता। रूप और यौवन में वही अन्तर है जो आनन्द और सुख में है। रूप सब का होता है। रूप हीन है तो वह ईश्वर जिसे संसार रूपवानों में सर्व श्रेष्ट समझता है। यौवन अवश्य क्षीणक है। वह रूप की ही एक विशेष प्रतिक्रिया है। रूप की एक विशेषावस्था है। उसे ही हम जवानी कहते हैं। रूप तो मृत्यु के बाद भी रहता है। आपका तात्पय रूप से नहीं अपितु सौन्दर्य से ज्ञात होता है।"

"क्या रूप और सौन्दर्य दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं ? मैं रूप और सौन्दर्य को एक ही मानता आया हूँ। तुम्हारे रूप को आकृति कहा जा सकता है। किन्तु रूप और सौन्दर्य का कोई झगड़ा मेरी समझ में नहीं आता।"

"सौन्दर्य और रूप यह दो विशेष वस्तुएँ हैं। यद्यपि इनमें भी पूर्ण रूपेण सम्बन्ध है। किन्तु सम्बन्धित हाने से हम दोनों को एक नहीं कह सकते। कोई वस्तु आप को अच्छी लगती है। आप उसे सुन्दर कहने लगते हैं। मेरी दृष्टि में वह वस्तु सुन्दर लगती ही नहीं। मैं उसे असुन्दर कहूँगी। सुन्दरता और कुरूपता मन के चाहने और न चाहने वाले विषय हैं। किन्तु रूप एक वस्तु का रूप है। उसी रूप में सौन्दर्य और कुरूपता का आभास होता है।"

तब तक फाफामऊ प्लेटफार्म से गाड़ी निकली और धड़धड़

करती हुई पुल पार करने लगी। शान्त वातावरण में कुहराम मच गया।

"मालूम होता है कि ईश्वर तुम्हारी ओर से ही बोलना चाहता है। वास्तव में तुम स्वयं ओ३म् हो। क्षमा करना। ट्रेन का उद्धत स्वर तुम्हारे ही स्वर में अपना स्वर मिला रहा है। मैं तो यही जानता हूँ कि तुम ओ३म् हो और तुम में रूप। तुम्हारे रूप में आकर्षण। रूप ही के कारण पहिले मैं खिचा था। खिचावट की वस्तु रूप थी। जब खिच कर निकट आ गया तब मैंने देखा—तुम में अथवा तुम्हारे रूप के परदे के पीछे हृदय यौवन और अनेक ईश्वरत्व की वस्तुएं भी छिपी हुई थीं। मैं विभोर हो उठा। जीवन का वह क्षणिक आनन्द व्याख्या से परे है जब तुम्हारी भी स्नेह पूर्ण आँखे मुझ जैसे अभागे मानव की ओर उठ गईं। तुम्हें देख कर मेरे जीवन की विषमता काँप उठी थी। मुझमें चौगुनी शक्ति का संचार होने लगा। मुझमें स्वाभिमान जाग उठा। तब मैं संसार का सब से बड़ा धनी बन बैठा। ध्यान आया कि मुझसा सुखी दुनियाँ में कोई दूसरा नहीं है। मृत्यु की भावना भी एक बार बहुत दूर चली गई जो मुझसे बाल्यकाल से लेकर आज तक क्षणभर के लिये भी विलग न हुई थी। यह सब मोह नहीं वस्तुतः ज्ञान की सीमा पर चढ़ कर उस पवित्र धरातल पर एक महान् उद्रेक हुआ था जिसने मुझे शूद्र से ब्राह्मण बना दिया है। ऐसी पूत भावनाएँ देने वाली केवल एक तुम हो। बहुत कुछ कह गया। पता नहीं तुम्हें अच्छा लगा या बुरा। परन्तु सत्य यही है। मैं सत्य की ही दुहाई देकर सब कह रहा हूँ। किन्तु तुम तो कुछ नाराज़ सी दिखाई देती हो ? अच्छा, नहीं कहूँगा। लो चुप हो जाता हूँ।" इतना कह कर बद्रीदत्त जी मुस्करा उठे और उनके नेत्र आकाश के तारों की ओर उठ गये।

"नाराज नहीं हूँ। किन्तु तुम जब कविता करने लगते हो तब मैं सोचने लगती हूँ कि तुम्हारा मित्र कवि तुम्हारे व्यक्तित्व को ऊपर उठाने में बड़ा हाथ रखता है। तुम में कवित्व नहीं था किन्तु उसकी भावना से तुम इतने अधिक प्रभावित हो गये कि तुम भी शनैः-शनैः उसी साँचे मे ढ़ल गये। अब केवल शरीर तुम्हारा है, आत्मा तुममें उसी कवि की है। भावना में बह कर इतना प्रबल तूफान खड़ा कर देते हो कि कल्पना काँप उठती है। इसका तात्पर्य यह न समझना कि मैं कह रही हूँ आप झूठ बोलते हैं किन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि सत्य का विस्तर सीमा से परे हो जाता है। पुरुष नारियों को प्रशंसा इसी प्रकार करते हैं। नारी अपनी लज्जा के कारण उन विशेषणों का प्रयोग खुले आम नहीं करती यही दोनों में अन्तर है।"

बद्रीदत्त की आखों के कोरों मे कुछ गीलापन सा ज्ञात हुआ। वे सोचने लगे कि जब मनुष्य को सत्य कह देने में भी विश्वास नहीं होता तब ही वह निराश होकर न मालूम क्या क्या करने के लिए कटिबद्ध होता है। इसीलिये लोग किसी के सामने किसी की प्रशंसा नहीं करते। उन्हें जो कुछ कहना होता है उसे भावुकता की पुट देकर कुछ आड़ी-तिरछी भाषा में कह देते हैं। उसका प्रभाव पूर्ण रूपेण पड़ जाता है। किन्तु मैं हृदय खोल कर कहता हूँ। दूसरों के लिये अपने हृदय पटल खोल रखता हूँ। जो चाहे, जिस प्रकार भी देख ले। यह भयानकता लोगों को विश्वास नहीं दिला सकती किन्तु चातुर्य का मूल्य सभी समझते हैं। कवि ठीक कहता था। वह संसार को मूर्ख और आडम्बर कह कर रूप से दूर रह कर ईश्वरत्व मे लीन होना चाह रहा है। उसका ईश्वर चाहे अस्तित्व हीन ही क्यों नहो परन्तु उसी अस्तित्व हीन के पीछे पड़ कर उसने इस संसार से छुट्टी पा ली है। उसे प्रेम और विरह

कुछ भी नहीं सताते। यही सोच ही रहे थे कि ओ३म् ने उठ कर बद्री के हाथों को अपने कोमल करों से पकड़ कर उठाते हुए कहा—'उधर क्या देख रहे हो'

"कुछ नहीं।" बद्रीदत्त जी ने कहा।

"कुछ तो ?"

"यही कि ये तारें क्या हैं ? इनके विषय में लोग अनेक कल्पनाएँ करते हैं। कोई कहता है कि ये अनेक संसार है जो असख्यों वर्षों से स्थित हैं।"

"किन्तु कवि के साथ रह कर इन तारों के विषय में इस प्रकार सोचना न्याय संगत नहीं ज्ञात होता।"

"मैं नहीं समझ पाता कि कवि जीवन से तुम्हें इतनी चिढ़ क्यों है। हिमालय के वक्षस्थल में निवास करने वाली रागिनी तुम हो—तुम्हें कविता नहीं अच्छी लगती क्या !"

"अच्छी लगती है किन्तु भोजन के बाद पान की तरह। कारण यह है कि कविता जीवन का सत्य तो नहीं है। कविता मनुष्य को भोजन नहीं दे सकती। आज तक पिता जी ने व्यय नहीं भेजा। यदि तुम्हारे मित्र की कविता मुझे यहां से मेरे निवास तक पहुँचादे तब अवश्य उसकी शक्ति मे विश्वास हो सकता है।"

"कविता को क्यों दोष दे रही हो। मैं अधिक नहीं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि यदि पेट की भूख के आगे कुछ भी नहीं है, यदि संसार के समस्त कार्य कलाप पेट की भूख तक ही समाप्त हो जाते हैं तब ठीक है। किन्तु मनुष्य पेट तक ही सीमित नहीं रह सकता। उसके पास हृदय है। पेट की भूख के पश्चात् हृदय की भूख नहीं अपितु हम कह सकते हैं कि प्रथम हृदय की भूख है। यदि हृदय भूखा है तो मनुष्य एक क्षण भी शान्ति नहीं रह सकता किन्तु हृदय के प्रशान्त पथ पर भूख नहीं दृष्टि गोचर

होती। किन्तु जाने दो इन बातों को। तर्क बहुत हो चुका। अब यह बताओ कि तुम्हें कितने रुपये चाहिए। घर कब जाना है। मैंने सोचा था कि दशहरे की छुट्टियाँ यहीं बीतेंगी किन्तु तुम्हारा विचार कुछ ऐसा नहीं ज्ञात होता।"

"मैंने भी यही सोचा था कि यहां रह कर कुछ आप का तर्क-मय संसार जो भावनाओं पर ही आधारित है उसे देख सकूँगी किन्तु पिता जी ने बुलवाया है। लिखा है कि मैं इन छुट्टियों को उन्हीं के पास बिताऊँ। किन्तु रुपया आज तक नहीं आया। जाना मुझे आज ही सायँकल की गाड़ी से था किन्तु रुपया न आने के कारण कम से कम इस समय का कार्यक्रम स्थागित है। कल यदि रुपया आ गया तो रात्रि की गाड़ी से लखनऊ से होकर जाने का विचार है। क्या आप छुट्टियों मे यहीं रहेंगे।

"कुछ ऐसा ही विचार था।"

"मेस तो बन्द हो जायगा।"

"कोई परवाह नहीं। होटले तो है। अभी जगाती की चाय की दुकान कहीं चली नहीं गई है।"

"चाय पीकर दिन नहीं काटे जा सकते। प्रयाग से इतना प्रेम। आप घर क्यों नहीं जाते!

"घर मन नहीं लगेगा। कुछ उखड़ा-उखड़ा सा लगेगा। बहन की याद आयेगी। घर काटने लगेगा। दिन-रात रोने के लिये घर जाऊ।"

"क्या आप की बहन का देहान्त हो गया। आप जब आए थे तब वे स्वस्थ थीं?"

"हाँ, तब कोई ऐसी बात न थी। एक दिन अचानक तिमन्जिले की छत से गिर कर मर गईं। कुछ समझ में नहीं आता। बड़ी तेज लड़की थी। यही प्रयाग विश्वविद्यालय मे वह भी पढ़ती थी।

वही कमरा है जिसमें तुम रहती हो। उसने एम० ए० में दर्शन शास्त्र में "रेकार्ड बीट" कर दिया है। आज तक उतने प्राप्तांक किसी के न आ सके। इसबार ग्रीष्म की छुट्टियों में वह अधिक शान्त और गम्भीर रहा करती थी। घर के अन्य व्यक्तियों से बोलती भी कम थी। किन्तु मैं उसे बिना छेड़े हुए न रहता था। मैं उसी के साथ खाता था और उसके सो जाने पर ही सोता था। छुट्टियों का अधिक समय या तो मैंने उसके दार्शनिक सिद्धांतों के सुनने में लगाया अथवा उसे चिड़ाने में व्यय हुआ। कभी कभी हम और दिनेश दोनों पहाड़ियों पर दूर चले जाते थे। जब लौटते तब रात हो जाती। पिता जी डाटते थे किन्तु हम लोगों ने कभी उनके डाटने पर ध्यान नहीं दिया। टहलते समय बातें करते-करते वह बहुधा वह मौन हो जाती। कभी आगे दौड़ कर कुछ सोचती हुई बैठे जाती।"

ओ३म् ने बात काटते हुए कहा—किसी को प्यार तो नहीं करती थी ?

"कौन जाने ? मुझे इसका तनिक भी आभास नहीं हो सका। मैं उस रहस्य की छाया भी नहीं जान सका। यही खेद है।

"नहीं तो।"

"नहीं तो बहन ही थी और तब तक मेरे जीवन में केवल वही घुसी थी। मैं केवल उसी को प्यार करता था। एक बार सारी शक्ति से उसे सुखी बनाने का प्रयास करता। तब आज की तरह इतना दुःखी न होता। दुःख केवल यही है कि मैं उसके लिये कुछ कर न सका।"

"अब आप के जीवन में कौन घुस आया है ?"

"इसे जान कर क्या कीजियेगा।"

"आखिर वह कौन है ?"

"किसको बताऊँ ! क्या कहलाना चाहती हो ?"

ओ३म् की आखों में बद्री कुछ ढूढ़ने लगा। मालूम होता था कि उसने कुछ खो दिया है और वह ढूढ़ कर निकाल लेना चाहता है। ओ३म् की आखें टिक न सकीं, वे झुक गई। बद्री ने ओ३म् के हाथ दबा दिये। किन्तु ओ३म् की समर्पण की भावना ने हाथ खीचने से इनकार कर दिया। एक क्षण ही में यह सब हो गया। बद्री को एक विशेष अनुभूति सी हुई और वह हाथ छोड़ कर पीछे हटते हुए बोला—"कितने रुपये चाहिये ?"

"उसकी कोई चिन्ता नहीं। रुपये न आए तो न जाऊँगी। और आप के दर्शन तो हुआ करेंगे।"

"किन्तु मैं ऐसा नहीं चाहता। रुपया मेरे पास है। आप रात्रि की गाड़ी से अवश्य जायँ। मालूम नही कैसी बात हो।"

"आप मुझे शीघ्र ही हटा देना चाहते हैं क्या ?

"पिता का आदेश मानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।"

"तो मुझे आज जाना ही होगा ?"

"अवश्य, रात्रि के दस बजे की गाड़ी से।"

मुझे एकसौ पच्चास रुपये आप अभी दे जाइये। मेरा सामान बँध चुका है। मैं आपके आदेशानुसार जाने को प्रस्तुत हूँ। किन्तु यदि आप आज्ञा दें तो एक बात कहूँ।"

"कहो, तुम्हें पूर्ण अधिकार है।"

"यदि आप भी मेरे साथ चलें तो—देखिये बुरा न मानियेगा।

"नहीं, नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। किन्तु मेरा चलना ठीक नहीं। स्टेशन तक अवश्य चलूँगा।"

"ठीक क्यों नहीं है। मेरी बड़ी बहन के विश्वविद्यालय के मित्र कई बार छुट्टियों में मेरे यहां आए थे। मेरे पिता जी को कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती है। आप अवश्य चलें। आप यहाँ

रह कर कष्ट उठाएँ और मैं घर पर सानन्द रहूँ। एक मित्र का दूसरे मित्र के प्रति यही कर्तव्य है ?"

"मुझे संसार से बड़ा डर लगता है। दुनियाँ वाले क्या कहेंगे ? किन्तु एक बात हो सकती है। मैं छुट्टियाँ समाप्त होने के दो दिन पूर्व आजाऊँगा। हम लोग साथ हो विद्यालय लौट आवेंगे। उस समय कोई भी हम लोगों के विषय में न सोच सकेगा। संसार की बड़ी-बड़ी आखों से अदृश्य रहना भी आवश्यक है।"

"यदि आप की ऐसी ही इच्छा है तो उसका विरोध करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं भली प्रकार सहमत हूँ। किन्तु स्टेशन तक........."

"हाँ स्टेशन तक अवश्य चलूँगा। रुपया लेकर शीघ्र ही मैं आप के हास्टल आऊँगा। आप तैयार रहें। नौ बज रहा है।"

दोनों व्यक्ति उठकर तांगे पर बैठ गये। तांगा सरपट भागा। ओउम् जी हास्टल में उतर गईं। बद्रीदत्त जी अपने कमरे के सामने तांगा रोक कर रुपया ढूढ़ने लगे। उनके पास उस समय उतने रुपये न थे। वे शीघ्र ही अपने मित्र से शेष रुपये लेकर उसे बैङ्क की चेक देकर तांगे पर आ बैठे। तांगा चलने ही को था कि ओउम् ने प्रवेश किया। बद्रीदत्त जी कुछ अचम्भित से हुए। ओउम् जी हास्टल आजांयगी इसका अनुमान पाण्डेय जी को तनिक भी न था। उनके सिर पर बल आ गया। वे घबड़ा से गये। कमरे से बाहर निकल कर इधर उधर देखा। विंग के सभी दरवाज़े बन्द थे। उनके जी में जी आया। तांगे वाले को रोक कर वे अपने कमरे के दरवज़ों की सिटकिनी चढ़ाकर एक लम्बी सांस खीचते हुए बोले—"ओउम् जी. आप को मेरे हास्टल आते हुए डर नहीं लगा ? लड़के क्या सोचेंगे ? भाग्य से किसी की दृष्टि नहीं पड़ी

नहीं तो मेरी क्या गति बनाई जाती। किसके-किसके ताने सुनने पड़ते ?"

"क्षमा कीजियेगा । भूल हो गई । वास्तव मे मैं इतनी विह्वल हो गई कि मुझे परिस्थिति का ज्ञान ही न रहा। अभी अभी हास्टेल की वार्डन मुझे २५०) दे गई हैं। पिता जी ने तार द्वारा रुपये भेज दिये थे। आप को रुपये की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हाँ, तांगे पर बैठिये। शीघ्र चलें।"

"अरे, मुझे रुपये कहीं से लाने थोड़े ही थे। यह देखो जेब में रक्खे हुए थे। मैं भी चलने को ही था कि आप........."

"अच्छा चलिये।' बीच में बात काटते हुए ओ३म ने कहा और बद्रीदत्त की कमीज़ अपने हाथ में ली।

"इतनी शीघ्रता।"

नहीं तो गाड़ी छूट जायगी।"

'बहुत अच्छा' कहते हुए बद्रीदत्त जी ने बाहर निकल कर कमरे का ताला बन्द किया और तांगे पर जा बैठे। ओ३म् जी का सामान लदा और तांगा स्टेशन चल पड़ा।

यद्यपि स्टेशन पर बहुत भीड़ थी और सेकिन्ड क्लास के यात्री भी कम न थे किन्तु नारी समझ कर ओ३म् जी की सीट का रिज़र्वेशन पहुँचते ही हो गया। सामान रखते ही गाड़ी ने सीटी दे दी। अभी पाण्डेय जी डिब्बे से उतरे भी न थे कि गाड़ी आगे बढ़ गई। वे शीघ्रता से दरवाज़ा खोल कर उतर पड़े। ओ३म् जी दरवाज़े पर आ गईं।

"देखिये आइयेगा अवश्य' ट्रेन से टकराती हुई आवाज़ आई। गाड़ी धुआ फेकती गतिमान हो रही थी।

'अवश्य, प्रयास करूँगा' प्लेट फार्म से मुस्करा कर पाण्डेय जी ने उत्तर दिया।

दोनों जब तक गाड़ी अदृश्य न हो गई तब तक एक दूसरे को देखते रहे। गाड़ी जब आगे चल कर मुड़ गई तब बद्रीदत्त जी प्लेटफार्म की सीढ़ियों पर उतरते हुए दिखाई पड़े। उन्होंने सोचा कि अभी शीघ्र ही हास्टल पहुँचने पर नींद न आएगी। अतः पैदल ही तीन मील का चक्कार क्यों न लगाया जाय। इतने में तांगे वाले ने पुकार कर कहा– बाबू सिविल लाइन्स।"

किसी दूसरे तांगे वाले ने कहा—चौक, बाबू चौक।"

एक टैक्सी वाले ने कहा—"फाफामउ पुल"

किन्तु पाण्डेय जी ने सब को निराश कर दिया। वे सब प्रश्नों हिला देने में दे चुके थे। का उत्तर एक बार के ही सर

इक्के-तांगे वाले भी कितने स्वार्थी होते हैं। उनसे यह नहीं हो सकता कि चुपचाप एक स्थान पर बैठ कर मनुष्य को वाट जोहें। जाने वाला स्वयं इनके पास आजायगा।

पाण्डेय जी मुड़ कर सीधे सिविल-लाइन्स की लम्बी चौड़ी सड़क पर आगये। सड़क के दाहिने किनारे पर अदृश्य तक लोहे के बड़े-बड़े ऊँचे खम्भे गड़े हुए थे। उनके तारों की अस्पष्टता उनकी महानता का द्योतक बन गई थी। ऐसा ज्ञात होता था कि प्रकाश के वे खम्भे सचेत होकर बिना किसी के आदेश के ही पथ-प्रदर्शक बन गए हैं। मार्ग पर उस अंधेरी रात में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गोलाकार प्रकाश—सुनसान सड़क, जिस पर कभी कभी दो-एक मोटरें इधर से उधर दो बड़ी-बड़ी चमकीली आँखे लिये हुए चली जाती थीं, किनारे के इमली के पुराने वृक्ष, जो सम्भवतः आज से शताब्दियों पूर्व लगाए गये थे, पगडन्डी पर कभी कभी शून्यवाद सिद्ध न होने के लिये दो एक यात्री, यही सब कुछ वहां था। इसके अतिरिक्त शून्यवाद का विश्लेषण करने के लिये हमारे पाण्डेय जी को अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता ही

क्या हो सकेगी । जीवन के आदि से ही जिसे रोना पड़ा हो, धनी बन कर भी जिसे सदैव मानसिक चिन्ताओं से छुट्टी न मिली हो—जिसको उसने आज तक प्यार किया—वह धोखा देकर संसार से सिधार न गया हो—ऐसे मनुष्य भी यदि शून्यवाद का सहारा न लें तब तो उन्हें शीघ्र ही आत्महत्या के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु का सहारा नहीं मिल सकता । दुख से अत्यन्त व्याकुल मनुष्य भी अपने दुःख को भुलाने का प्रयास करना चाहता है। वह चाहता है कि उसे सदैव के लिए भूल जाय। विस्मृति के सिद्धान्त के आधार पर वह भूल भी जाता है । पर, वह भूलना क्षणिक है। मनुष्य में यदि भूलने की ही शक्ति होती तब ईश्वर मृत्यु की सृष्टि ही न करता । बद्रीदत्त जी भी जब किसी एक भावात्मक बोझ से उकता जाते थे तब वे अपने ईश्वर में लीन होकर उस नियन्ता के विषय में घन्टों सोचा करते। पथ कट जाता था और उनकी भावनाएँ अपने पथ पर तब तक विश्राम नहीं लेती थीं जब तक बद्रीदत्त जी निद्रा की शान्तपूर्ण गोद में विश्राम नहीं करने लगते थे। कभी-कभी वे भोजन जल पान तथा विद्यालय का जाना भी भूल जाया करते थे। किन्तु एसे दिन बहुत कम होते थे। बहन की मृत्यु के उपरान्त बद्रीदत्त जी की निराशा बहुत बढ़ गई थी। बहन का दर्शन उनके ऊपर विकट रूप से अपना प्रभाव जमा चुका था। संसार उन्हें काटने सा लगता था। किन्तु ऐसे समय में भी यदि कोई उनके विचारों पर ठोकर लगा कर रोकने वाली वस्तु थी तो वह ओ३म का प्यार था जिसके सहारे पाण्डेय जी अध्ययन में तल्लीन तो न थे किन्तु किसी प्रकार अपने सहपाठियों के साथ घिसट रहे थे।

काल की परिधि पर घूमते हुए जहां संसार के सर्व पदार्थ तुच्छ थे वहाँ उन्हें सौंदर्य में ईश्वर भास होने लगा था। ओ३म् के निकट

जाते ही वे प्रेम में विह्वल अवश्य हो जाते थे किन्तु उस प्यार में वासना न थी। एक आन्तरिक सुख था जिसका प्रदर्शन शब्दों द्वारा होना सरल नहीं है। उनके भाव भी यदि कुछ सांसारिक थे तो वे ही भाव आज इतने पूत बन चुके थे कि स्वार्थ बहुत दूर चला गया था। वह सोच रहा था—ओश्म् का गर्व भी टूट चुका है। अहं की भावना अब समर्पण में आ चुकी है। कल का झपटता हुआ सिंह आज स्वयं बलि वेदी पर चढ़ने के लिये तैयार है। उसमें नियन्त्रण नही रहा। लज्जा भी धुलती हुई चली जा रही है। हास्टल में एक शिक्षार्थिनी का आना—मेरे साथ अकेले फाफमऊ के पुल के निकट बैठना आदि बातों का विश्लेषण करने पर यही निकलता है कि कल की गर्विता ओश्म् आज ओश्म् नहीं है। कहती थी मेरे साथ मेरे निवास चलो। उसके साथ अनेक तर्क, कि मेरी बहन के साथी भी आया करते थे। पिता जी अप्रसन्न नहीं होंगे। आज का यह प्यार कल विवाह होते ही पति के लिये हो जायगा। मुझे भूल जायगी। उसे स्वप्न में भी न याद आएगा कि कोई पाण्डेय था। हां तीसरे पन में मां बनने पर, जब उसे अपनी पुत्रियों की शिक्षण का प्रबन्ध करना पड़ेगा तब विश्वविद्यालय की याद आएगी। प्रयाग अपनी बालिकाओं को भेजते समय संभव है उस विस्मृत के परदे फट जाँय और वह मेरे विषय में भी सोच ले। तब अवश्य एक क्षण के लिये कृतज्ञता से उसका हृदय ओत-प्रोत हो जायगा। किन्तु नहीं। मैंने उसके साथ कोई ऐसा उपकार नहीं किया है। वह कृतज्ञ क्यों होगी? उल्टे उसने ही मेरी सहायता की है। कक्षा के लिये उसने कई लेख लिख दिये हैं। मेरी अस्वस्थता में उसने कइ वार पौष्टिक पदार्थ भेजे हैं। जलपान लगभग उसी के यहां से आया है। फिर मैंने उसके साथ क्या किया है। कुछ तो तो नहीं।

अचानक पुलिस के चौकीदार ने कहा—रुक जाइये । बद्रीदत्त जी रुक गये । सिपाही ने फिर कहा—बाबू जी, करफ़्यू है । अब ग्यारह बज चुका है । सीधे घर जाइये । आप लोग स्वयं नियम का उलंघन करते हैं और कहते हैं कि सरकार का शासन प्रबन्ध ढीला है ।"

बद्रीदत्त जी बोल उठे—भूल गया था । वह देखो मेरा हास्टल है । मुझे वहीं तक पहुँचा दो ।

और वे दोनों हास्टल की ओर चल पड़े ।

७

पुजारी। देशबन्धु जीना नहीं चाहता। संसार से उसका मन ऊब चुका है। दुनियाँ की प्रत्येक वस्तु उसे काटती हुई दौड़ती है। प्रत्येक बन्धन वह तोड़ चुका है। चेतन जगत से हट कर जड़ पदार्थ पर उसका मन अवश्य कुछ समय के लिये ठहरा—रूप अवश्य उसे कुछ दिनों तक पराजित करता रहा किन्तु देशराज के मन्दिर निरीक्षण के दिन अपमानित होने पर जड़ और रूप से भी उसकी आस्था चली गई। संसार की सभी वस्तुएँ समान हैं। शीतल और ग्रीष्म, सुख-दुख, चेतना-अचेतनता में उसे कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि कुछ समझने के लिये शेष है तो वह ईश्वर है। उसके रूप से भी उसे घृणा हो चुकी है। मन्दिर की मूर्तियाँ उसके सम्मान की रक्षा नहीं कर सकी हैं। क्या मूर्तियों की कृपा से मन्दिर की दो-चार ईंटें खिसक कर देशराज को चुनौती नहीं दे सकती थीं। इतने बड़े पुजारी के अपमान का साहस एक राजमंत्री अपने सहायकों के समक्ष कर रहा है और वे मूर्तियाँ जिसकी साधना में दिन-रात प्रलय और सृजन एक हो गये हैं, उनके ओठों पर बल नहीं आया? वृथा है ऐसी मूर्तियों का पूजन! महात्मा बुद्ध को मूर्तियों से ऐसे ही समय में निराशा हुई होगी। बेचारे गौतम सौंदर्य और रूप को छोड़ कर हड्डियों को राख करने के

पश्चात् भी आशान्वित न हो सके तब उन्होंने धर्म में ही आस्था छोड़ दी और निज मन से एक नये धर्म की सृष्टि कर सके। वह धर्म जिसका लोहा चीन, जापान, ब्रह्मदेश, जावा और सुमात्रा तथा मध्यएशिया आदि देश मान गये। वृहत संयम था उनमें—विशाल साधना थी उनके वज्र से हृदय में, किन्तु शङ्कर के अद्वैत के आगे वे भी झुक गये। उन्हें भी हार मान लेनी पड़ी। वही बुद्धधर्म जो एक दिन सब धर्मों में सिरताज था, भारत से ही उठ गया। सारनाथ और कुशीनगर को छोड़ कर उसका अस्तित्व बताने वाली आज कोई भी वस्तु नहीं है। वह अद्वैत आज पुजारी के पीछे पड़ गया है। कल वह मृत्यु चाहता था। कल उसने कवि के सामने कहा था कि आत्महत्या करेगा। परन्तु जीवन का मोह अभी छोड़ नहीं सका—एक नया पथ निकला—उसने फिर जीवन चलाने के लिये अद्वैत मार्ग का अवलम्बन करना चाहा। मन्दिर छोड़ कर जङ्गलों की ओर बढ़ना चाहा। अतः निर्जन में मन्दिर के कपाट बन्द करने के लिये उसके हाथ उस अन्धकार में बढ़ गये। भगवान के द्वार की सांकल बन्द हो जाने पर आँखें बरबस पीछे की ओर घूम पड़ीं। कातर आँखें भगवान की मूर्तियों के मोह में नाच उठीं किन्तु पुजारी किसी प्रकार अपने को ढकेल ले गया। उसने एक उसास भरी और बाहर के द्वार बन्द करके निराश दक्षिण के पथ पर चल पड़ा।

"कहां जा रहे हो पुजारी" एक आवाज आई।

पुजारी ने चौंक कर देखा—उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि वह मानो मन्दिर में रक्खी हुई धन की थैली लेकर भाग रहा हो। वह सहम कर खड़ा हो गया। किन्तु जब कोई शब्द न हुआ तब वह समझने लगा कि मन का भ्रम था। वह फिर आगे बढ़ा। पुजारी का भ्रम फिर भी न मिटा। वह रुक गया। फिर चला। फिर रुका। अन्त

में बढ़ गया। कुछ दूर और आगे गया होगा कि फिर शब्द हुआ—"पुजारी–रुको। आत्म हत्या मत करो। रुको। मेरी भी सुनते जाओ। किसी अनुभूति विशेष से पागल मत हो जाओ। क्या तुममें आज साधना और संयम के नाम पर कुछ भी बाकी नहीं है?"

इस बार पुजारी रुक गया। वह समझ गया कि यह कवि बोल रहा है। इसके साथ ही साथ गत रात्रि की सभी बातें उसे याद हो आईं। कवि की भावात्मक शिक्षा का भी स्मरण हुआ और वह उसकी कृतज्ञता के कारण रुक गया। तब तक कवि भी निकट आ चुका था।

"किस ओर चल पड़े भाई?"

"यों ही देशाटन के लिये।"

"अथवा आत्महत्या के लिये?"

नहीं, नहीं। तुम्हारे ज्ञान से आखें खुल गई हैं। मष्तिस्क कुछ विकृत था। उसे बहलाने का कुछ दूसरा साधन न ज्ञात हुआ। मैंने सोचा कि देशाटन से भाव परिवर्तन और स्वास्थ्य परिवर्तन दोनों हो जायँगे। इसीलिये चल पड़ा।"

"अच्छा हुआ। ठीक सोचा है आपने। परन्तु यह समझ में नहीं आया कि इतनी रात्रि में निर्जन पथ पर प्रयाण। मन्दिर का भार किसे देकर आए हो यह तो बताओ।"

"मन्दिर में था ही क्या जिसे किसी को सौंप कर आता। प्रातः स्वयं मेरी अनुपस्थिति ज्ञात हो जायगी। मैं ही कोई जीवन भर का ठेका लेकर थोड़े ही बैठा हुआ हूँ। नया मन्दिर बन रहा है। नये पुजारी होंगे। मुझसे राजमन्त्री स्वयं अप्रसन्न हैं। फिर उनके मन्दिर में रह कर ही क्या करूँगा?"

"न्याय-विधान के अनुसार तुम पर दोष लगाया जा सकता है। ज्ञात है राजमन्दिर की महत्ता पुजारी? ज्ञान खोकर अज्ञान का

शिकार मत बनो। मन्दिर छोड़ना चाहते हो तो आज्ञा लेकर छोड़ों। राजमन्त्री के सामने अपने विरक्ति का ढोल पीट कर छोड़ो। उसे भी ज्ञात हो जाय कि किसी का उपहास करने का प्रतिफल क्या है। चुपचाप मन्दिर से चला जाना न्याय संगत नहीं है। अन्याय के धुरे पर सवार होना मत सीखो। यही पाप है। आज राजमन्दिर छोड़ कर चले जा रहे हो। कल जब मष्तिस्क शान्त हो जायगा तब उसमें खोज करने पर अपनी त्रुटियों पर तुम स्वयं झुंझला जाओगे। कर्तव्य से हट कर मत चलो। क्षण में पानी गर्म और क्षण में ठन्डा पानी मत होओ! एक दिन तुम हिम और अग्नि समान समझ रहे थे। आज इतना अन्तर क्यों है? विचार कर चलो। क्रोध की ओर पैर मत रक्खो।"

"कह रहे हो कि मैं लौट चलूँ। क्षमा माँगू और फिर मन्दिर के उस भगवान् की पूजा करूँ जो मेरे सामने हो मुझे अपमानित करा रहा हो। हमारी तपस्या और पूजा का यही मूल्य है?"

"नहीं पुजारी। भूल रहे हो। राजमन्त्री से क्षमा न मांगो बल्कि उसे सावधान कर दो कि तुम मन्दिर छोड़ कर जा रहे हो। वह अपने मन्दिर का दूसरा प्रबन्ध करे। किन्तु तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर मैं बहुत पहले दे चुका हूँ। मूर्तिया प्रस्तर की हैं। इनमें ज्ञान कहाँ। ये पूजा का माध्यम अवश्य बन सकती हैं,पर इन पर भाग लगाया हुआ अन्न भी कभी इनके पेट में जाते हुए देखा है? एक दिन था। तुम कहते थे कि तुम्हारी पूजा से इन मूर्तियों में जीवन आ जायगा। यह बोलने लगेगी। परन्तु आज इतनी घृणा हो चली है। मैं यदि यह कहूँ कि तुम्हारी तपस्या ही अधूरी है। उसी में आडम्बर के अतिरिक्त कुछ नहीं है तो अतिशयोक्ति न होगी। हार गये हो अपनी पूजा से। मन द्वेश से हटा नहीं। नयनों से किसी

और के दर्शनों की बाट जोहा करते थे और कहते हो कि मूर्तियां बोल नहीं सकी। इनमें जीवन न आ सका। मन्दिर स्वयं नहीं बन सका। तुम चेतन होकर भी जब अपने कार्य में सफल न हुए तब ये जड़ पदार्थ तो हैं ही। इनकी बात ही क्या है।"

किन्तु मैं इन जड़ पदार्थों की पूजा नहीं कर रहा था। मैंने इनके सहारे भगवान् की उपासना की है। अवतारवाद के कीर्तन किये हैं। जड़ और चेतन का अन्तर मैं भी भली प्रकार समझता हूँ। किन्तु क्या समझता हूँ? सब समझना बेकार सा ज्ञात होता है। सारी आशा नष्ट सी ज्ञात होती है। चलो, लौट चलता हूँ। यही चाहते हो न?"

"सूचना देकर कहीं भी जाओ। तुम्हें ही नहीं, कोई किसी को रोक नहीं सकता। मनुष्य स्वतन्त्र है। उसके प्रत्येक कार्य उसके मन के अनुसार ही होते हैं। उस पर, जब तक वह कोई त्रुटि नहीं करता, कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता।"

दोनों लौट पड़े। पुजारी बड़े ज़ोर से हँस पड़ा। वह हँसी शून्य में विलीन होगई।

"इस रात में तुम कहां जा रहे थे कवि?" पुजारी ने कहा।

"मैं कहीं नहीं जा रहा था। मन्दिर के द्वार पर सो रहा था।

तुमने इधर-उधर देखे ही विना सांकल चढ़ा दी और चल पड़े।

सांकल का स्वर मुझे भी सुनाई पड़ रहा था। मैं सचेत हो गया। मुड़ कर देखा तो तुम लौट कर वापस चले जा रहे थे। मुझे ध्यान आया कि पुजारी कहीं आत्मघात करके अपनी कल की कही हुई बात पूरी न करने जा रहा हो। मुझे तुम्हारे साहस पर विश्वास नहीं था तथापि तुम्हें सागर की ओर बढ़ते देख कर शंका हो गई। मैं कुछ घबराया और फिर तुम्हारे पीछे चल पड़ा। एक बार पुकारने पर पूर्ण रूप से समझ गया कि तुम मन्दिर छोड़ कर

भाग रहे हो। कारण यह था कि रुक-रुक कर तुम्हारा देखना इस बात की पुष्टि कर रहा था। कभी कोई हत्या करने के पहले इतना संशकित नहीं होता। बस, यह जान कर मैंने फिर नहीं पुकारा। जब तुम और आगे बढ़ गये तब मैंने फिर सोचा कि पुजारी आत्म हत्या करने से हट कर इतना अधिक घबरा गया है कि भाग रहा है। एक बार समझा कर देखूँ। सम्भव है कि वह अपने पथ पर फिर आ जाय। भूल सभी से होती है किन्तु जब चेतना को ठोकर लगती है तब वह फिर अपने स्थान पर लौट आता है। अतः फिर पुकार उठा। तुम रुक गये। तुमने मेरा स्वर परिचित मान कर ठहरने की कृपा की। अब तुम्हें लौटा कर मैं अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर चुका। मेरा ध्येय ही यही था कि तुम्हें लौटा दूं। एक बार फिर अपने पथ पर चल कर देखो। सम्भवतः तुम्हें सुख दिखाई दे।"

"किन्तु अब मन्दिर की नौकरी नहीं हो सकती।"

"नौकरी मत करो। मन्दिर की घण्टियाँ बजाने के स्थान पर जागृति के गीत गाओ। तपस्या छोड़ कर दीनों की सहायता का बीड़ा उठाओ। प्रस्तर की मूर्तियों की जगह पर रोटी की पूजा करो और उस रोटी से वरदान मांगो कि वह उन भूखे बालकों की आत्मा शान्त करे जो सप्ताह के भूखे हैं—उन भिखमन्गों के पेट में जाय जिनके हाथ-पैर कट चुके हैं, जो सड़कों के किनारे नहीं बैठे हैं। जिन्हें कोई एक पैसा भी नहीं देता। भूख शान्त होने पर वे भिख-मन्गे और दीनहीन सन्ताने जो आशीर्वाद देंगी वह आशीर्वाद इतना प्रबल होगा कि तुम ईश्वर को उसी के सहारे पा सकोगे। अन्यथा उसे करोड़ों वर्षों में भी इन मूर्तियों के सहारे नही जान सकते। संसार से इतनी घृणा मत करो। इसमें भी कुछ सत्य है। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' का केवल इतना ही तात्पर्य है कि ईश्वर की

समानता में संसार मिथ्या है। इससे यह न समझना चाहिये कि संसार ही का अस्तित्व नहीं है।"

"कवि को यह कर्म काण्ड कब से सूझा ?"

"मुझे इतना सीमित क्यों मान बैठे हो। यह अवश्य है कि मेरी उतनी अवस्था नहीं है किन्तु जीवन के इतने दिन शिक्षा प्राप्त करने ही में बिताए हैं। आज तक शिक्षा किसी को दी नहीं। केवल ज्ञान ही प्राप्त करता रहा।"

"अब मैं बुड्ढा हो गया हूँ। मुझसे कुछ हो नहीं सकता। जवानी के दिनों में मैंने भी कुछ ऐसे ही काम करने की बात सोची थी। यौवन के ढल जाने पर स्थूल शरीर उपकार करने के लिये ठीक नहीं। एक काम करना और शेष है। वह है प्याऊ का काम।"

"बड़ी अच्छी बात सोची है। यही करो। यह भी परोपकार है। भूख और प्यास दो समान की वस्तुएँ है। किन्तु यह बात तुम्हारे ध्यान में कैसे आई ?"

"यह न पूछो। तुम भूख की बात मुझे कह रहे थे। मुझे प्यास की बात याद आ जाना स्वाभाविक ही है।

"इस प्रकार छिपाने का प्रयास मत करो। सत्य आखों की कोरों से फूट पड़ता है।"

"कवि से कुछ छिप नहीं सकता। भावना प्रधान जो ठहरा। छिपी हुई बात भी अपने आप इन पाजी आंखों द्वारा निकल पड़ती हैं। क्या किया जाय। कहना ही पड़ेगा। एक दिन था। जिस प्रकार सब को यौवन में विवाह की इच्छा होती है उसी प्रकार मुझे भी अपना घर बसाने की प्रबल इच्छा हुई। मेरी जन्म भूमि मारवाड़ है। यहां से बहुत दूर। जानते हो कवि ? बहुत दूर है। पुजारी कातर हो उठा। अपने अँगोछे का एक कोना पकड़ कर कंधे पर सरकाता हुआ बोला—वहीं मेरा व्याह हुआ। मैं ऊँट पर बिदा हो

कर अपनी जीवन संगिनी को बिठाले हुए बड़े गर्व के साथ 'चला आ रहा था। थार के रेगिस्तान से मेरी बारात चली जा रही थी। अचानक तूफान आ गया। गान और विरहे तथा बाजे बन्द होगये। ऊँट उस तूफान में भागने लगे। बारात तितर-वितर हो गई। किसी को किसी की परवाह न थी। सब अपनी ही धुन में मस्त अपने प्राणों की रक्षा में तुले हुए थे। मेरा ऊँटवान भी अधिक चैतन्य न था। तूफान के एक कड़े झोंके के साथ मेरा ऊँट दूसरी ओर भागा। साथ छूट गया। दिशा का ज्ञान न रहा। तूफान शान्त होने पर कोई साथी दृश्य न आया। उस समय मैं था और मेरी पत्नी। प्यास लगने पर कई दिन तक पानी न मिलने पर ऊँट का पेट चीर कर प्यास शान्त की गई। किन्तु उचित पथ का ज्ञान तब भी न हो सका। मेरी स्त्री कई दिन तक साथ चलती रही। किन्तु अन्त में वह सुकुमार हाड़ मांस का शरीर आगे न चल सका। मैं एक दिन पूरा उसे अपने कन्धों पर लादे चलता रहा। किन्तु उसकी प्यास न बुझा सका। मनौतियां बेकार हो गई। रूप नष्ट हो गया। वैसा रूप रानी तारा का भी न था। उतना सुन्दर शरीर नष्ट करने की ईश्वर ने न जाने कैसे ठान ली। उस अर्ध मूर्छित शरीर को दो दिन और ढोने में व्यतीत किया। पर एक संन्ध्या को ज्ञात हुआ कि उस दिन का परिश्रम मैंने व्यर्थ ही किया था। अब सांस भी नहीं थी। फिर भी जीवन का मोह। ....क्या बताऊँ कवि।" पुजारी के पैर लड़खड़ा गये। उन्हे सभालते हुए उसने कहा—"यह आज से पच्चास वर्ष पूर्व की कहानी है।

"उसके बाद तुम उस शरीर को उठाए हुए कब तक चलते रहे? थार का अन्त कब हुआ।?"

"थार का अन्त उसके तीसरे दिन हो गया। पर उस थार के

अन्त तक पहुँचते ही मेरे जीवन का भी अन्त हो गया। मैं निराश हो गया जीवन से। कुछ भी आशा न रही। उस दिन भी मैं आत्म-हत्या करने जा रहा था। किन्तु जब मैं उदयपुर के ।निकट झील में प्राणोत्सर्ग करने के लिये शिला पर चढ़ गया और भगवान् से अन्तिम प्रार्थना करके कूदने के लिये पैर उठाने को ही था कि.........।"

"तब क्या हुआ ? मन कायर हो उठा होगा।"

नहीं, तभी पीछे से दो विशाल बाहों ने बड़े जोर से पकड़ लिया। मैं पीछे खिसक गया।"

"यह कौन था ?"

"यह थे वीर विक्रम साहदेव। जयगढ़ के राजकुमार। तब ये राजा न थे। किन्तु आखेट के लिये इधर उधर घूम रहे थे। उस समय उदयपुर महाराज का अतिथ्य इन्होंने स्वीकार कर लिया था।

"किन्तु उस रात्रि मे—।"

"समझ गया तुम्हारा कौतूहल। महाराज कुमार का यह स्वभाव जीवन भर रहा कि वे बहुधा रात्रि के सन्नाटे में अकेले ही प्रकृति की छाती पर रमण करते थे। प्रकृति से उन्हें बड़ा प्रेम था।"

"तभी से तुम राजा के साथ रहने लगे।"

"हाँ, कुछ ऐसा ही है। राजा ने आत्महत्या का कारण पूछा। मेरे सत्य-सत्य कह देने पर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुझे अपना पुरोहित बना लिया।"

"ठीक है। किन्तु प्रकाश बढ़ गया है। सामने ही राज धर्म-शाला है। चलो, मन्त्रिराज को मन्दिर सौंप दो। छुट्टी मिले।"

"ठीक ही कहते हो।"

दोनों मन्त्रिराज के निकट गये। वे गत दिन के कामों से ही छुट्टी नहीं पा चुके थे। अतः पूर्णरात्रि भर काम देखते रहे। सबेरा हो गया। अब आगान्तुकों से मिल कर जलपान के पश्चात् शायन करेंगे।

पुजारी ने आगे बढ़ कर राजमंत्री को आशीर्वाद दिया। मन्त्री खड़े हो गये। उन्होंने पुजारी का अभिवादन करते हुए आसन पर बैठने का संकेत किया। किन्तु पुजारी हटा नहीं। वह खड़ा ही रहा।

"बैठ जाओ पुजारी?"

"दण्ड चाहता हूँ।"

"वह तुम्हें मिल चुका है।"

"किन्तु वह दण्ड न्यायसंगत नहीं। कुछ और कड़े दण्ड की आवश्यकता है।"

"अपराधी को दण्ड पर विचार करने की स्वतन्त्रता नहीं रक्खी गई है। जयगढ़ का ऐसा ही नियम है।"

"किन्तु अब मैं नियमों से मुक्त होना चाहता हूँ। बहुत दिन मैंने नमक खा कर कुछ भी नहीं चुकाया। अब मृत्यु के समय आंखें खुल गईं हैं।"

"किन्तु तुम्हें छुट्टी नहीं मिल सकती। तुम्हें मन्दिर की पूजा करनी होगी। रुष्ट मत हो जाओ पुजारी।"

"रुष्ट नहीं, अपमान नहीं सह सकता।"

"कुछ भी हो, तुम्हें छुट्टी नहीं मिल सकती।"

"मैं अपने को बन्धन से मुक्त समझता हूँ।"

"क्यों?"

"मैंने आप को सूचना दे दी। आप जानें।"

"तुम्हें पूजा करनी ही होगी।"

"मुझे कोई विवश नहीं कर सकता।"

"राज नियम।"

"उसकी परवाह नहीं।"

"परवाह करनी ही होगी।"

"असम्भव है।"

"मैं एक बार असम्भव को भी सम्भव बना दूँगा।"

"प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है।"

"किन्तु तुमने अपनी स्वतन्त्रता बेच दी है।"

"किसके हाथ।"

"राजसत्ता के हाथ।"

"महामन्त्री भूल में हैं।"

"मन्त्री, जयगढ़ का मन्त्री कभी भूल नहीं कर सकता। यदि भूल करता तो जयगढ़ की प्रजा का अन्त था।"

"मेरी भूल के प्रमाण।"

"वे महारानी के सामने उपस्थित किये जायँगे।"

"इस समय........."

"अभी समय नहीं है।"

"मैं जा सकता हूँ ?"

"नहीं।"

"नहीं ?"

"तुम बन्दी हो।"

"ब्राह्मण को जयगढ़ के नियम भी बन्दी नहीं कर सकते।"

"किन्तु तुम ब्राह्मण नहीं हो।"

"प्रमाण।"

"सब वस्तुओं के प्रमाण एक साथ दिये जायँगे। महाराज को तुम धोखा दे सकते थे किन्तु पुरोहित ! तुम राजमन्त्री को धोखा नहीं दे सकते ! इन आखों का पानी दूसरों की आखों का पानी परखते-परखते ही मर चुका है।"

"यदि आज्ञा हो तो एक बात कहूँ ?"

"कुछ नहीं। अब महारानी के समक्ष ही तुम्हारा न्याय होगा। तुम्हारा अपराध अक्षम्य है।"

"मैं आपसे एकान्त में कुछ कहना चाहता हूँ।"

"मुझे उसके लिये समय नहीं है।"

"किन्तु..."

"कह चुका समय नहीं। दण्डो ! इन्हें बन्दी करो।"

पुजारी के समक्ष दो प्रहरी उपस्थित हुए। वे पुजारी को लेकर धर्मशाला की दूसरी ओर अदृश्य हो गये। खड़ा रहा केवल कवि—अचम्भित, घबराया सा और मूक ! उसे लग रहा था—जैसे उसने कोई विश्वासघात किया हो।

मन्त्री ने पूछा—तुम कौन हो ?

"एक कवि।" कवि ने कहा।

"तुम्हारी पुजारी से पहिचान कैसे हुई ?"

"मुझे वह अपना मित्र कहता था।"

"और तुम ?"

"मैं उसे एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति। उसने कभी भी दिल खोल कर मिलने की चेष्टा ही नहीं की। मेरा मित्र वह कैसे हो सकता था। आपने उसे खूब पहिचाना।"

"तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?"

"आप के वार्तालाप से।"

"क्या इसमें कोई विशेषता थी ?"

"नहीं, किन्तु यही कि सभी राजमन्त्री नहीं हो सकते। उसके लिये भी किसी विशेष योग्यता का........"

"यह कुछ नहीं। समय पर सब कुछ आ जाता है।"

"हो सकता है। मैंने कभी विचार नहीं किया।"

"इस समय तुम दोनों कहाँ से आ रहे थे।"

"पुजारी भाग रहा था। वह देशाटन के लिये तैयार था। मैंने उसे पथ में रोका और समझा कर ले आया कि बिना राजमन्त्री को मन्दिर का भार सौंपे वह कहीं न जाय। किन्तु यहां आते ही अपने पूर्व कृत्यों के कारण वन्दी बना लिया गया।"

"किन्तु मैंने अनुचित नहीं किया है। जब इसकी त्रुटियों की अनुक्रमणिका देखोगे तब तुम्हें ज्ञात होगा कि त्रुटियों की अपेक्षा दण्ड बहुत कम है।"

"मैंने राज नियम नहीं पढ़ा है।"

"कविता की है न। कवि से संसार का कुछ भी छिपा नहीं है। वह अणु-अणु में अपनी कल्पना द्वारा पहुँचता है।"

"क्या आपको भी कविता से प्रेम है?"

"क्या मन्त्री को कविता नहीं करनी चाहिये?"

"ऐसी कोई बात नहीं।"

"तब।"

'मेरा कहने का तात्पर्य केवल यह था कि मन्त्री को अपने कामों से ही नहीं छुट्टी मिलती। वह कविता कब करेगा! उसकी भावनाएँ कब पल्लवित होंगी? कह तो दो-दो चार किया करता है। अपनी न्याय की तुला पर सदैव सत्य तौला करता है। उसे समय कहाँ।"

"कविता भी उसी न्याय की तुला पर तौला करता हूँ। तुला पर प्रत्येक वस्तु अपनी वास्तविकता प्रकट करने के लिये चढ़ती है।"

"समझ गया। मन्त्री से वार्तालप करके उसका अमूल्य समय नष्ट करना यथेष्ट नहीं।"

"मन्दिर की पूजा कर सकते हो कवि ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"उसे समय पर करना होगा। कवि समय के बन्धनों से मुक्त है।"

"केवल दो-चार दिन।"

"विवश हूँ।"

"अच्छा जा सकते हो।"

"मैं बिना बुलाए ही आया था। मुझे आज्ञा की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं चला जा रहा हूँ।"

कवि उठ कर चला गया।

८

ओ३म् का धूम्रयान अपार साहस के साथ बढ़ता हुआ चला जा रहा था। नदी, नाले, जंगल, मैदान सभी पीछे छूटते हुए चले जा रहे थे। पानी और कोयले में इतनी शक्ति है तब चेतन क्या कर सकता है। क्या कभी लोकोमोट्रिव-आविष्कारक वाट ने कल्पना की थी कि उसका एक स्थान पर चलने वाला इञ्जन एक दिन स्टेफेन्सन द्वारा सैकड़ों मीलों की यात्रा कर सकेगा। बेचारे स्टेफेन्सन को भी यह न विश्वास हुआ होगा कि उसकी रेलगाड़ी सौ मील प्रति घन्टा की चाल से चल सकेगी। आज वही द्रुतिमान इञ्जन प्रलय की तरह गरजता हुआ पृथ्वी की छाती पर दौड़ रहा है। स्टेफेन्सन और वाट दोनों को धन्यवाद दिये बिना किसका हृदय अधीर नहीं हो उठता जब वह रेल पर सवार होकर सैकड़ों मील दूर अपने माता पिता अथवा भाई बहन से मिलने के लिये चल देता है।

ओ३म् ने उस घने अन्धकार में देखा—गाड़ी गंगा का पुल पार कर रही थी। अभी जिस स्थान पर दोनों बैठे थे वह सुनसान पड़ा है। धोबियों के घाट की वे लकड़ियाँ अथवा पाटे उसी प्रकार शान्त जल में विश्राम कर रहे हैं। गंगा का जल उस अँधेरे में भी चमक रहा है। दूर-क्षितिज के निकट बादलों का झुण्ड बिजली के

प्रकाश में कभी-कभी झलक उठता है। खेत फसलों से पूर्ण हैं। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती हैं। कहीं-कहीं मचान भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। उन में कुछ शब्द भी हो रहा है। परन्तु ओ३म् उसे क्या जान सकेगी। उसकी कल्पना के पंखों पर बद्रीदत्तजी के अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है। इस समय उसके प्राण उसी से अठखेलियाँ कर रहे हैं। वह नहीं है किन्तु उसकी स्मृति के तार सामने के अन्धकार के परदों पर उसकी सृष्टि कर रहे हैं। प्रकृति का यह उत्कृष्ट साम्राज्य उसे उन्मन-सा लग रहा है। वह इन सब को देखकर भी नहीं देख रही है। वह सोच रही है कि पाण्डेय का तांगा सुनसान सड़क पर चला जा रहा होगा—उदास—भागता हुआ—अकेला। न जाने वह कैसे लौट रहा होगा। वह झुंझला उठी। उसने खिड़की से अपना मस्तक हटा लिया और बिजली के बल्ब की ओर देखने लगी। वह भी उसे काटता हुआ ज्ञात हुआ। वह चाहती थी कि वहाँ भी अँधेरा हो जाय। पर उसमें दो एक यात्री ऐसे भी थे जिनको दिन भर समाचार-पत्र पढ़ने का अवकाश न मिल सका था। वे रात के सूनेपन में ही उसे आद्योपान्त पढ़ जाने की कसम खाये हुए से दत्त-चित्त दिखाई पड़ रहे थे। बगल की दूसरी सीट की महिला को शीघ्र ही नींद आ गई। उन्होंने अपनी चादर तान दी थी। वे डिब्बे में आने के पश्चात् ही ऊँघने सी लगी थीं।

ओ३म्जी से न रहा गया। उसने थोड़ी देर तक रोशनी बुझने की आशा की किन्तु ग्यारह बजते देखकर उसने उठकर स्विच के निकट जाते हुए कहा—"यदि कष्ट न हो तो और यदि आपका समाचार पत्र समाप्ति पर हो तो बिजली बुझा दूँ। आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिये। ग्यारह बजकर पाँच मिनट........"

"हाँ अवश्य बुझा दें। मैं पढ़ चुका"—एक साहब ने समाचार-पत्र मोड़ते हुए कहा।

"मुझे कोई आवश्यकता नहीं। मैं तो भाई साहब के कारण ही अखबार लिये हुए था। मुझे रोशनी में नींद नहीं आती। आपने बड़ा उपकार किया।" दूसरे व्यक्ति ने कहा।

ओ३म् जी ने प्रकाश समाप्त कर दिया। डिब्बे में अँधेरा हो गया। उसने भी अपनी चादर तानी। उसे कब नींद आ गई। पता नहीं।

गाड़ी दूसरे दिन काठगोदाम पहुँच गई। स्टेशन पर कम्पाउन्डर खड़ा था। उसने डिब्बे का दरवाजा खोला और प्रणाम किया। सामान उतर गया। ओ३म् जी मोटर में बैठकर अलखनन्दा के लिये चल पड़ी।

"पिता जी अच्छी तरह हैं न?" ओ३म् ने पूछा।

"जी हाँ"—कम्पाउन्डर ने उत्तर दिया।

"घर के अन्य व्यक्ति अम्मा-बहिन।"

"सभी अच्छी तरह हैं।"

"मैं तो इस छुट्टी में आने वाली नहीं थी।"

"आना आवश्यक था। पिता का प्रेम—"

"सो मैं भी समझती हूँ। तुम्हारे दवाखाने का क्या हाल है?"

"सब अच्छा ही है।"

"सरोज कैसी है? उसे अच्छा कर सके?"

"नहीं।"

"चली गई?"

"नहीं।"

"सैनीटोरियम में है?"

"नहीं।"

"क्या उसका देहान्त हो गया?"

"जी हाँ। कुछ ऐसा ही है।"

"पिता जी कहते थे कि वह अक्टूबर के पहले मर नहीं सकती किन्तु वह मर कैसे गई ? उनकी विचारधारा कभी गलत नहीं हुई।"

"कोई ईश्वर नहीं हो सकता ?"

"यह मैं भी समझती हूँ किन्तु पिता जी उस पर नया एक्सपेरीमेन्ट कर रहे थे। कह रहे थे कि यदि इस बार सफल हो गया तब भारत का ही नहीं पूर्ण संसार में चर्मरोग पर मेरा बोलबाला हो जायगा। परन्तु कौन जानता है कि क्या होगा।"

"ईश्वर सर्वोपरि है। हमारा सिद्धांत ही है कि हम दवा देते हैं ईश्वर अच्छा करता है—I treat, He cures."

"परन्तु पिता जी को अपनी नई दवा पर बड़ा विश्वास था।"

"वह विश्वास आज भी वैसे ही है।"

"यह कैसे ?"

"वह अपने आप मर गई है ?"

"अपने आप ?"

"जी हाँ।"

"कैसे ?"

"भाई को घर लौटा देने के लिये जहर पी लिया ?"

"आत्महत्या पाप है।"

"ऐसे समय इसे पाप नहीं कहते।"

"परिस्थितियों की दुहाई दे रहे हो ?"

"उसने भाई का भला करने के लिये आत्महत्या की। भलाई कभी पाप नहीं हो सकती।"

"ठीक कहते हो ?"

ईश्वर की महिमा अपरम्पार है। तुलसीदास जी कहते है कि:—

"केशव कहि न जात का कहिये।
देखत् तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये।"

"तुलसीदास ने सब कुछ समझ लिया था? वे ईश्वर को पहचानते थे। लेकिन यह बताओ कि उनके भाई चले गये कि नहीं।"

"वे घायल हो गये हैं। कुछ चोट आ गई है। दस-पाँच दिन में चले ही जायँगे। इस समय वह आपके बँगले ही में हैं।"

ओश्म् की मुद्रा गम्भीर हो गई। कुछ सोचकर उसने फिर प्रश्न किया—क्या उन्हें भी T. B. हो गया है।

"ऐसा कुछ नहीं ज्ञात होता।"

"पिता जी कट्टर धार्मिक हैं। उन्होंने उन्हें घर में ले जाने की कैसे सोची।"

"कहते थे कि अकेला है। किसी बड़े घर का ज्ञात होता है। यहाँ पर क्वार्टर में उसे कष्ट होगा।"

"अभी तक उन्होंने दया नहीं सीखी थी। यह पहला उदाहरण मिल रहा है।"

"पता नहीं, इसमें भी कोई स्वार्थ हो। अभी तक उन्होंने रूप और यौवन ही समझा है। अब हो सकता है कि दया समझने का प्रयास कर रहे हों।"

"उन्होंने रूप और यौवन समझा है?"

"ऐसा वे कह रहे थे।"

"वह कैसे?"

बहुत दिनों की बात है। तब तुम छोटी थीं। एक बार एक पुरुष अपनी स्त्री को लेकर सैनीटोरियम में आया। वह स्त्री यक्ष्मा से पीड़ित थी। परन्तु थी वह महान सुन्दरी। उसका पति बंगाल की किसी रेलवे में एक ऊँचे पद पर था। उसके पास बड़ा रुपया था। तुम्हारे पिता जी से एक दिन उसने कहा कि यदि तुम मेरी स्त्री को अच्छा कर दोगे तो डाक्टर। तुम्हें वास्तव में बहुत बड़ा डाक्टर बना

दूँगा। फिर क्या था। डाक्टर भाटिया का प्रयोग चलने लगा। दिन-रात डाक्टर की पुस्तकें खुली रहतीं। नई-नई दवाइयों के बक्स लन्दन और बर्लिन से आया करते थे। तुम्हारे पिता उन दवाइयों के पीछे पागल हो रहे थे। वर्ष भर बीत गया किन्तु कुछ लाभ दृष्टिगत न हुआ।

"तब ?"

"तब वे बहुत निराश हुए। किन्तु एक संध्या को कुछ प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे कि क्यों न आज अन्तिम प्रयास करके देखूँ।"

"मैंने भी उनकी हाँ में हाँ मिलाई और वे इन्जेक्शन लेकर क्वार्टर में पहुँच गये।"

उन्होंने क़हा—डाक्टर का आज अन्तिम इन्जेक्शन है। बड़ी तीखी दवा है।

मरीज़ का पति घबरा उठा। किन्तु डाक्टर ने उसे बाहर निकालने का आदेश देकर इन्जेक्शन के लिये स्टोव गरमाना शुरू कर दिया। उसे एक ही बार सात इन्जेक्शन इन्हीं दोनों आँखों के सामने लगे।

"तब तो अवश्य फायदा हुआ होगा। किन्तु इस कथा से उन्होंने रूप को कैसे समझा।" ओ३म् ने प्रश्न किया।

मोटर अब पहाड़ियों के बीच मडराती हुई चली जा रही थी। किनारे के जंगल अत्यन्त भले मालूम हो रहे थे। परन्तु उसके भीतर रूप समझने की चेष्टा की जा रही थी। प्रकृति का रूप बाहर था। कल्पना का रूप मोटर के भीतर बैठे हुए दो भावनाओं के व्यक्तियों के समीकरण में।

"शीघ्रता मत करो" कम्पाउन्डर ने कहा—"मैं शीघ्र ही निर्णय पर आ रहा हूँ। सात इन्जेक्शन इतने विकराल हो गये कि रात

भर में मरीज को चेचक निकल आई। दाने फूट गये। वह बेहोश हो गई। उसका पति चीख मारकर गिर पड़ा। सारा सैनीटोरियम घबड़ा उठा। हाहाकार मच गया। अनेक बातें डाक्टर साहब के विपरीत कही जाने लगीं। कुछ लोग कहने लगे कि डाक्टर इनका धन लूट लेने के लिये दोनों को मार रहा है। भाटिया साहब परेशान हो गये। वे दौड़कर फिर अपनी किताबों के पन्ने उलटने लगे। कई रात के जगे थे। भोजन छूट चुका था। केवल चाय पर जी रहे थे। तब उसी संध्या को सात बजे वे फिर मरीज के कमरे में पहुँचे।

नये इन्जेक्शन देना प्रारम्भ हो गया। रात के बारह बजे तक दाने मिट चुके थे। उसके पति गौरीशंकर की चेतना जाग उठी थी। दूसरे दिन तक चेचक का कोई निशान भी उस बीमार के शरीर पर न था। उसकी सुन्दरता बढ़ गई थी। उसका रूप खिल उठा था। यक्ष्मा जादू की भाँति अदृश्य हो गया। डाक्टर ने परीक्षा लेकर बीमार को मुक्त किया—वह स्वयं चिल्ला उठा कि 'वह रूप समझ गया।' रूप को वास्तव में तुम्हारे पिता ने समझा है। इसे मैं भी मानता हूँ।

"और जवानी"—ओ३म् ने कहा।'

"उसकी भी एक कथा है। किन्तु उसे कहने का साहस नहीं है। वह बड़ी भयंकर कथा है।

"कह डालिये। पथ कट जायगा। किसी वस्तु का एक ही पहलू देखने से वस्तु अधूरी रह जाती है। अपूर्ण वस्तुएँ घातक सिद्ध होती हैं।"

अचानक मील बताने वाला पत्थर पास से गुजरा। उस पर लिखा था—काठगोदाम पचास मील। अर्थात् अलखनन्दा केवल बीस मील ही और है।

तब तक ड्राइवर का हाथ चमकते हुए काले हन्डिल को घुमाने के लिये तेजी के साथ उठा और पूर्ण शक्ति से मोटर घूम गई। ऐसा मालूम हुआ कि उलट जायगी। किन्तु ड्राइवर बड़ा विशेषज्ञ था। मोटर रुक गई। कम्पाउन्डर ने फाटक खोल दिया। बाहर निकलकर देखा—पेड़ गिर पड़ा है। मोटर का रास्ता बन्द है।

"अब क्या होगा ?"—ओ३म् ने कहा।

"क्या बताऊँ"—कम्पाउन्डर ने कहा।

"क्या बताऊँ ?—ओ३म् ने दुहराया।

"यही कि एक घण्टे बाद सरकारी 'लारी' आएगी। तब सड़क साफ होगी।"

"एक घण्टे तक रुकना होगा ?"

"दूसरा कोई चारा नहीं।"

ओ३म् निरुत्साह-सी खड़ी हो गई। उसने अपने बालों की चोटियाँ पीछे से आगे करते हुए कहा—कम्पाउन्डर साहब ! अब वह यौवन का दूसरा भाग पूरा हो सकता है न ?

"क्यों नहीं ?"

"तो फिर देर क्या है। इसी डाल पर बैठ जाइये।"

कम्पाउन्डर साहब डाल पर बैठ गये। किन्तु ड्राइवर को चैन न मिला। वह शीघ्रति शीघ्र नियत स्थान को पहुँचना चाहता था। अतः उसने वृक्ष के चारों ओर दो बार प्रदक्षिणा की और फिर मोटर से कुल्हाड़ी निकालकर लकड़ी की टहनियों को काटने में तल्लीन हो गया।

"बड़ी वीभत्स कहानी है ?"—कम्पाउन्डर ने ड्राइवर की ओर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा।

"किन्तु सत्य है। मेरे पिता से सम्बन्धित है। अपने परिवार के बारे में जानना अनुचित नहीं।"

"वह भी कहना ही होगा। अश्लील होते हुए भी यौवन के परदे पर आना ही होगा। वे रंगीनियाँ आज विशेष व्याख्या का समय आ जाने पर प्रकाशित करनी ही होगी। डाक्टर भाटिया मेरा मित्र भी है। उसकी मित्रता में यह विश्वासघात तो नहीं है? किन्तु नहीं। ऐसा भयानक विश्वासघात मैं नहीं कर सकता। यह विश्वासघात नहीं है। यह जय है, विजय है और एक प्रयोग है। प्रयोग असफल नहीं गया। यदि डाक्टर भाटिया एक अच्छे लेखक होते तो सम्भवतः वे स्वयं ऐसा कुछ लिखते।" कम्पाउन्डर उपरोक्त विचार विनिमय करके बोला—सत्य है इसी कारण कह भी रहा हूँ।

"तुम्हारे पिता डाक्टर बनकर ही आये थे। इतना विशाल सैनीटोरियम तब न था। केवल थोड़ी-सी जगह थी। झोपड़ियों में बीमार रहा करते थे। बीमारों की संख्या न तो आज जैसी थी और न उतना धन ही तब अर्जन हो सकता था। सैनीटोरियम का समय भी तब बारह महीने का नहीं होता था। केवल नौ महीने ही मरीज़ रहते थे। अतः जाड़े के शेष तीन मास इधर-उधर घूम-कर ही बिताना पड़ता था। एक बार मैं और तुम्हारे पिता मैदान में न जाकर काश्मीर की तरफ़ चले गये। वहाँ पर हम लोगों का एक मित्र हो गया था। उसको भी कुछ यक्ष्मा की शिकायत थी। सैनीटोरियम में वह आठ मास रहा था। चलते समय वह प्रार्थना कर गया कि हम लोग एक बार अवश्य उधर आवेंगे। तुम्हारी माता जी अपने पिता के घर चलीं गईं थीं। तुम तब छोटी थी।"

"काश्मीर में कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगा था। 'सापू' का वेग बड़ा कठिन था। फिर भी हम लोग काश्मीर चल पड़े। रात भर मित्र के यहाँ बन्द कमरे में पड़े रहते। प्रातःकाल होते ही दवाइयों की खोज में हम दोनों बहुत दूर निकल जाते थे। कोई डर न था।

दिन भर के थके-माँदे कभी-कभी पहाड़ों के किनारे की झोपड़ियों में ही विश्राम करना पड़ता था। कारण यह था कि तुम्हारे पिता का अध्ययन चल रहा था। दवाइयों की खोज में दूर तक जाना और उसकी पहिचान करना, कभी-कभी दो से चार दिन तक ले लेता था। भोजन की कमी न थी। कहीं भी सूखे फल लेकर आनन्द से भोग लगाया जा सकता था।"

"एक दिन हम लोग झरने के किनारे चले जा रहे थे। पानी बरसने लगा। हम लोग रुक गये। थोड़ी देर में जल चारों ओर इतना अधिक हो गया कि हम सब किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। परन्तु थोड़ी ही देर में फिर वही थोड़ा जल कल-कल करके बहने लगा। हम लोग पहाड़ी पर खड़े थे। ऐसा ज्ञात हुआ कि जल बरसा ही नहीं।"

"बड़ी लम्बी भूमिका बाँध रहे हो कम्पाउन्डर ?"

"बुरा क्या है ?"

"कुछ नहीं।"

"तब सुनो तनिक ध्यान से सुनना। तब मर्म समझ में आ सकेगा। याही बुड्ढा नहीं हो गया हूँ।"

ओ३म् ने मुस्कराते हुए कहा—"जानती हूँ।"

कम्पाउन्डर कहता गया—कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मैं और डाक्टर साहब भागते हुए आगे ऊँचाई की ओर चले जा रहे थे। सूर्य की किरणें ठीक सर पर कभी-कभी चमक उठती थीं। एक झरने के किनारे मुझे प्यास लग गई। मैं ठहर गया। मुझे देखकर डाक्टर साहब भी लौट आये।"

"जब मैं पानी पीने के लिये आगे बढ़ा तब जल के निकट ही मैंने एक शव देखा।"

"शव ?" ओ३म् ने आश्चर्य प्रकट किया।

"जी हाँ, वह शव था एक नारी का। डाक्टर साहब को मैंने संकेत से बुलाया। मुझमें उस समय बोलने की शक्ति बिल्कुल नहीं थी। डाक्टर साहब किसी लाश को बिना हिचकिचाहट के छेड़ सकते हैं। जीवित के निकट जाना अवश्य कठिन है किन्तु मृत्यु से खिलवाड़ उन्हें खूब आता है। वे तुरन्त निकट ही जाकर उसका हाथ खींचकर देखने लगे। देखते ही वे उछल पड़े। कहने लगे—कम्पाउन्डर! यह मरी नहीं है। अभी श्वाँस चल रही है। जी सकती है। शीघ्रता करो। मैंने उसे जल से बिल्कुल अलग कर दिया। अपनी-अपनी रूमालें निकालीं और उसका शरीर पोंछने लगे। खूब पोंछ देने पर डाक्टर ने अपना पैंट उतार दिया और ओवरकोट भी उसे पहना दिया। उसकी धोती उतार-कर फेंक दी गई। वह लगभग फट चुकी थी। डाक्टर साहब केवल चद्दर ओढ़कर काम चलाने लगे। दो पत्थर तोड़कर अग्नि की सृष्टि की गई। निकट के चाय के डन्ठलों को सुलगाकर आग जलाई गई। कई घन्टा तपाने पर नारी की चेतनता लौटी। वह अँगड़ाई लेने लगी। हम सब प्रसन्न हो गये। डाक्टर साहब अपनी विजय पर फूले न समाये। वह एक काश्मीरी लड़की थी जिसे उसके पिता-माता छोड़कर बाल्यकाल ही में सिधार गये थे। वह अकेली थी और कपड़ों के अभाव के कारण मर रही थी। उसका सौन्दर्य भी आज उसके काम न आ सका। रूप उसे धोखा दे चुका था। जवानी उसके साथ रहते हुए भी उसका उपकार न कर सकी। डाक्टर ने उसे अपने साथ रख लिया और उसका नाम 'कीमा' रक्खा गया। कीमा को पहाड़ से लौटते समय हम लोग अलखनन्दा पर लाये। उसे भी डाक्टर का सन्देह यक्ष्मा के पन्जे में घसीट लाया। अन्त में दवा से ही वह अच्छी हो गई। किन्तु डाक्टर साहब बीमार हो गये।

"पिता जी बीमार हो गये"—ओ३म् ने पूछा।

"हाँ किन्तु मन के रोग से।"

"मन के रोग से ?"—ओ३म् ने दुहराया।

उनका मन दवाखानें के कामों में न लगता था। वे बहुधा कीमा के पास ही बैठे वार्तालाप किया करते थे। कीमा अपने देश लौट जाना चाहती थी। किन्तु डाक्टर के निकट और उसके ऊपर किये गये उपकारों का बोझ इतना अधिक था कि वह डाक्टर को छोड़-कर जा न सकी।

"आज वह कीमा कहाँ है ?"—ओ३म् ने कहा।

"जानकर क्या करोगी ?"

"आखिर।"

"फिर कभी बताऊँगा।"

"आज ही बताइये न ?"

"अभी समय नहीं आया है।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"अब आगे सुनो"—वह कहने लगा—कीमा के प्यार में नहीं, अपितु उसकी जवानी में डाक्टर अपने को इस प्रकार भूले कि अस्पताल चौपट हो गया। सैनीटोरियम बदनाम हो गया। इतने कम बीमार हो गये कि सैनीटोरियम का व्यय ही निकलना कठिन हो गया।

"तब पिता जी को ध्यान आया होगा"—ओ३म् ने कहा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं। वे सैनीटोरियम छोड़कर उसके साथ काश्मीर चले गये। तीन वर्ष तक कीमा और डाक्टर का कोई पता नहीं लगा।"

"तब सैनीटोरियम का क्या हुआ ?"

"मैं तो था ही ?"

"किन्तु बिना डाक्टर के।"

"मैंने भी भाटिया की शिष्यता व्यर्थ में थोड़े ही की थी। मुझे भी कुछ ज्ञान हो ही गया था।"

"परन्तु आप सदैव न्याय के पक्ष में ही रहे।"

"वह कर्तव्य था।"

"आपने पिता जी को रोका नहीं?"

"वे कह रहे थे कि जवानी देख रहा हूँ।"

"और आप कुछ भी न समझे?"

"मैं सब कुछ समझता था। डाक्टर की भावानात्मक रंगीनी की पालिश मुझे भली प्रकार ज्ञात थी। किन्तु मैं जानता था कि डाक्टर कुछ सीख रहा है। खोकर, देकर नहीं लौटेगा। कुछ उससे लेकर ही लौटेगा।"

"उसके पश्चात्"—ओश्म् ने कहा।

"तब एक दिन मुझसे न रहा गया। मुझे भी डाक्टर के प्रयोग में भ्रम मालूम हुआ। मैं भी घबड़ा गया और तब मित्र को लौटाने के लिये काश्मीर चल पड़ा। वहाँ झरनों और पहाड़ों को छानते हुए तीन मास हो गये। कहीं पता न चला। तब एक दिन निराश उसी स्थान की ओर चला जहाँ 'कीमा' मिली थी। दिन भर के कठिन प्रयास के बाद उस पहाड़ी पर चढ़कर मैंने देखा दो व्यक्ति झरने से सटकर आराम कर रहे हैं। मेरे पैर ठिठुके। एक बार सारा शरीर काँप उठा किन्तु कर्तव्य को ध्यानावस्थित करते हुए आगे बढ़ा। निकट पहुँचते ही डाक्टर ने अपने हाथों में कीमा का बाल पकड़कर उसी से खेलते हुए पूछा—'यहाँ कहाँ आये कम्पा-उन्डर!' मुझे बड़ी निराशा हुई। सोचा कि लौट जाऊँ।"

"और तुम लौट पड़े?"

"करता ही क्या।"

"क्या तुम बिल्कुल निराश हो गये ?"

नहीं, कुछ दूर लौटकर फिर वापस चला गया। डाक्टर पर इस आने-जाने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने फिर कहा—लौट क्यों आए? कोई जाकर लौटता भी है?

मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—यह कौन-सा प्रयोग है डाक्टर! जिसकी अवधि आज तक पूरी न हुई।

डाक्टर ने कहा—यह जवानी है।

मैंने कहा—अन्धे न बनो डाक्टर। तुम्हारा सैनीटोरियम तुम्हें रो-रोकर पुकार रहा है। तुम्हारी ओ३म् तुम्हें याद करती है। तुम्हारा देश—अपने देश को इतनी जल्दी भूल गये? तुम काश्मीरी नहीं हो। अलखनन्दा के निवासी भाटिया! जागो। पृथ्वीराज मत बनो। कितने बीमार तुम्हें याद करके संसार छोड़ रहे हैं और तुम जवानी का प्रयोग देख रहे हो? आज उपकार की दुहाई कहाँ चली गई।"

"इसी प्रकार बड़ी देर तक पुकार लगाता रहा किन्तु लाभ सिद्ध न हुआ।"

"क्या कहा? पिता जी नहीं लौटे?"

"नहीं।"

"तब तुम फिर अलखनन्दा लौट आए?"

"यही हुआ।"

"और पिता जी?"

"कह रहा हूँ। वे दो वर्ष और बीतने पर एक दिन पागलों की तरह आकर मुझसे चिपटकर रोने लगे। मैंने देखा उनके शरीर पर ठीक से वस्त्र भी नहीं हैं। दाढ़ी बढ़ी हुई है। बाल बढ़कर कन्धों पर आ गये हैं। मोछ लम्बी हो गई है। परेशान, दीवानों की तरह। किन्तु मुझे दया न आई। मैंने उन्हें पीछे ढकेल दिया।"

"आप ने अन्याय किया"—ओ३म् ने कहा।

"क्योंकि आपके पिता ठहरे ?"

"आपको दया करनी चाहिये थी।"

"किन्तु मुझे क्रोध आ रहा था। मैंने कहा—जवानी का प्रयोग समाप्त हो गया ? कहाँ है कीमा ? उसे क्यों छोड़ आए ? क्या उसका पानी मर गया ? क्या उसकी जवानी ने धोखा दिया ?"

डाक्टर ने उत्तर दिया—प्रयोग समाप्त हो गया। कीमा मर चुकी है। उसे भूल जाओ।

"भूल जाऊँ ?"—मैं मुस्करा उठा।

"हाँ भूलना होगा"—डाक्टर ने कहा।

"उसकी जवानी अब न रही।"

"नहीं।"

"ढल गई ?"

"जीवन की कौन-सी वस्तु अमर है ?"

"कोई नहीं।"

"तब ?"

"तब क्या ? जीवन का पतन देख चुका। उत्थान की बारी आ गई है।"

"यही है तुम्हारे पिता का यौवन दिग्दर्शन। वह देखो—ड्राइवर लकड़ियों की पतली टहनियाँ काट चुका। थोड़े से धक्के से मोटर पार हो जायगी।"

दोनों व्यक्ति उठ पड़े। तीनों ने मिलकर मोटर ढकेलकर दूसरी ओर कर दी। फिर तीनों बैठ गये। मोटर एक बार आकाश से होड़ लेने के लिये दूर अलखनन्दा की ओर गतिमान हो गई। मोटर का गन्दा धुआँ कुछ देर तक शेष रहा फिर वह भी विलीन हो गया अपने वायुमण्डल में।

६

महानदी के छोर पर बैठा हुआ कवि अपने मस्तिष्क की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास कर रहा था। उधर लहरें उठकर एक दूसरे से सदैव के लिये उलझती हुई चली जा रही थीं। तारे जल में झिलमिला रहे थे। नीला आकाश जल की लहरियों पर खेल रहा था। सामने दूर एक गोल लकड़ी पर दो व्यक्ति बैठे हुए अठखेलियाँ कर रहे थे। कभी एक किनारा नीचे जल में चला जाता कभी दूसरा। वे नाविक न थे। सुसज्जित कपड़ों को पहने हुए तनजेब के कुर्तों और डुपट्टों को कसे हुए एक विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे थे। कभी उनकी लकड़ी किनारे पर आ जाती कभी फिर एक ही पैर से ढलकने पर बीच धारा में चली जाती। कभी दूर तक बह जाती, कभी फिर निकट आती हुई दिखाई पड़ती थी। यही क्रम आद्योपान्त लगा हुआ था।

कवि अदृश्य में भावनाओं के सहारे बड़ी देर तक तैरता रहा। परन्तु किनारा न मिला। घबड़ाकर उसने उन विचारों से अपने आपको खींचना चाहा। परन्तु मनुष्य जिनसे दूर भागता है उन्हीं के निकट ही उसे रहना पड़ता है। ऐसा कुछ सृष्टि का नियम दिखाई पड़ता है। हम जिसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं वह अनायास ही प्रतिदिन मिल जाया करता है किन्तु जिसे हम प्यार करते हैं वह

सदा दूर ही रहता है। उसकी छाया भी नहीं मिलती। बेचारा मनुष्य जितना ही हटना चाहता है उतना ही बँधता जाता है। जीवन के कुछ क्षण ऐसे भी होते हैं जब मनुष्य किसी गुत्थी को सुलझाने का प्रयास करता है तब अनेक इधर-उधर की बातें गड़े हुए मुर्दे के समान उभर आती हैं। आदमी मुख्य बात से हटकर अपने को उसी में खो देता है। कवि आज अपने जीवन का विश्लेषण कर रहा था। अचानक उसे भी उसके पैर डगमगाते ज्ञात हुए। रूप और ईश्वर को समझते-समझते वह कर्तव्य पर आ गया था। उसके रूप में ईश्वर की झलक थी और ईश्वर कर्तव्य पर आधारित था। गीता के कर्मकाण्ड से मिलता हुआ सा कुछ उसका पथ था जिस पर वह चल रहा था। गीता का कर्मकाण्ड जीवन का अर्जुन का मोह और स्वप्निल प्रभात की क्षीण छाया-सा वैराग्य का उपदेश सब धसते हुए ज्ञात हुए। अनिच्छा प्रकट करते हुए कवि ने भावों को दुतकार दिया। वह अपने को बहलाने के लिये साखू के पत्तों की नाव बनाने लगा। थोड़ी देर में नौका बन गई। कवि ने उसे पानी में रखकर पैर से सहारा दे दिया। वह आगे बढ़ती चली गई। जिस प्रकार नौका क्षितिज की ओर बढ़ती जाती थी उसी प्रकार कवि को सताने के लिये दूर-दूर की भावनाएँ उसे बाँधने लगी। प्रेमा का बचपन, अजमेर की यात्रा, वीणा की शिक्षा और निराशा के गीत बरबस फूट पड़े। कवि काँप उठा। आज अन्तर क्यों डोल गया? आज सफेदी में रंग कैसे पड़ गया! इस रंग को काटना ही होगा। कोई ऐसा प्रयोग करना होगा जिससे यह रंग तिरोहित हो जाय और फिर वहीं जल स्वच्छ जल अपनी पूर्ण स्थिति प्राप्त कर सके।

इतने में कवि की पत्तों की नाव लकड़ी के गोल बल्ले से टकराई। उस पर बैठे हुए दो व्यक्तियों में से एक ने वह नाव उठा ली—उसने

अपने साथी से कहा—यह कागज़ की नाव मेरी नाव से होड़ ले रही थी। बता दूँ कि इसका अस्तित्व क्या है ? इसे मोड़कर फेंक दूँगा। यह नष्ट हो जायगी। पत्ते तैरने लगेंगे और उसके ऊपर से हमारी नौका चलेगी।

"यह ठीक नही" दूसरे ने कहा—"तुम्हारी नौका बड़ी कड़ी है। तुम्हारे पास दिल नहीं है। तुम प्रस्तर हो। यह पत्तों की नौका बनाने वाला साधारण व्यक्ति न होगा। देखो इस पत्तों की नौका में भी कितनी कला है। सीकों के छेदन से ही एक शब्द बन रहा है। तनिक ध्यान से देखने दो। क्या लिखा है प्रे...प्रे...प्रेमा। बिलकुल ठीक है। किसी लड़की की नौका ज्ञात होती है। कला का इतना सुन्दर रूप...जिसने इस कला की सृष्टि की है वह कितना रूपवान होगा ? देखो मित्र। पत्तों की इस नौका को इसी प्रकार छोड़ दो। नहीं तो इसके स्वामी की भावना को आघात पहुँचेगा।"

'आघात पहुँचेगा तो पहुँचे। मैं न्याय करता हूँ। अन्याय सहन नहीं कर सकता। कागज़ और पत्तों की नौकायें इस प्रकार टकराती चले ? जीवन में मैंने हारना नहीं सीखा है। जीतकर रहूँगा। दुश्मन को कभी छोटा मत समझो।" पहले ने उत्तर दिया।

"भावना और सत्य में यही अन्तर है। नाव भावना है और तुम सत्य हो। भावना और सत्य से कोई झगड़ा चल ही नहीं सकता। प्रेमा की नाव बहने दो। किसी की नाव रोककर उसे सहारा देने के बदले ठोकर मारकर चकनाचूर हो जाने के लिये इतने उत्कण्ठित न हो जाओ। नाव जीवन का आरोप मात्र है।" पहले व्यक्ति ने कहा।

दूसरा व्यक्ति मुस्करा उठा। उसने हँसी रोकते हुए कहा—"दार्शनिक ! क्या तुम्हारा दर्शन वह हथौड़ी है जो सबको एक साथ एक ही प्रकार के प्रहारों से पीट सकता है ? मैं समझता था कि तुम्हारी

दार्शनिकता किसी व्याख्या विशेष पर अपनी छटा प्रदर्शित करती हुई शोभित होती है परन्तु अब तुम प्रत्येक स्थान पर दार्शनिकता ढूँढ़ते हो। उठने-बैठने में भी दर्शन का सहारा लेना पड़ता होगा।"

"और तुम किस दार्शनिक से कम हो," पहले ने कहा। प्रस्तर पर तस्वीर खींचते-खींचते जीवन का अन्त निकट आ गया कितने प्रस्तरों को केवल छोटा, टेढ़ा और किसी को बहुत बड़ा कहकर हटा दिया। इस समय भी नौका विहार के समय मन बहलाते हुए जिसे पत्ते की नौका पर क्रोध आ जाय वह क्या कम दार्शनिक है ?"

तब तक लकड़ी दूसरे किनारे जा लगी। पत्तों की नौका छोड़कर दोनों जल में विचित्र कौतूहल से घूरते हुए निकट के गाँव की ओर चल पड़े।

एक ने अपना बँधा दुपट्टा खोलते हुए कहा—'मान गया' और वे बातें करते हुए पहाड़ी की तलहटी में अदृश्य हो गये।

कवि किनारे से अपनी नौका की सारी विपत्तियाँ देख रहा था। पर वह मूक था। पत्तों की नाव का अस्तित्व ही क्या। छोटा-सा जीवन है जिधर बहा दो बहता हुआ चला जायगा। मनुष्य व्यर्थ ही उससे छेड़छाड़ करता है। परन्तु प्रेमा ! आज तुम क्यों याद आ रही हो ? क्या तुम भी मुझे अपने स्मृति के परदों पर खींचने का प्रयास कर रही हो ? रूप में ईश्वर है अथवा ईश्वर में रूप ! प्रेमा में ईश्वर है। प्रेम में नहीं ! अथवा प्रेम में ईश्वर है प्रेमा में नहीं। ईश्वर और रूप, रूप और ईश्वर—

सहसा कवि की आँखों को दो बड़े लम्बे-चोड़े हाथों ने पीछे से दबा लिया।

"कौन हो तुम ?"

"..............."

"बोलो ?"

"..............."

"निर्जन में भावना को बिना अधिकार छेड़ने वाले तुम कौन हो ?"

फिर भी कोई शब्द न हुआ। हाथ और कस उठे। वह आदमी बैठ गया। कवि ने हाथ पीछे घुमाए। उसका एक हाथ गले की तावीज पर पड़ गया। वह पुकार उठा—'शिकारी'! तुम हो। छोड़ दो। पहचान गया।

शिकारी ने हाथ ढीले कर दिये। कवि घूम पड़ा। उसने कहा—तुम यहाँ ?

"कौतूहल क्यों ?"

"इतने दिनों बाद ?"

"अन्त में आया न ?"

"ईश्वर जो है ?"

"नहीं, अभी हममें रूप जो है।"

"और जवानी भी।"

दोनों बड़े ज़ोर से हँस पड़े। उस हँसी की प्रतिध्वनि बड़ी देर तक पहाड़ की घाटियों में गूँजती रही। प्रकृति का अट्टहास मानवता की हँसी एक हो रही थी। रूप और ईश्वर मिलते हुए से दिखाई पड़ रहे थे।

"एक कविता सुनाओ भाई" शिकारी ने कहा !

"क्या आज कोई शिकार नहीं मिला ?"

"कविता और शिकार से सम्बन्ध ?"

"बहुत बड़ा।"

"वह कैसे ?"

"वह ऐसे कि मनुष्य किसी को कविता सुनाने को तभी कहता

है जब वह दुखी हो। उसे कुछ धक्का-सा लगा हो। तुम शिकारी हो। तुम्हें दुख हो सकता है तो केवल शिकार न मिलने का।"

"दुख अवश्य है किन्तु शिकार मिलने अथवा न मिलने का दुःख कभी नहीं होता। कुछ असन्तोष अवश्य होता है किन्तु जब प्रतिदिन शिकार मिलता रहता है और किसी एक दिन ही नहीं मिलता तब असन्तोष भी नहीं होता। और फिर, आज शिकार के लिये निकला नहीं हूँ। तुम्हें ही ढूँढ़ रहा था। तुम मिल गये। मेरा सारा दुःख तुम्हें देखते ही दूर हो गया! मैं प्रसन्न हूँ। किन्तु तुम्हारा अनुमान निराधार नहीं था। उसमें सत्य का बहुत बड़ा अंश है।"

"मेरी कविता छप गई?"

"बहुत पहले.........। और उससे अर्जित धन से लगभग दो सहस्र मुद्राएँ नोआखाली भेजी जा चुकी हैं।"

"धन्यवाद।"

"किन्तु इस धन्यवाद का श्रेय मुझे व्यर्थ ही मिल रहा है। उचित पात्र अनुपस्थित है।"

"वह कौन है?"

"वह भी मेरे साथ पढ़ने वाली एक लड़की।"

"शिकारी! तुम पढ़ते भी हो?"

"प्रयाग विश्वविद्यालय में।"

"तुमने मुझे ढूँढ़ कैसे लिया?"

"जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ। यह क्यों पूछते हो?"

"विश्वविद्यालय बन्द है क्या?"

"दशहरे का अवकाश प्रारम्भ हो गया है।"

"तुम मेरी पुस्तक की कोई प्रति नहीं लाए?"

"लाया हूँ। प्रिय-कवि ! तुमने बहुत सुन्दर लिखा है। प्रशंसा नहीं करता हूँ। किन्तु उसकी बिकी हुई प्रतियाँ ही उसका प्रमाण हैं। दो सहस्र मुद्राएँ कुछ कम नहीं हैं। तुम्हारी भावनात्मक अभिव्यंजना से कितनों का हृदय फट गया। कितने रोने लगे। मेरी सहायक ओ३म् को वह पूर्ण कण्ठस्थ हो चुकी है।"

कवि का ओजपूर्ण मुख चमक उठा। उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें शिकारी की आँखों में गड़ा दीं। अपनी प्रशंसा सुनने के लिये नहीं अपितु कुछ छिपी हुई बातों को शिकारी के अन्तर से जान लेने के लिये—उसकी आँखों में सांसारिकता के पीछे क्या छिपा हुआ है, इसे पढ़ लेने के लिये—।

कवि उठ खड़ा हुआ। उसने शिकारी के बाएँ हाथ को खींचते हुए उसे उठाया और घाटी की ओर चल पड़ा। नदी की तलहटी के रेतीले मैदान में पैर धँस रहे थे। फिर भी दोनों उधर ही चले जा रहे थे। सन्ध्या हो रही थी। घाटियों में प्रकाश सूर्यास्त के बहुत पहले ही चला जाता है। अतः आकाश के बादलों से होता हुआ झीना-झीना प्रकाश और उस प्रकाश में दो चलती-फिरती तस्वीरें ?

"तुमने कभी युद्धोपरान्त की भूमि देखी है।" कवि ने प्रश्न किया।

"युद्ध की नहीं, किन्तु शवों का ढेर अवश्य देखा है।"

"कहाँ ?"

"नोआखाली में। आप कवि हैं। कल्पना से परे कोई वस्तु नहीं। फिर आप भी ऐसे प्रश्न करते हैं। आप जिस वस्तु का जैसा रूप चाहें, खड़ा कर दें। आप से छिपी वस्तु कहाँ रह सकेगी ?"

"उसे देखकर तुमने क्या सोचा ?"

"यही कि सभी मरते हैं। मृत्यु अवश्यम्भावी है। उससे कोई बच नहीं सकता।"

"और तुम्हारा रूप ? उसके बारे में कुछ नहीं ? और तुम्हारा ईश्वर ? वह कहाँ था। अन्याय के समय उसकी याद तुम्हें नहीं आई ? क्या दुःख इतना अधिक बढ़ गया था ?"

"उस समय रूप की कल्पना भी मन में न आई। हाँ दुर्बुद्धि मनुष्य जाति के ऊपर दया अवश्य आई।"

"तब तुम्हारा खून उबलना चाहिये था। शिकारी के हृदय में दया कहाँ से उपज पड़ी।"

"आप कौन-सा निष्कर्ष निकालना चाहते हैं ?"

"पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो ! निष्कर्ष स्वयं समझ जाओगे ! तुम जिस प्रश्न का उत्तर माँगने आये हो उसी की ओर बढ़ रहा हूँ।"

"यह आप को कैसे ज्ञात हुआ कि मैं प्रश्न करने के लिये ही आया था। आप कुछ जादू जानते हैं ?"

"यह सब पूछकर क्या करागे। आगे बढ़ो। प्रश्नों का उत्तर दो। तुम दया को कैसे जान सके ?"

"विकृत रूप को देखकर, कटे हुए असहाय निरीह प्राणियों की करुण कराह को सुनकर।"

"क्या तब ईश्वर नहीं था ?"

"मुझे ध्यान न आया।"

"तब तुम ईश्वर को नहीं समझ सकते। तुम्हारा पहला प्रश्न समाप्त हो गया।"

कुछ समझ में नहीं आया ?

"संसार में प्रवेश करो। अध्ययन के बाद—रोटी मिल जाने पर—थककर आना। तब मुझे जिस रूप और ईश्वर को समझाने का प्रयोग और प्रयास कर रहे थे, वह अपने आप समझ में आ जायगा। उस दिन तुम जिस दया और भूख की पूर्णाहुति में ईश्वर

और रूप को एक समझ रहे थे वह रूप और वह ईश्वर तुम्हारी समझ में स्वयं नहीं आया था। तुम्हारे विचित्र वाक्‌जाल में पड़कर मेरी भावनाएँ भी विचलित हो चली थीं। परन्तु आज वे उसी प्रकार हैं। विपथगा होकर भी उनमें फिर पथ पर चलने की शक्ति आ गई। तुम स्वयं भ्रम में पड़ गये। और आज वह दिन आया कि रूप और ईश्वर समझने के लिये मुझे ढूँढ़ रहे थे?"

"रूप समझ गया न? अथवा उसमें भी कुछ सन्देह है?"

"रूप को तुम समझते हो। किन्तु सौन्दर्य को जितना तुमने समझा है उतना मैं भी नहीं समझ सका। उसी रूप द्वारा एक दिन तुम ईश्वर को भी जान सकोगे। किन्तु आज तुम विकल हो।"

"मानता हूँ कवि?"

"मानना पड़ेगा ही। क्योंकि मैं सत्य कह रहा हूँ। तुम उस लड़की को प्यार करते हो। वह तुम्हारी सहपाठिनी है। वह तुम्हें भी प्यार करती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। परन्तु प्यार की सीढ़ियों पर चढ़ने का जो तुम्हारा ध्येय था वह ध्येय अब समाप्त हो चुका।"

"वह कैसे?"

"तुम रूप और ईश्वर समझने के लिये प्यार की ओर अग्रसर हुए। सत्यम् शिवं सुन्दरम् जानना चाहते थे। किन्तु आगे चलकर तुमने सत्यम्, सुन्दरम् का लेकर शिव को छोड़ दिया। पथ पर चलने का साधन विशेष ही न रहा। मरूभूमि में चलने के पहले तुम्हारे पास ऊँट और भोजन हो गया किन्तु जल की तुमने चिन्ता न की। यात्रा कैसे सुखद और पूर्ण हो सकती है।"

"वह शिवं क्या है कवि?"

"प्रेम की भूमि में आकर तुम दया भूल गये। उस दिन से तुम इतने विभोर हो उठे कि तुमने दूसरों की सहायता करने का

समय भी प्रेम-मयी रागिनी के चिन्तन में बिता दिया। तुम्हारे धन से अनेक विद्यार्थियों को लाभ होता था। वह बन्द हो गया। तुमने गुप्तदान बन्द कर दिया। अब तुम्हारे पिता अधिक व्यय भेजते है किन्तु उसका अधिक अंश तागे और रेशम के कुर्तों में व्यय होता है। पहले तुम खद्दर पहनते थे। दूसरों को पहनने का उपदेश करते थे। आज तुम्हारी साधना दूसरी ओर मुड़ गई है। तुम अपने मित्र को भी भूल चुके हो। एक दिन तुम नेता थे। तुम्हारे हृदय में नेतृत्व और बलिदान की भावना थी। आज केवल नाम के नेता हो। बलिदान की भावना बहुत कुछ मर चुकी है।"

"कवि ! तुम ज्योतिषी हो क्या ?"

"भूल रहे हो ?"

"किन्तु मैंने आज तक अपने जीवन के विषय में कुछ भी नहीं बताया। अधिक से अधिक तीन-चार बार के मिलने में इन घनिष्ठ बातों को जान लेना। आपने आज तक मेरा नाम तक पूछा नहीं। बात ऐसी करते हैं कि आप सदैव साथ रहे हों ?"

"तपस्या में भी कुछ बल है।"

"कविता और तपस्या ! आग और पानी !"

"रूप और ईश्वर।"

"मैंने अंग्रेजी कवियों के बारे में नहीं अपितु संस्कृत कवियों के जीवन-चरित्र भी पढ़कर यही समझ रक्खा था कि चरित्र और कविता दोनों नहीं हो सकतीं। मिल्टन इसी कारण अधिक कार्य न कर सका। दूसरी ओर शेक्सपियर और कालिदास संसार के महान कवि हो गये।"

"अरस्तू और साक्रीटोज कौन थे ?"

"दार्शनिक।"

"इनके विषय में तुम्हारा क्या मत है ?"

"जो मत है उसे मुझी तक सीमित रहने दीजिये। मैंने इन्हें पढ़ा नहीं है।"

"अब पढ़ो। भाव प्रदेश में जाते समय भावना पर चढ़कर दूर न चले जाओ। नये सिद्धान्तों के आविष्कार के पहले पुराने सिद्धान्तों का विवेचानात्मक इतिहास और उसका अध्ययन अत्यन्तावश्यक है। यह सब मैं इसलिये कह रहा हूँ कि इसी से तुम्हें तुम्हारे रूप द्वारा तुम्हारा ईश्वर मिल सकेगा।"

"सहर्ष स्वीकार है।"

"अजमेर चलोगे?"

"कारण?"

सम्भवतः और कुछ जान सकोगे। अध्ययन के लिये ही चले हो न?

"विचार कुछ ऐसे ही हैं?"

"छुट्टियाँ कब तक हैं?"

"यही पन्द्रह दिन।"

"मैं तुम्हारा अधिक समय न लूँगा।"

"चल रहा हूँ। वहाँ मेरे मित्रगण भी हैं।"

"किन्तु मित्रों की सहायता अनिवार्य नहीं।"

"निवास स्थान के लिये सुभीता होता।"

"मैं सन्यासी हूँ, कवि हूँ, तपस्वी हूँ। कभी रात्रि में नगर में निवास नहीं करता। तुम मेरे साथ चल रहे हो। अतः जब तक मेरे साथ नहीं रहते तब तक तुम भली प्रकार किसी भी वस्तु को समझ नहीं सकते।"

तब तक गाँव आ गया। पत्थरों के मकान एक अनोखे ढंग से बने हुये थे। पृथ्वी का धरातल सम न होने के कारण कोई नीचे

था·कोई ऊँचे। यह व्यतिक्रम भी एक सुन्दरता की ही सृष्टि कर रहा था! घरों के ऊपर खपरैलें न थीं। ऊजड़ ग्राम की तरह सूना-सूना लग रहा था। ज्ञात होता था कि मौन तपस्वी समाधि में तल्लीन हैं। इन्हीं में से एक मकान की ओर मुड़ते हुए कवि ने कहा"—लो आ गये।"

कवि ने किवाड़ थपथपाये और फाटक खुल गया। एक वृद्ध ने निकलकर अभिवादन किया और दोनों को भीतर ले गया।

"कब आए कवि?" बुड्ढे व्यक्ति ने कहा।

"अभी कुल तीन चार दिन ही हुए।" कवि ने उत्तर दिया।

"और आप!"

"हमारे मित्र हैं। रात्रि में यहीं रहेंगे। इन्हें कोई कष्ट न हो। प्रातः मैं लौट आऊँगा। मेरे साथ ही यह भी अजमेर को प्रस्थान करेंगे।"

"आप अजमेर जा रहे हैं? कब तक लौटेंगे?"

"कुछ निश्चित नहीं।"

बुड्ढा और कुछ पूछना चाहता था किन्तु कवि तब तक उठ चुका था। उसने जाते समय फिर दुहराया—"मेरे मित्र को कोई कष्ट न हो।"

बुड्ढे ने बाहर का फाटक बन्द करते हुए कहा—"ईश्वर की जैसी इच्छा।"

"दिनेश। इधर आ।"

"आई, बाबा।"

ध्वनि के साथ ही एक चौदह वर्षीया बालिका आकर खड़ी हो गई।

बुड्ढे ने कहा—"ये तुम्हारे ·अतिथि हैं। इनकी सेवा करना तुम्हारा धर्म है। कवि के मित्र भी हैं।"

"क्या कवि जी भी आए थे ?"

"हाँ, किन्तु शीघ्र ही चले गये।"

"इतनी जल्दी ?"

"कोई काम होगा।"

बालिका के मुख पर एक निराशा-सी प्रतिलक्षित हुई। वह चली गई किन्तु जाने में उतनी चंचलता न थी जितनी आने में। कवि दादा बिना उसे देखे ही चले गये ? न जाने किस उलझन में थे। यह आदमी ही उस उलझन का कारण तो नहीं घड़े से पानी निकालते हुए उसने सोचा। नहीं, ऐसा नहीं होगा। यह मनुष्य बड़ा सीधा ज्ञात होता है। कितना सुन्दर है यह। कवि दादा के लिये इसका कोमल हृदय कभी भी पहेली नहीं बन सकता। सौन्दर्य के आकर्षण में जितनी तीव्रता है—।

तब तक जलपान के लिए एक थाल भरे हुए सूखे फल एक हाथ में और पानी दूसरे हाथ में लेकर बालिका उस अतिथि के सामने खड़ी हो गई। लड़की के घुँघुराले बाल की लटे चलते समय पीछे से आगे आ गई थीं। उसके होठों पर जाते समय की निराशा न थी। अब लाल-लाल गोरे चेहरे पर एक अद्भुत विस्मय की भावना थी। आँखें कुछ तिरछी हो चली थीं। थाल वाला हाथ आगे बढ़ाते हुए उसने कहा—'लीजिये।'

और तभी पाण्डेय जी ने घूमकर देखा—बालिका हाथों में थाल और जल लिये खड़ी है। उन्होंने पानी अपने हाथों से उतारते हुए बड़ी नम्रता के साथ कहा—'इतना मेवा।'

"बहुत नहीं है ?"

पाण्डेय जी ने कुछ और कहने का साहस न किया। सम्भवतः वही रात्रि का भोजन भी हो ? भूख उन्हें बहुत लग चुकी थी। वे शीघ्र ही हाथ-पैर धोकर फलाहार करने के लिये बैठ गये।

"बाबा जी, आप भी—"

"नहीं बेटा। मैं केवल एक बार ही रात्रि में भोजन करता हूँ।"

"किन्तु इस समय—"

"नियम में व्यवधान पड़ेगा।"

"आपकी अवस्था क्या होगी ?"

"एक सौ पन्द्रह वर्ष।"

पाण्डेय जी का कौतूहल बढ़ गया। उन्होंने अपने मन में वृद्ध की आयु दुहराते हुए मेवे का भोग लगाना प्रारम्भ कर दिया। मेवा समाप्त भी न हो पाया था कि गरम-गरम दूध का एक बड़ा गिलास सामने आ गया। गिलास बहुत गरम था। उसमें लगभग एक सेर से कुछ अधिक ही दूध रहा होगा। मेवे से ही पेट भर चुका था। उसी मेवे को ही पेट में रखने का स्थान न था। दूध का क्या होगा ? बुड्ढे की बातों से ज्ञात होता है कि भोजन भी मिलेगा। यह बुड्ढा कितना खाता है ?

"यह क्या है ?" यद्यपि पाण्डेय जी जानते थे तब भी पूछने लगे। सम्भवतः वे एक बार फिर बालिका के अधरों से कुछ सुनना चाहते थे।

"दूध है। आप बाहर से आए हैं। थक गये हैं। फल और दूध से थकावट दूर हो जाती है।" कहकर उसने गिलास बढ़ा दिया।

पाण्डेय जी इनकार न कर सके। पेट में जगह न होने पर भी उन्होंने सभ्यतावश गिलास अपने हाथों में ले लिया। वह बहुत गरम था। ऐसा मालूम हुआ कि छूट जायगा। किसी प्रकार उन्होंने शीघ्रता से अपनी जेब से रूमाल निकाली और उसके सहारे पकड़-कर बोले—"अभी बहुत गरम है। जल रहा है। मेरा हाथ ही जला जा रहा था। आप इसे कैसे ले आयीं।"

तब तक बुड्ढा उठकर चला गया।

"अब गरम नहीं है। थोड़ी देर पहले अवश्य गरम था। अब ठन्डा हो चुका है। इससे अधिक ठन्डा दूध हानिकर होता है। आप चाय भी पियेंगे।"

"इतना दूध ही नहीं पी सकता। आप एक गिलास और ले आएँ। मैं उसमें पीने भर को निकाल लूँगा।"

"मेरे घर में अतिथि के लिये कोई दूसरा बर्तन नहीं।"

"अपने लिये है न ?"

दिनेश दूसरा बर्तन लाने के लिये दौड़ गई। वह अपना गिलास उठा लाई। उसने आगन्तुक के हाथ से दूध का गिलास अपने हाथ में लेकर दोनों में बराबर दूध कर दिया। अतिथि का गिलास पाण्डेय जी के हाथ में दे दिया और एक गिलास स्वयं अपने हाथ में लेती हुई बोली—'अब पी लीजिये बहुत कम है।' और अपने गिलास का दूध उसने एक साँस में ही पी लिया। उसने यह भी न देखा कि आगन्तुक ने पहले पिया या नहीं। पीकर भी उसने अपने अतिथि की ओर न देखा। वह सीधे भीतर की ओर चली गई। पाण्डेय जी अकेले रह गये। दिन भर के थके माँदे थे ही। उन्हें नींद आ गई।

बुड्ढे बाबा और दिनेश दोनों ने मिलकर भोजन की तैयारी प्रारम्भ कर दी। दो घन्टे के पश्चात् भोजन बन गया। तीन थाल सजाये गये। एक कम्बल बिछाया गया। पानी यथा स्थान रख दिया गया। तब बुड्ढा एक किनारे बैठ गया। बालिका बुड्ढे के आदेश के लिये एक ओर खड़ी हो गई।

बुड्ढे ने कहा—"अतिथि को बुलाओ दिनेश।"

वह दौड़ती हुई चली गई और उसने पाण्डेय जी का हाथ पकड़-कर उठाया।

"भोजन का समय हो गया। बाबा बाट जोह रहे हैं।" बालिका ने कहा।

नींद में ऊँघते हुये सभ्यता के पक्षपाती पाण्डेय जी आखें मलते हुये उठ बैठे। उन्होंने कहा—"भोजन तो कर चुका"।

"स्वप्न में ?" बालिका ने किनारे होते हुये कहा।

पाण्डेय जी अब पूर्ण सचेत हो चुके थे। परिस्थितियों का ज्ञान होने पर उन्होंने कहा—पेट में फल इतने अधिक पहुँच चुके हैं कि भोजन की इच्छा नहीं।

"किन्तु तब बाबा भोजन नहीं करेंगे। बिना अतिथि को भोजन दिये हुए उन्होंने आज तक भोजन नहीं किया। उनके नियमों में शिथिलता नहीं आ सकती।"

"तब चलना ही पड़ेगा।"

"जैसा आप उचित समझें।"

बालिका आगे-आगे चली और पाण्डेय जी पीछे-पीछे। थाल के निकट तीनों बैठ गये। तब तक बुड्ढा हवन कर चुका था। उसने अतिथि को देखकर कहा—प्रारम्भ कीजिये।

तीनों ने भोजन करना प्रारम्भ किया। बुड्ढे बाबा बीच में बोल उठे। यह मेरे लड़के की लड़की है।

"और आप के लड़के ?"

"बिहार के भूचाल में मेरी स्त्री, पतोहू और मेरा पुत्र तीनों
पृथ्वी माता के पेट में चले गये। यह लड़की मेरे पास ही थी।
इसलिये बच सकी। नहीं तो आज मुझे ही आपको जलपान भी
कराना पड़ता। दैनिक गौवें भी चरानी पड़तीं।"
"दिनेश आपको बहुत सहायता पहुँचाती है।" पाण्डेय ने
कहा। छुई-मुई सी दिनेश ने सिमटते हुये कहा—बाबा से अधिक
काम कौन कर सकता है ?

बुड्ढे ने फिर कहा—आप कहाँ के निवासी हैं। कवि से आप की जान-पहिचान कब हुई ?

"अभी निकट के ही भूत में। अधिक दिन नहीं हुये। मैं एक बार इसी जङ्गल में शिकार के लिये आया था। वहीं हिरनों के साथ कवि खेल रहा था। मुझसे तभी से परिचय हो गया।"

"फिर आज आप ऐसे ही मिलने के लिये आये थे ?"

"नहीं ?"

"किसी कार्य विशेष से ?"

हाँ, मैं रूप और ईश्वर समझने के लिये आया था। प्रश्न अभी तक अधूरा है। कवि कहता है कि तुम रूप समझ सकते हो किन्तु ईश्वर को नहीं। किन्तु एक दिन ऐसा अवश्य होगा जब रूप के द्वारा ही तुम ईश्वर का बोध कर लोगे।"

"और अजमेर का प्रस्थान......... ।"

"इसी प्रश्न को हल करने के लिये ही वहाँ जा रहा हूँ।"

"कवि एक दिन मुझसे भी कह रहा था कि रूप और ईश्वर दोनों संयम द्वारा ही जाने जा सकते हैं। मुझमें संयम है। मैं दोनों को समझ सकता हूँ। ऐसा उसका विचार है।"

"मुझे कवि दान की बात समझा रहा था।"

"किन्तु मैंने समझा है कि रूप द्वारा भी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। तुलसीदास रूप द्वारा ईश्वर को पा सके। अपनी स्त्री द्वारा ही उन्हें ईश्वर का आभास हुआ।"

"किन्तु वह रूप नहीं, माया थी। माया ने एक गहरी ठोकर दी। वे सचेत हो गये।"

"हिन्दू धर्म में प्रस्तरों की पूजा कैसे प्रारम्भ हुई ? रूप का ध्यान करते-करते एक दिन देवता स्वयं बरदान देने के लिये उपस्थित

होंगे। वही रूप जिसकी उपासना करते हो, उस दिन ईश्वर में बदल जायगा।"

"तब तो कवि ठीक कह रहा था। उसने तपस्या भी की है। वह संयम का महत्व जानता है। उसने कहा है कि संयम द्वारा ही रूप और ईश्वर का बोध कर सकते हो। वह बिल्कुल ठीक कहता है। आप बिना संयमी हुये प्रस्तर की भी पूजा नहीं कर सकते।"

"प्रेम स्वयं संयम सिखा देता है।"

"मैं इसे नहीं मानता।"

"इसलिये ही कवि तुम्हें अजमेर ले जा रहा है।"

तब तक तीनों का भोजन समाप्त हो चुका था। भोजन अत्यन्त सादा था। नमक का कोई भी पदार्थ न था। सब में कुछ न कुछ दूध का ही अंश था। घी, दूध, दही का ही बाहुल्य था। बालिका ने उठकर अपने हाथ धोये और फिर बाबा तथा अतिथि के हाथ धुलाये।

खजूर के मोटे गद्दे के निकट पहुँचते ही लोगों का थाल सामने आ गया। पाण्डेय जी ने दो-चार लौंगें निकाली और बैठ गये। बुड्ढा भी आकर निकट के दूसरे गद्दे पर बैठ गया। बालिका दिनेश खड़ी रही।

"तंबूरा उठा ले आ बेटी? अतिथि को अपने दो-एक टूटे-फूटे गीत सुना दे। सत्कार में कमी न हो।" बुड्ढे ने चार लौंगें अपने दाँत के नीचे दबाते हुये कहा।

दिनेश ने कहा—"बाबा! बर्तन माजने का समय है। उसके बाद।"

"नहीं बेटी! कल पूर्णिमा है। व्रत का दिन है। बर्तन कल ही मजेंगे। आज तेरे सङ्गीत का ही दिन है। नियमों में कोई शिथलिता नहीं होगी।" बुड्ढे ने कहा।

"ठीक है बाबा। भूल गई थी।" वह दौड़ गई और तंबूरा लेकर दूसरे ही क्षण उपस्थित हो गई। बैठते हुये उसने भी दो-चार लौंगें निकाली और उन्हें चबाते हुये कहा—बाबा कौन-सा गीत सुनाऊँ।

"कवि का वह गीत जब वह अजमेर से लौटने पर तुम्हें सिखा रहा था।" बुड्ढे ने कहा।

बालिका ने सितार उठा लिये। रात्रि के अन्धकार में बालिका के हाथ सितार पर विद्युति की तरह नाच उठे। वह गाने लगी :—

लो, फिर अब जाग उठी कविता।
कल की स्मृतियाँ फूट पड़ीं,
बन्धन की कड़ियाँ छूट पड़ीं,
तारों की लड़ियाँ टूट पड़ीं,
भावना तिमिर के परदे पर लो फिर अब जाग उठी कविता।
संसृति में प्रलय, प्रलय में तुम,
तुम में आशा, आशा में तुम—,
इच्छा में तुम, करुणा में तुम,
ऊषा के चिन्हित चरणों पर.................. ....।
शशि मुख पर बादल घहर उठे,
मोती के कन तब छहर उठे,
हो गई प्रलय स्वर हहर उठे,
शशि-मुख की नव-रंगीनी पर..............................।
तब सागर का तूफ़ान चला,
लहरों का उन्मन गान चला,
पीड़ा जागी अरमान चला,
उड़ते हंसों के चुम्बन पर..............................।

प्राण्डेय जी विभोर हो उठे। सितार रुक गया था किन्तु उन्हें अन्धकार में वे स्वर अब भी गूँजते हुए सुनाई पड़ रहे थे। वे एक टक देखते ही रह गये। जब एक छोटी सी लड़की जिसके गीत केवल मैंने सुने हैं वह इतना अच्छा गा सकती है तब तानसेन, तानी और बैजू बावरा के गीत कैसे रहे होंगे! उनमें कितना आकर्षण रहा होगा! जीवन का सारा सुख संगीत में ही निहित है। आदमी संगीत के पीछे सब कुछ भूल जाता है। बड़ी-बड़ी कातर आँखों वाले हिरन भूख-प्यास की सुधि खोकर पागलों की नाई संगीत सुनने के लिये दौड़ पड़ते हैं। मनुष्य का चंगुल आन कर भी संगीत के पीछे अपने जीवन की इतिश्री करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। कवि कहता था कि उसका गान सुनने के लिये वन के समस्त जीव उमड़ पड़ते थे। हिरनों के छोटे-छोटे बच्चे उसके सितार से गीत समाप्त होने पर भी अपना मुँह लगाए रहते थे। हिंसक जन्तु भी उसके समक्ष मन्त्र मुग्ध से खड़े रहते थे। गीत में अपार शक्ति है। शंकर के डमरू से निकले हुए सप्तस्वर आग लगा सकते हैं। वर्षा कर सकते हैं—तूफान उठा सकते हैं—क्या नहीं कर सकते। स्वर में सम्भव-असम्भव सभी लीन हैं।

"क्या गीत नहीं पसन्द आया" बुड्ढे ने प्रश्न किया।

"बाबा। ऐसा गीत कभी नहीं सुना था। मैं अब भी सुन रहा हूँ। मेरे कान में उसकी स्वर लहरी अब भी दौड़ रही है।"

"क्या कवि का गीत नहीं सुना? वह सितार के तारों पर विशेष रूप से अपना अधिकार रखता है।"

"उसने मुझे कभी गीत नहीं सुनाया। गीत के बदले मैं स्वयं उसे रोटीवाद का उपदेश देने लगा। वह रोटी पर आ गया। किन्तु आज ज्ञात हुआ कि रोटीवाद से भी संगीत ऊँचा है।"

"यह बात नहीं है। रोटी आवश्यक है। किन्तु वही सब कुछ नहीं है। रोटी का देने वाला भी है। रोटी के पीछे उसके देने वाले को नहीं भुलाया जा सकता।"

"कुछ भी हो, गीत की महत्ता स्वीकार कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" पाण्डेय जी मुस्कराते हुए से कहने लगे—उन्होंने क्रम जारी रक्खा यदि आप आज्ञा दें तो एक बात कहूँ ?"

"पूछो न ?"

"मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का एक छात्र हूँ। विश्वाविद्यालय की ओर से एक संसार के सितारों के ज्ञाताओं का सम्मेलन होने वाला है। यदि आप चाहें तो दिनेश को उसमें ले जायँ यद्यपि मुझे कुछ विशेष कहने का अधिकार नहीं है अपितु मैं सुझाव उपस्थित करने में अपने को स्वतन्त्र समझता हूँ।"

"बाबा, सम्मेलन क्या है ?"

"अतिथि इसे भली प्रकार समझा सकेंगे। मेरे विचार से उसमें बड़े-बड़े संगीतज्ञ अपना गीत सुनाएँगे। यही न" बाबा ने कहा।

"हाँ और क्या ! जो सबसे अच्छा गीत गायेगा उसे पारितोषिक मिलेगा।" पाण्डेय जी ने कहा।

"तब मुझे अवश्य जाने दीजिये। मुझे अन्य संगीत कारों के गीत भी सुनने को मिलेंगे।" दिनेश ने कहा।

"तुम्हारे ऊपर कवि का नियन्त्रण है। उससे आज्ञा लेनी होगी। मुझसे पूछना व्यर्थ है।"

"कवि का नियन्त्रण ? आप की पौत्री और कवि का नियन्त्रण ? क्या कवि आप का भाई.........।"

"ऐसी कुछ बात नहीं। कवि महान् है। उसी की संरक्षता में मेरी पुत्री का अध्ययन चल रहा है। इसका जीवन भार उसी के सिर पर हैं। वही इसका विवाह आदि करेगा। मुझसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। उसी के आदेशानुसार मैं ही नहीं अनेक घर अपना-अपना कार्य किया करते हैं। हम सब उसके आदेश से सुखी तथा प्रसन्न हैं। उसे साधारण व्यक्ति मत समझो। इतनी कम अवस्था में जितने विषयों का अध्ययन कवि ने किया है वे अकथनीय और आश्चर्य उत्पन्न करने वाले हैं।"

"कवि महान् है इसमें कोई सन्देह नहीं।"

"और वह आप को ईश्वर समझा देगा। ऐसा मुझे विश्वास है। रात अधिक हो चली है। आप आराम करें। प्रातः आप को स्टेशन तक पैदल जाना है।"

"मुझे भी नींद आ रही है।"

"समय अधिक हो चला है। दिनेश! अपने शयनागार में जाओ।" बुड्ढे ने कहा।

बलिका ने अपने बाबा के चरण छुए। अतिथि को नमस्कार किया और फिर प्रसन्नवदना बालिका लौट गई। पाण्डेय जी उसे जाते हुए देख रहे थे।

× × × ×

प्रातः काल कवि ने आवाज़ दी। बुड्ढा जाग उठा। उसने साकल खोल दी। दिनेश भी जग पड़ी। उठकर कवि से चिपट गई। कवि ने प्यार से छाती से लगा लिया।

"दादा! आप बिना मुझसे मिले ही चले गये?"

"यह बात नहीं है। रोटी आवश्यक है। किन्तु वही सब कुछ नहीं है। रोटी का देने वाला भी है। रोटी के पीछे उसके देने वाले को नहीं भुलाया जा सकता।"

"कुछ भी हो, गीत की महत्ता स्वीकार कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" पाण्डेय जी मुस्कराते हुए से कहने लगे—उन्होंने क्रम जारी रक्खा यदि आप आज्ञा दें तो एक बात कहूँ ?"

"पूछो न ?"

"मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का एक छात्र हूँ। विश्वविद्यालय की ओर से एक संसार के सितारों के ज्ञाताओं का सम्मेलन होने वाला है। यदि आप चाहें तो दिनेश को उसमें ले जायँ यद्यपि मुझे कुछ विशेष कहने का अधिकार नहीं है अपितु मैं सुझाव उपस्थित करने में अपने को स्वतन्त्र समझता हूँ।"

"बाबा, सम्मेलन क्या है ?"

"अतिथि इसे भली प्रकार समझा सकेंगे। मेरे विचार से उसमें बड़े-बड़े संगीतज्ञ अपना गीत सुनाएँगे। यही न" बाबा ने कहा।

"हाँ और क्या! जो सबसे अच्छा गीत गायेगा उसे पारितोषिक मिलेगा।" पाण्डेय जी ने कहा।

"तब मुझे अवश्य जाने दीजिये। मुझे अन्य संगीत कारों के गीत भी सुनने को मिलेंगे।" दिनेश ने कहा।

"तुम्हारे ऊपर कवि का नियन्त्रण है। उससे आज्ञा लेनी होगी। मुझसे पूछना व्यर्थ है।"

"कवि का नियन्त्रण ? आप की पौत्री और कवि का नियन्त्रण ? क्या कवि आप का भाई.........।"

"ऐसी कुछ बात नहीं। कवि महान् है। उसी की संरक्षता में मेरी पुत्री का अध्ययन चल रहा है। इसका जीवन भार उसी के सिर पर है। वही इसका विवाह आदि करेगा। मुझसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। उसी के आदेशानुसार मैं ही नहीं अनेक घर अपना-अपना कार्य किया करते हैं। हम सब उसके आदेश से सुखी तथा प्रसन्न हैं। उसे साधारण व्यक्ति मत समझो। इतनी कम अवस्था में जितने विषयों का अध्ययन कवि ने किया है वे अकथनीय और आश्चर्य उत्पन्न करने वाले हैं।"

"कवि महान् है इसमें कोई सन्देह नहीं।"

"और वह आप को ईश्वर समझा देगा। ऐसा मुझे विश्वास है। रात अधिक हो चली है। आप आराम करें। प्रातः आप को स्टेशन तक पैदल जाना है।"

"मुझे भी नींद आ रही है।"

"समय अधिक हो चला है। दिनेश! अपने शयनागार में जाओ।" बुड्ढे ने कहा।

बलिका ने अपने बाबा के चरण छुए। अतिथि को नमस्कार किया और फिर प्रसन्नवदना बालिका लौट गई। पाण्डेय जी उसे जाते हुए देख रहे थे।

× × × ×

प्रातः काल कवि ने आवाज़ दी। बुड्ढा जाग उठा। उसने साकल खोल दी। दिनेश भी जग पड़ी। उठकर कवि से चिपट गई। कवि ने प्यार से छाती से लगा लिया।

"दादा! आप बिना मुझसे मिले ही चले गये?"

"भूल गया था। कुछ उलझनें थीं। सुलझा रहा था। मैं बाहर जा रहा हूँ। मुझे फल चाहिये। सूखे मेवे दस सेर।"

बालिका ने एक बड़ी टोकरी में दस सेर सूखे फल लाकर रख दिये। कवि ने पाण्डेय को जगाया और स्टेशन चल पड़ा।

१०

मन्त्री देशराज अपने विचारों में खोये हुए थे। कवि ने उनको हृद्तन्त्री को एक गहरी चोट पहुँचाई थी। वे कवि को भी निरपराध होने पर भी बन्दी बना सकते थे किन्तु उस समय वे हतबुद्धि से हो रहे थे। उनके मस्तिष्क में चक्कर आ गया था। उनकी भावनाएँ टकरा-टकरा कर टूट रही थीं। उनका रहा-सहा गर्व भी धूल में मिल गया था। जीवन की वास्तविकता उनके सामने नाच रही थी। एक ओर नारी का द्वन्द—दूसरी ओर संसार की असारता कसकर उन्हें पकड़े हुए थी। बेचारा मन्त्री आज हिल भी नहीं सकता था। उसे कवि से ईर्षा हो रही थी। उसके स्वतन्त्र जीवन से मन्त्री अपने को तोल रहा था। रानी कहती है कि प्रजा पालन में भी धर्म है। असारता संसार में नहीं अपितु अज्ञानता में है। मुझे दोनों बातें ठीक ज्ञात होती हैं। दोनों जीवन का आनन्द लेना चाहता हूँ। परन्तु रानी के बन्धन इतने कड़े हैं कि एक क्षण को भी मुक्ति नहीं देते। एक दिन ऐसा आयेगा जब प्राण पखेरू सभी सांसारिक बंधनों को तोड़कर निकल जायँगे और शरीर अकेला रह जायगा। तब न रानी रोक सकेगी और न तब समाज और दया तथा उपकार के बन्धन ही कुछ कर सकेंगे लोग। कहते हैं कि कर्मों का फल उस जन्म में मिल जायगा। किन्तु कोई देखने नहीं गया है। सब का आधार

कल्पना ही है। इसी के सहारे तर्क से मनुष्य अपनी बात की पुष्टि करके चलने का प्रयास करता है। तब फिर क्यों न मैं भी अपने तर्क से चलूँ। मुझे मेरा मन एक बार जङ्गलों की धूल छानने के लिये उत्साहित करता है। रानी निरुत्साह कर देती है। विक्रमसाहदेव का मन्त्री कभी राजा के कामों से छुट्टी नहीं पा सकता। उसे जीवन भर पिसते ही रहना होगा। गतिशील संसार में सोचने के लिये सब को समय मिलता है किन्तु मैं यदि एक घन्टे भी अपनी दार्शनिकता में उलझ जाऊँ तो कितने दिनों का वेतन कई दिन के लिये रुक जाय। कुछ भी ठिकाना नहीं है। सामने हस्ताक्षर करने के लिये काग़ज़ों का ढेर लगा हुआ है। लेखनी मेरे हाथ में है। चाहे जो लिख दूँ। उनके भाग्य का निपटारा हो जाय। किन्तु बिना कुछ समझे-बूझे मेरे ही हाथ काँप उठते हैं।

यही स्थान है जहाँ विक्रम साहदेव की मृत्यु हो चुकी है। इतना बड़ा राज्य उन्हें सुख न पहुँचा सका। उनके अन्त की घड़ियाँ दो दिन भी आगे न बढ़ सकीं। हम लोग अन्तिम दर्शन भी न कर सके। पुजारी की आज्ञा से शव का अन्तिम संस्कार हो गया। धार्मिक कार्यों का संचालन करने वाला पुजारी ही था। किन्तु मुझे न तब पुजारी पर विश्वास था और न अब ही है। विक्रम जी को न जाने कैसे अपार श्रद्धा हो गई थी। सम्भवतः रानी तारा ही इसका कारण रही हो। परन्तु रानी अत्यन्त चतुर है। उसने पुजारी पर बिना किसी प्रकार की परीक्षा लिये, विश्वास कैसे कर लिया। पुजारी को उन स्थलों पर भी जाने की स्वतन्त्रता थी जहाँ मन्त्री भी नहीं जा सकते थे। राजा की मृत्यु कैसे हुई ? आज मुझे यह भी एक पहेली-सी ज्ञात होती है। मित्र साहदेव ने कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया। उनसे बढ़कर दान देने वालों की गणना नहीं हो सकती किन्तु अचानक वे मरे तो कैसे ? किसी वस्तु का कारण अवश्य होता

है। बिना कारण के कार्य होना स्वाभाविक नहीं है। राजा को ज्वर भी नहीं आया और वे चल बसे? यह नहीं हो सकता। मन्त्री देश-राज इस बात को बिल्कुल इस तरह नहीं मान सकता। पुजारी का जाल मुझे साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है। वह मुझसे भागता है। सदैव मुझसे दूर ही रहना चाहता था। जब उसे ज्ञात हो गया कि मैं मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाना चाहता हूँ तब वह मेरे समक्ष एक क्षण भी रुकना नहीं चाहता। अपमान और सम्मान उसे खटकता है। मैंने उसका अपमान कैसे किया? सत्य कह देने पर वह अपमानित हो रहा है। त्रुटि करके भी उसे त्रुटि नहीं मानता। तब भी मैंने उसे क्षमा कर दिया। मैंने अपने नियम उसके समक्ष उलट दिये और वह उसका बदला इस प्रकार देना चाहता है। रात्रि में मन्दिर का भार बिना सौंपे हुए चले जाना धृष्टता नहीं तो और क्या है? यह कवि की दया थी कि पुजारी मेरे चंगुल में फिर आ गया। वह भाग चुका था। परन्तु उसका दुर्भाग्य लोहों के सीखचों में बन्द करने के लिये फिर खींच लाया। भविष्य कौतूहलपूर्ण दृष्टिगोचर होता है।

"जयगढ़ का राजदूत बाहर खड़ा है—" सिपाही ने सूचना दी।

"भीतर भेज दो।"

हाथ जोड़कर सिपाही चला गया और दूसरे ही क्षण दूत के साथ ही उपस्थित हुआ।

"जयगढ़ का क्या समाचार है?" मन्त्री ने कहा।

दूत ने राजनियम के अनुसार प्रणाम करते हुए कहा—कोई नवीन समाचार नहीं। केवल महारानी का पत्र लेकर ही उपस्थित हुआ हूँ। यह लीजिये।" कहकर उसने पत्र बढ़ा दिया।

"सिपाही। दूत को सत्कार गृह में पहुँचा दो। किसी प्रकार का

कष्ट न हो। राजदूत का भोजन मेरे साथ होगा।" मन्त्री ने आज्ञा दी।

"आज्ञा शिरोधार्य है।" सिपाही ने कहा।

दोनों बाहर चले आए। दूत सत्कार-गृह की ओर चला गया और सिपाही अपने पहरे पर।

राजमन्त्री देशराज ने बड़ी उत्सुकता के साथ पत्र खोला। वे पढ़ने लगे। पत्र बड़ा लम्बा था। पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी मुस्कराहट छा जाती थी किन्तु कभी गम्भीरता भी दिखाई पड़ती थी। कभी वे पत्र में कुछ ढूढ़ते से ज्ञात होते। कभी पढ़ कर उसे फिर दुहराते थे। इस प्रकार पत्र ने अनायास ही एक घन्टे से अधिक समय ले लिया। उन्होंने पत्र को फिर उसी प्रकार मोड़-कर रख दिया। वे सोचने लगे—महारानी तारा भी मन्दिर का जीर्णोद्धार नहीं करवाना चाहतीं। महाराज भी मन्दिर से प्रेम अवश्य करते थे किन्तु उसकी ईंटों से प्रेम न था। पुजारी कहता था कि उनके समय से ही मन्दिर का पतन प्रारम्भ हो गया था किन्तु उन्होंने इसके बनवाने पर तनिक भी ध्यान न दिया। रानी का भी आदेश राजा से मिलता-जुलता है। पितामहों के समय के भग्नावशेष! तुझमें कौन-सा रहस्य छिपा है? पुरानी ईंटें सभी को इतनी अच्छी लगती हैं? रानी की आज्ञा का उलंघन भी ठीक नहीं। किन्तु मैं अपने विचारों को एक बार ही कैसे रोक दूँ। मैं एक नये मन्दिर बनवाने का प्रयास अपने व्यक्तिगत धन से करूँगा। रानी को उससे कोई आपत्ति न होगी। यदि रानी इस बारे मे मेरे कार्य में रोड़ा अटकाएगी तब मैं नौकरी छोड़ दूँगा। रानी की एक नहीं सुनूँगा। जगन्नाथ जी में एक मेरा मन्दिर अवश्य बनेगा। आज तक ईंटों आदि में जितना व्यय हुआ है वह सब मेरे व्यक्तिगत व्यय में चला जायगा। मैं राजकोष

को उतना धन लौटा दूँगा। कुछ दिन और राज्य की सेवा करने के पश्चात् मृत्यु के निकट के दिनों मे इसी नये मन्दिर की मूर्तियों की उपासना करता हुआ एक दिन यमलोक का रास्ता दिखाने वाले दूतों का स्वागत करूँगा। किन्तु तब मन्दिर का क्या होगा तब उसकी देखभाल कौन करेगा। मेरे पास इतना धन भी नहीं है कि मृत्यु के पश्चात् का प्रबन्ध करता जाऊँ। परन्तु यह सोचना ही मेरी भूल है। मैं केवल अपने जीवन भर के लिये ही उत्तर-दायी हूँ। मृत्यु के बाद आत्मा कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं रहता। वह कार्य तभी तक कर सकता है जब तक किसी शरीर से उसका सम्बन्ध हो।

दृष्टि घूमते ही मन्त्री ने देखा कि सिपाही बड़ी देर से खड़ा है।

"क्या है सन्तरी ?"

"पुजारी ने भूख हड़ताल कर दी है। भोजन लेने से इन्कार करता है।"

"उसे सामान दे दिया जाय। पुजारी पर केवल नियन्त्रण रक्खा जाय। उसे बाहर न जाने दिया जाय। इसके अतिरिक्त वह चाहे जो कुछ करे उसे स्वतन्त्रता है।"

"किन्तु वह रो रहा है।"

"रोने से उसे मुक्त किया नहीं जा सकता! इसी प्रकार रो-रो कर सभी छुटकारा ले सकते हैं।"

"महामन्त्री, आज्ञा हो ?"

"बोलो, आज्ञा है।"

"पुजारी छोड़ दिया जाय।"

"यह असम्भव है।"

"वह अनशन से प्राण दे देगा।"

"अनशन के डर से अन्याय नहीं किया जा सकता।"

"उसका अपराध ?"

"वह तुम्हें जानने की आवश्यकता नहीं। एक समाचार अवश्य पुजारी को दे दो कि उसके मन्दिर का उद्धार नहीं होगा। महामन्त्री एक अपना मन्दिर बनवाने का आयोजन कर रहे हैं।"

"यह सूचना क्या उसके सुख का कारण बन सकेगी।"

"अवश्य ! पुजारी चाहता था कि मन्दिर का जीर्णोद्धार न हो। उसे उसकी गिरती हुई ईंटों से भा प्रेम है। अपने टूटे-फूटे मन्दिर पर ही उसको विशेष आस्था है। पुजारी क्षमा मांगने पर छोड़ भी दिया जा सकता है। उसे मन्दिर की पूजा का भार फिर से सौंपा जा सकता है। उसे भली प्रकार समझा दो। यदि वह क्षमा भी न माँगे तो केवल उसे एक रहस्य विशेष का उद्‌घाटन करना होगा जो केवल वही जानता है। उस रहस्य के प्रकट हो जाने पर मैं पुजारी को मुक्त कर सकता हूँ।"

"आशा है पुजारी इस बात पर अवश्य मान जायगा।"

"जाओ। उसे समझा दो।"

सन्तरी चला गया। राजमन्त्री काग़ज़ों के निरीक्षण करने में लग गये।

थोड़ी देर बाद भण्डारी ने सूचना दी—भोजन का समय हो गया।

"अभी नहीं" मन्त्री ने कह दिया।

"महाराज स्नान" दास ने सूचना दी।

"अभी नहीं।"

"पूजा का समय बीता जा रहा है।" पुरोहित ने कहा।

"मैं भी पूजा कर रहा हूँ। यह वह पूजा है जिसकी दया से

परसों सम्पूर्ण राज्य के दास तथा सेवकों को वेतन मिलेगा मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं जायगा।"

दासों में अनेक प्रकार की चर्चा प्रारम्भ हो गई। एक दास ने वैद्यराज को सूचना दी। वे उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—महामंत्री! नियम का व्याज्य ठीक नहीं। अस्वस्थ होने पर आप कुछ भो न कर सकेंगे। आप का शरीर इस प्रकार का व्यतिक्रम सहने का अभ्यासी नहीं है।

एक पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए मन्त्री ने कहा—"अधिक नहीं, बस, एक घण्टे का समय और चाहिये।

"रात्रि को निद्रा असम्भव हो जायगी।

किन्तु परसों राज कर्मचारी वेतन पाकर सुख से सो सकेंगे। तब मुझे कोई गालियाँ न सुनाएगा।"

"नियम का पालन सरल नहीं है?" वैध जी कहते हुए लौट गये।

× × × ×

"पुजारी को कोई बात स्वीकार नहीं है?" महामन्त्री ने सीकचों की ओर कड़ी दृष्टि फेकते हुए पूछा।

"मन्त्री! मैं नहीं जानता। मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है। विश्वास-घात महान पाप है। मुझ पर यह अभियोग?" पुजारी ने कहा।

"एक दिन सिद्ध हो जायगा।" मन्त्री ने कहा।

"अब जीवन से घृणा है?"

"किन्तु जाना पड़ेगा।"

"क्यों।"

"न्याय सुनने के लिये। जिसे तुम आज नहीं जानते उसी का ज्ञान कराने के लिये उस दिन तुम्हारी आवश्यकता पड़ेगी।

"जीवन से घृणा हो गई है।"

"होनी ही चाहिये। अपने कृत्यों का प्रत्येक व्यक्ति उत्तर दायी है। कर्म के बन्धनों से मुक्त होना सरल नहीं है।"

"जानता हूँ मन्त्री!"

"फिर जीवन से घृणा क्यों? तुम्हारे पाप में यही सब बातें सहयोग दे रही हैं।"

"किन्तु कह चुका कि मैं कुछ नहीं जानता?"

"यह सत्य नहीं है। कवि कौन था? कहाँ रहता है? उसके विषय में क्या जानते हो?"

"कवि कभी-कभो मेरे मन्दिर में आता था। वह नगर से दूर रहता है। नगर में कभी रात्रि व्यतीत नहीं करता है। यही कारण है कि मन्दिर में आकर पूजा और भजन के पश्चात् कभी-कभी सो जाता था। धीरे-धीरे जान-पहिचान बढ़ गई।"

"वह कहाँ का निवासी है?"

"मुझे ज्ञात नहीं। माँग कर खाता है। कहीं भी सो रहता है। अधिकतर उसके दिन जंगल में ही कटते हैं। वह देशाटन करता रहता है।"

"उसका ध्येय क्या है?"

"यह मैं नहीं जानता। कभी-कभी कुछ प्रश्न विशेष की बात करता है।"

"वे प्रश्न कौन-कौन से हैं?"

"जीवन-मरण, दया-धर्म, नियम संयम, रूप और ईश्वर, माया और सत्य आदि पर ही वह विवेचना करता है।"

"तब उसे लोग कवि क्यों कहते हैं?"

"कविता भी करता है।" तपस्या भी करता है।"

"तपस्वी भी है?"

"बाल्यकाल से ही उसने अपने शरीर को तपस्या की आँच में झुलस डाला है। वह महान् है।"

"परन्तु राज-नियम और शिष्टता उसे नहीं ज्ञात है।"

"उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं है। वह किसी भी बन्धन से घबड़ाता है। आप उसे सभ्यता और शिष्टता के बन्धनों में बाँधकर पूजा नहीं करवा सकते थे। वह अभय है, निडर है।"

"मैं उससे मिलना चाहता हूँ।"

पुजारी कायर हो उठा। उसका माथा घूम गया। वह काँप उठा। अब तक वह सीकचों के सहारे अपने को छोड़े हुए थे। अब तनकर खड़ा हो गया। उसकी आखे लाल हो गईं। वह कवि से अपने जीवन का भेद खोल चुका है। कवि कभी झूठ नहीं कह सकता। वह राजमन्त्री से सब कुछ कह देगा। विकट समस्या है। अभी तक इस रहस्य को रानी ही जानती थी। अब कवि भी जान गया। राजमन्त्री के न्याय के आगे उसे हार माननी ही पड़ेगी। उसका समय निकट आ गया है। मृत्यु के यमदूत उसे लेने के लिये आ ही रहे हैं। उसे संसार की कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती है।

"पुजारी! मैं कुछ कह रहा हूँ।" मन्त्री ने कड़ी आवाज से कहा।

"कहिये श्रीमान्।"

"मैं कवि से मिलना चाहता हूँ।"

"मुझे उसका पता अज्ञात है।"

कवि का कोई भी अनिष्ट न होगा। तुम्हें इसका विश्वास दिलाए देता हूँ।"

सत्य कह रहा हूँ मन्त्रिराज! मैं नहीं जानता।"

"तुम्हें कवि का पता बताने पर उससे भेट हो जाने पर मुक्त कर सकता हूँ।"

"मैं अब मुक्ति भी नहीं चाहता। बन्धन अधिक श्रेयस्कर है। किन्तु यदि कवि से मिलने की प्रबल इच्छा है तो वह महानदी के जंगलों में, हिमालय पहाड़ पर अथवा कभी न कभी इस जीर्ण-शीर्ण मन्दिर में अवश्य मिल जायगा।"

"तब मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।"

"कह चुका—मृत्यु चाहता हूँ। मुक्ति नहीं।"

"मुक्ति कौन दे सकता है ? मैं कारागार-मुक्त करूँगा।" कहता हुआ मन्त्री चला गया।

—————

११

सैनीटोरियम पहुँचते ही से पाण्डेय की स्मृति ओ३म् जी को विह्वल करने लगी। वे प्रत्येक समय छुट्टियाँ बीत जाने की ही बातें सोचा करती थीं। दो दिन शेष रहने पर पाण्डेय अवश्य आवेंगे। विरह प्रेम को कुन्दन बना देता है। ओ३म् का क्षणिक विरह भी उसे जलाए डाल रहा था। पिता की डाक पहले वही देखती थीं। सम्भवतः पाण्डेय जी की भी कोई चिट्ठी आ जाय। उसने सैनीटोरियम पहुँचते ही चिट्ठी लिख दी है। किन्तु उसके पहुँचते और प्राप्त होते हुए भी कुछ समय लगेगा। इस ओर उसका ध्यान न गया।

वह अपने कमरे में बैठी हुई 'चित्रलेखा' के पन्ने व्यर्थ ही में उलट रही थी। मन लगता न था। किताब इसलिये हाथ में थी कि पाण्डेय जी ने इसे भेंट किया था। सहसा डा० भाटिया ने प्रवेश किया। किताब छोड़कर उठती हुई ओ३म् ने पिता की ओर कुर्सी खिसकाते हुए कहा—क्या है पिता जी ?

"पढ़ रही थी क्या ? देखो इतना मत पढ़ो कि स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव पड़ने लगे। जानती हो वर्ड्सवर्थ क्या कहता है ?"

यद्यपि ओ३म् वर्ड्सवर्थ और उसकी कविताओं से भली प्रकार परिचित थी और वह कविता जिसे उसके पिता कहने वाले थे,

भी जानती थी किन्तु पिता को प्रसन्न करने के लिये कौतूहलपूर्वक उसने कहा—

"नहीं पिता जी, मैं नहीं जानती ?"

"तब तुमने कुछ नहीं पढ़ा। मेरा सारा धन बेकार गया।"

"एक पंक्ति कहिये ? कौन जाने मैं भी जानती ही हूँ।"

"अरे वहीं, अप अप, माई फ्रेन्ड·····।"

"याद है।"

"तब फिर, स्वास्थ्य का महत्व जानती हो न ?"

ओ३म् चुप रह गई। उसने केवल सिर हिला दिया।

"बेटी! एक विशेष सूचना तुझे देने आया हूँ। मैं कुछ विशेष कार्यों से नगर की ओर जा रहा हूँ। कई दिन बाद लौटूँगा। तब तक तुम कुछ सदैव की भाँति हमारे कार्यों पर भी दृष्टि रखना। यदि कोई नया मरीज़ आ जाय तो उसे दक्षिण वाले क्वार्टर में प्रवन्ध करवाना। नौकरों की हाज़िरी और उनसे छोटे-मोटे बगीचे के काम लेना अधिक अच्छा होगा। हाँ देखना, रमणी बाबू को कोई कष्ट न होने पावे। उनका जी बहुत घबड़ाता है। यदि समय मिले तो उनके पास भी बैठना। बड़े अच्छे और उच्च विचारों के भावुक व्यक्ति हैं। कम्पाउन्डर से प्रातः ही उनकी पट्टियाँ बदलवा देना। इत्यादि इत्यादि।"

डाक्टर ऐसा कह रहे थे कि मालूम होता था कि उनका कोई विशेष मन्तव्य ही न रहा हो। वे केवल अपने इने-गिने कामों की तालिका की भूमिका ही बाँध रहे हों। उन्हें नहीं ज्ञात था कि उनकी दस वर्षीया ओ३म् आज यौवन के शिखर पर चढ़ी किसी विशेष अदृश्य की ओर टकटकी लगाये देख रही है। पिता अपने कर्तव्य की छाँह में आराम से सोना चाहता है। उसे इस वातावरण से कोई प्रयोजन नहीं।

ओ३म् ने खिड़की के बाहर झाँकते हुए कहा—आप शान्ति-पूर्वक जायँ। मैं सब देख लूँगी।

दूसरे दिन डाक्टर साहब 'सैनीटोरियम' छोड़कर यात्रा के लिये चल पड़े।

ओ३म् जी प्रातःकाल पिता द्वारा निर्देशित कार्यों के करने के लिए घर से बाहर निकल आईं। नियमित कार्यों को समाप्त करने के पश्चात् उनका अन्तिम कार्य रमणी बाबू को देखना था। यद्यपि उन्हें रमणी बाबू के पास जाते हुए एक उलझन का आभास हो रहा था यद्यपि पिता की आज्ञा का विचार आते ही कम्पाउन्डर के साथ उन्होंने कमरे में प्रवेश किया।

रमणी बाबू बिस्तर पर लेटे हुए एक मासिक पत्रिका की कहानी पढ़ रहे थे। कम्पाउन्डर के आते ही उन्होंने कहा—आइये! कम्पाउन्डर साहब!

कम्पाउन्डर ने पास की कुर्सी खींचकर ओ३म् जी को बिठाते हुए कहा—आप डाक्टर साहब की लड़की ओ३म् हैं। प्रयाग विश्व-विद्यालय में आप एम० ए० की छात्र हैं। और आप हमारे मित्र रमणी बाबू हैं जिनके विषय में मोटर में मैं आपसे बता चुका हूँ।

ओ३म् ने कहा—धन्यवाद!

रमणी बाबू ने भी करवट बदलते हुए 'धन्यवाद' शब्द को सभ्यता के नाते दुहरा ही दिया। यद्यपि उनको ऐसी सभ्यता सदैव खलती ही आई है।

कम्पाउन्डर ने रमणी बाबू के सिरहाने की तकिया हटाकर अपनी जाँघ पर उनका सिर रखकर पट्टियाँ खोलनी प्रारम्भ कर दीं। थोड़ी देर में घाव खुल गये। कम्पाउन्डर घाव धोने लगा।

अचानक एक स्थान पर उसे कुछ पीव मालूम हुआ। उसने घाव दबा दिया। पीव का फौआरा छूट पड़ा। मरीज़ चिल्ला उठा। ओ३म् को कम्पाउन्डर ने संकेत किया। संकेत के साथ ही ओ३म् जी ने कसकर दोनों हाथ मरीज़ के दबा दिये। चीख़ और भयानक हो गई। कम्पाउन्डर पुरानी बत्ती निकालकर नई बत्ती गड़ाने लगा। ओ३म् ने अपना मुँह और आँखें कसकर बन्द कर लीं। दोनों हाथों पर बल और अधिक आ गया। कम्पाउन्डर बड़ा अभ्यासी था। शीघ्र ही बत्ती चली गई। दवा ऊपर से तर होने लगी। थोड़ी देर में ही सब काम समाप्त हो गया। पट्टियाँ बँध गईं। किन्तु रमणी बाबू का चीखना-चिल्लाना अभी समाप्त न हुआ। पंखे लेकर कम्पाउन्डर दोनों हाथों से हाँकने लगा। ओ३म् जी ने एक पंखा कम्पाउन्डर से ले लिया। वे भी जल्दी-जल्दी हवा करने लगीं।

जब कुछ देर हो चुकी तब कम्पाउन्डर उठकर चला गया। ओ३म् ने निकट की कुर्सी खींच ली और उस पर बैठ गईं। रमणी बाबू को अब उतनी पीड़ा न थी। इसलिये वे पंखा पकड़कर कहने लगे—आप अब रहने दीजिये।

"बैठी हूँ। पंखा ही हाँक दूँ। पंखा हाँकना कोई बुरा नहीं है।"

"किन्तु अब आप न हाँके। मेरा दर्द शान्त हो गया। पसीना भी सूख चला है। रहने दीजिये। आप के हाथ भी मशीन थोड़े ही हैं। अगर मैं हाँकता तब मेरे हाथ अवश्य दर्द करने लगते।"

"अभी मेरे हाथ नहीं थके। फिर आप ऐसे सज्जन व्यक्ति को पंखा हाँकने का अवसर भी बार-बार नहीं आयेगा। कुछ ही दिनों में सैनिटोरियम छोड़कर आप चले जायँगे। फिर आप ऐसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हो जायँगे। पिताजी कहते थे कि ऐसे उच्च आदर्श-वादी तथा परोपकारी व्यक्ति संसार में बहुत कम मिलेंगे। कम से

कम आप ऐसा मित्र मिलना असम्भव है। पहली बार जब मैं प्रयाग जाने लगी थी तब आप भी मेरी मोटर तक आए थे। किन्तु उस समय मुझे आप से डर मालूम हो रहा था...।"

"और आज आप से मुझको डर मालूम हो रहा है। आपने अपने मुलायम हाथों में प्रलय को शक्ति लाकर इस प्रकार मुझे दबा दिया कि सर के दुःख से कम किन्तु आप के भार से अधिक पीड़ित था। इन मुलायम हाथों में इतनी शक्ति.........इसकी कल्पना भी मैंने नहीं की थी।"

ओ३म् जी शरमा गईं। उन्होंने सर नीचा करते हुए कहा—तब वैसी आवश्यकता ही थी। डाक्टर कभी किसी के ऊपर दया करके उसे आराम नहीं पहुँचा सकता। उसकी चीर फाड़ ही सुखद होती है। आज आप को दुःख है। कल जब आप अच्छे हो जायँगे तब सुख ही सुख रहेगा। तब हम लोगों की याद भी न आयेगी।

"विपत्ति के साथी कभी भूले नहीं जा सकते। आपके पिता ने मेरी जितनी सहायता की है उसका बदला मैं किसी प्रकार नहीं दे सकता।"

"सभ्यता कहने का माध्यम है। डाक्टर साहब किसी की दवा मुफ़्त में नहीं करते। अच्छा करना उनका कर्तव्य है। यदि वे किसी को अच्छा न कर सके तो फिर उनके पास कौन आवेगा। डाक्टर की रोटी इसी पर चलती है। यह उनका व्यवसाय है।"

"इस व्यवसाय के पीछे ही जनता का लाभ है। सिगरेट और बीड़ी का भी व्यवसाय है। किन्तु उस व्यवसाय से लोगों का अहित होता है। किन्तु डाक्टर। वह सदैव पूजनीय है। आप के पिताजी कोई साधारण डाक्टर भी नहीं। वे मनुष्य पहचानते हैं। जब तक किसी को भली प्रकार नहीं जान लेते तब तक उस पर विश्वास भी नहीं करते। मुझी पर मेरी बहन की मृत्यु पर भी वे सन्देह कर

बैठे। उन्होंने कहा कि यदि मैंने ही जहर दे दिया हो तो? मैं शीघ्र ही बहन से छुट्टी लेना चाहता होऊँ तो.........। किन्तु मैंने उचित प्रमाण उपस्थित किये, वे मान गये। मुझे अब भी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है कि मुझ पर उनका विश्वास है अथवा यों ही केवल दया के ही सहारे मैं पड़ा हुआ हूँ।

"सरोजिनी बड़ी अच्छी थी। ईश्वर न जाने क्यों अच्छे व्यक्तियों को शीघ्र ही बटोर लेता है। उन्हें पनपने का अवकाश ही नहीं देता।"

"ईश्वर को मैं बहन की मृत्यु के पहले नहीं मानता था किन्तु अब कुछ विश्वास-सा होने लगा है।"

"आप ईश्वर को नहीं मानते? आप नास्तिक हैं?"

"यह बात नहीं है। ईश्वर को मानने और न मानने में अन्तर ही क्या है? उसको यदि माने तो लाभ ही क्या है? मृग-तृष्णा की तरह एक सहारा—जिसके विषय में हम कुछ भी नहीं जानते। मेरी बहन ने कौन ऐसा अपराध किया था जिसके फलस्वरूप अल्पायु में ही संसार छोड़ना पड़ा।"

"कर्मबन्धन जान लेना सरल नहीं है। कोई न कोई अपराध अवश्य बन पड़ा होगा। ईश्वर कभी भी अन्याय नहीं कर सकता। समझ लीजिये कि ईश्वर नहीं है। तब भी ऐसा क्यों हो सकेगा? तर्क संयत भी नहीं ज्ञात होता है।"

"यही कारण है कि मुझे भी ईश्वर में विश्वास होने-सा लगा है।"

"किन्तु पूर्ण रूप से नहीं?"

"एक दिन होगा कि बात हृदय को माननी पड़ेगी।"

"रमणी बाबू! आप विवाहित हैं अथवा.........।"

"आपका तात्पर्य ?"

"ऐसे ही पूछ लिया।"

"मैं अविवाहित ही हूँ।"

"इसका कोई विशेष कारण है क्या ?"

"कारण कोई नहीं है। और बहुत से कारण हैं। वास्तविकता यह है कि कोई सम विचारों का व्यक्ति ही नहीं मिला। अपने और अपने साथी में मैं विचार वैभिन्य नहीं चाहता। पारिवारिक झगड़े का मूल कारण अनमेल विवाह है। भारत की अर्वाचीन विवाह पद्धति का मैं पक्षपाती भी नहीं हूँ। समाज, धर्म, और संस्कृति के नियम इतने जटिल हैं कि मुझे उनमें विशेष आस्था नहीं रह गई है।"

"आप इतने निराश हो गये हैं ? प्रगतिशील संसार से आप आशा रखिये। इतनी निराशा की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"निराश नहीं हूँ। किन्तु आप के प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ। यद्यपि मुझे प्रगतिशील संसार से भी आशा नहीं है तब भी संसार में इतना अधिक काम मनुष्य के लिए पड़ा है कि उसी में वह अपने को भुलाए रख सकता है। उसे सहारा न भी मिला तब भी वह जीवन के दिन काट सकता है। उसे किसी इच्छित वस्तु की आवश्यकता न पड़ेगी यदि वह अपने को व्यस्तता में खोदे।"

"तब नारी का अस्तित्व क्या है ? पुरुष जब बिना नारी के रह सकता है तब नारी ही क्यों पुरुष के चरणों में अपने को समर्पित करे। अबला समझकर पुरुष को उन पर दया करनी चाहिये परन्तु उन पर घोर अत्याचार करता है।"

"पुरुष कभी नारी के ऊपर अत्याचार नहीं करता। वह सदैव सोचा करता है कि नारी को किस प्रकार सुख पहुँचाएँ। वह अपने जीवन की आहुति दे देता है केवल नारी के लिये। नारी का बन्धन

सहज नहीं है। रही मेरे विषय की बात। वह मैं भाग्यहीन हूँ। मुझे कोई मेरे मन का साथी मिलता ही नहीं।"

"पुरुष नारी को यदि सुख देने की बात भी सोचता है तो केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये ही ऐसा करता है। वह अपनी प्रवृत्ति का गुलाम है। यदि वह इस बन्धन से मुक्त हो जाय तब वह सदैव स्त्री की उपेक्षा करता चले। जब वह स्त्री के सामने झुकता है तब वह दुर्बल है। महात्मा बुद्ध अपने जीवन के सुनहले स्वप्नों के प्रभात ही में गोपा की अँधेरी रात में निरपराध छोड़कर चले गये। गोपा जान भी न सकी। उसकी सहेलियाँ और घर के अन्य व्यक्ति उसे ही गौतम के अदृश्य का कारण समझने लगे। क्या यह गौतम का न्याय था? उनका यह अत्याचार स्त्री समाज को दुतकार रहा है। यदि उन्हें अपने बाल्य-काल के ही भावों में विभोर हो जाना था तो विवाह हो करने की क्या आवश्यकता थी। गोपा ने गौतम के चरणों में मस्तक रखकर विवाह की इच्छा नहीं प्रकट की थी? प्यारी यशोधरा को अपने गृह की रानी बनाकर, राहुल को जन्म देकर वन की ओर आगमन किस बात की ओर पुष्टिकारी संकेत करता है? अपने लिये न सही, मनुष्य दूसरे के लिये जीने का प्रयास करता है। यदि बन्धन मनुष्य के लिये बन्धन हैं तो वह उनमें स्वयं आकर क्यों फँसता है? यदि वह चाहे तो स्वयं उन्मुक्त पक्षी की तरह विहार कर सकता है उसे रोकता कौन है।"

"मनुष्य स्वार्थी होकर जब कोई बात करता है तब वह पक्षपात-रहित नहीं हो सकता। महात्मा बुद्ध गोपा को कितना प्यार करते थे। आप इसकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं। प्यार का बन्धन ही इतना कड़ा था जिसमें गौतम विवाह के पश्चात् भी इतने दिनों तक रुके रहे। अन्यथा वे बन को बहुत पहले ही चले गये होते। अज्ञान

की धज्जियाँ उड़ा देने वाली ठोकर उन्हें अपनी गोपा के सौन्दर्य द्वारा ही लगी थी। वे सोंचने लगे थे कि एक दिन यशोधरा का यौवन भी नष्ट हो जायगा। आज जिन हाथों में कसी हुई चूड़ियाँ है वहाँ खिंची हुई सूखी खाल हो जायगी। सौन्दर्य की देवी यशोधरा को भी बुढ़ापा नष्ट कर देगा। क्यों न मैं कोई ऐसा प्रयास करूँ जिससे गोपा का यौवन अमर हो जाय। उसे शरीर से ही नहीं अपितु जन्म-मरण के बन्धन से भी मुक्त होना चाहिये। यदि पुरुष में वास्तव में बल है तो वह नारी के स्वर्ग का भी जिम्मेदार है। पुरुष ने नारी का हाथ इस संसार में पकड़ा है। क्या ही सुन्दर हो कि वह उस संसार में भी उसे सुख और शान्ति प्रदान करवा सके। गौतम के नाम पर इस प्रकार बट्टा नहीं लगाया जा सकता। रात में छोड़कर जाना ही उनके लिये श्रेयस्कर था। वे जानते थे कि गोपा उन्हें सरलता के साथ क्षणिक मोह से प्रभावित होकर जाने नहीं देगी। वह स्वयं चलने को तैयार होगी। सीता के कारण ही राम को अनेक कष्ट सहन करने पड़े। गोपा किस प्रकार बन में तपस्या कर सकेगी ? आदि प्रश्नों ने बुद्ध को अकेले ही जाने पर आवद्ध किया था। वह चला गया और उसने संसार को मुक्ति की कुन्जी बता दी। वह यशोधरा को मुक्त करने आया। मुझे तो ऐसा भान होता हैं कि बुद्ध के प्रताप से यशोधरा केवल मुक्ति ही नहीं पा सकी अपितु अमर हो गई। बुद्ध के ही प्रताप के कारण यशोधरा आप की जिह्वा पर विराजमान है। किसी वस्तु को तौलने के लिये व्यापाक दृष्टि कोण की आवश्यकता है। जितनी बारीक वस्तु होगी तराजू उतना ही अच्छा रखना होगा। अन्यथा हम ठीक-ठीक तौल नहीं सकते।"

"सब ठीक है। आप अधिक न बोलें अन्यथा मस्तक में पीड़ा होने लगेगी। मैं बात-चीत से आप का मन बहलाना चाहती थी

किन्तु देखती हूँ कि आप समाधान पर आ गये हैं। जाने दीजिये। आप ठीक कह रहे थे।"

रमणी बाबू ने कहा—ऐसे प्रश्न मेरे लिये नये नहीं हैं। सरोजिनी की तार्किक शैली और भी मनोहर थी। वह बड़े विकट प्रश्न करती थी। कभी-कभी मैं उसका उत्तर भी न दे पाता था। कमज़ोरियाँ हर एक में होती हैं। वह चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष। किसी में कम होती हैं किसी में अधिक। यही अन्तर है।

तब तक चाय आ गई थी। ओ३म् जी ने ट्रे से दो 'कप' चाय बनाई और उसमें से एक प्याला आगे बढ़ाते हुए कहा—लीजिये न ? चाय ठन्डी हो रही है। किसी नये प्रश्न में उलझने का प्रयास मत कीजिये।

रमणी बाबू तकिए के सहारे बैठ गये और ओ३म् के हाथों से कप लेते हुए बोले—जीवन कितनी बड़ी पहेली है ?

"ऐसी पहेली जिसे मनुष्य जीवन भर सुलझाता है।" ओ३म् ने उत्तर दिया।

चाय समाप्त करने पर ओ३म् ने रमणी बाबू से छुट्टी ली और अन्य अपेक्षित कार्यों के लिये चल पड़ी। एक-दो नये बीमार आए थे उनका प्रवेश रजिष्टर में किया। उन्हें रहने का स्थान निर्देशित किया गया। अन्य कार्यों की समाप्ति पर ओ३म् जी अपनी माता जी के पास पहुँचीं।

माँ ने अपनी प्यारी पुत्री को देखते ही कहा—बेटी ! सब काम हो गया ? रमणी बाबू की पट्टियाँ बदल दी गईं।

"हाँ, माँ, सब कुछ हो गया। मेरे सामने ही उनकी पट्टियाँ बदली गई हैं। मैं कुछ देर तक वहाँ बैठी भी थी।" ओ३म् ने उत्तर दिया।

माँ आकर पुत्री के निकट बैठती हुई बोली—रमणी बाबू कैसे आदमी मालूस होते हैं ?

"अच्छे ही हैं। किसी सभ्य घराने के व्यक्ति हैं। मुसीबत के मारे हैं। विद्वान भी काफ़ी मालूम होते हैं।"

'तुमने यह कैसे जाना ?"

"कुछ देर तक बात-चीत होती रही। बड़े तार्किक मालूम होते हैं। उनका तर्क सरल नहीं है। किसी प्रश्न का उत्तर इतने मार्मिक ढङ्ग से देते हैं कि फिर प्रश्न करना ही नहीं पड़ता। हार हो जाती है।"

"तो तुम्हें कुछ बुरे नहीं लगे। बड़े धनी घर के आदमी हैं। यदि तुम भी सहमत हो तब तुम्हारे पिता जी कुछ अन्य विषयों पर भी विचार करें। अब तुम सयानी हो गई हो बेटी! इसलिये छुट्टियों में तुम्हें बुलाया गया था।"

"क्या कह रही हो माँ !" ओ३म् का चेहरा लज्जा और कौतूहल से भर गया। उसने सिमटते हुये कहा।

"वही कह रही हूँ जो हर एक माँ का कर्तव्य है। जिसके पूर्ण होने पर मनुष्य अपने सबसे बड़े भार से छुट्टी पा जाता है। अब तुम्हारे भार से हम लोग मुक्त हो जाना चाहते हैं। अवस्था का विधान यही है।" उसको माँ ने मुड़कर देखा—ओ३म् उठकर अपने कमरे में जा रही थी। माँ ने समझा कि उसे लज्जा आ गई है। कोई भी लड़की खुले हुये शब्दों में स्वीकृति थोड़े ही दे सकती है। यही होगा नहीं तो उठकर चली ही क्यों जाती। लज्जा से ही स्त्री की शोभा है। यदि लज्जा न हो तो स्त्री में पुरुष का सारा कौतूहल नष्ट हो जाय। कौतूहल द्वारा ही नारी पुरुष को आकर्षित करती है। जब तक मनुष्य किसी को भली प्रकार देख नहीं पाता तब तक बराबर देखने का प्रयास करता है। जब वह किसी नारी को देख लेता है

तब चाहे वह कितनी भी सुन्दर क्यों न हो, उसका कौतूहल नष्ट हो जाता है। परदे का प्रचार सम्भवतः इसीलिये हुआ होगा। यही कारण है कि लज्जा नारी का आभूषण माना गया है। बिना आभूषण के कोई वस्तु सुन्दर नहीं ज्ञात होती, परन्तु मेरी ओ३म् स्वयं कुन्दन है। बिना गहने के ही वह कितनी सुन्दर लगती है। विद्या ने उसकी सुन्दरता में चार-चाँद लगा दिये हैं। उसमें रूप अपने आप आ गया है। यौवन ने आकर रूप की पुष्टि की है।

ओ३म् की माता जी कल्पना में खोई हुई थीं कि भण्डारी ने उपस्थित होकर व्यवधान डाल दिया। उसने कहा—बिटिया भोजनालय में न जाने क्यों स्वयं ही तरकारियाँ भूनने पहुँच गई थीं। अचानक तेल की कड़ाही उलट गई। तेल पूरे शरीर पर आ गया। छाला पड़ गया है। अपने कमरे में पड़ी हैं।

"हाय! यह क्या हुआ? अभी यहाँ थी। कब चौके में पहुँच गई। भण्डारी! तुमने क्यों चौके में जाने दिया? तुम्हीं ने कहा होगा।" माँ ने बिगड़ते हुए कहा।

"नहीं, बहूरानी, मेरा कोई दोष नहीं। उन्होंने करछुल मेरे हाथ से छीन ली। कहने लगीं कि मैं तरकारी ठीक से नहीं भून पाता। मैं क्या उत्तर देता।"

"अच्छा कम्पाउन्डर से कह दे कि ड्रेसिङ्ग कर दे।" कहती हुई स्वयं बालिका के कमरे में पहुँच गई।

माँ ने बहुत डाटा। छोटी लड़की ने माँ का तमतमाया चेहरा देखकर बहन से चिपटकर रोना प्रारम्भ कर दिया। वास्तव में तेल आँचल ही पर उलटा था। हाथ पर दो-तीन छींटे ही आए थे जिन पर दवा लगा दी गई। सेकने से रही-सही जलन भी जाती रही।

जब सायंकाल चाय के समय ओ३म् जी न उपस्थित हुईं तब नौकर से रमणी बाबू ने अनुपस्थिति का कारण पूछा। नौकर ने ओ३म् जी के तेल से जलने की बात सुनाई। रमणी बाबू चाय का प्याला होठों से लगाते हुए भी रुक गये। हाथ काँप उठा। प्याला गिरकर पृथ्वी पर फूट गया। उन्होंने 'ट्रे' खिसका दी।

नौकर ने कहा—बाबू जी, दूसरा प्याल ?

रमणी बाबू—कोई आवश्यकता नहीं। जाकर ओ३म् जी से कहो कि बाबू उन्हें देखना चाहते हैं।

नौकर कहने के लिये कमरे से बाहर हुआ ही था कि ओ३म् ने प्रवेश करते हुये कहा—उपस्थित हूँ। कहिये, क्या आज्ञा है। कुछ दर्द बढ़ गया है क्या ? आपका चेहरा इसका प्रमाण दे रहा है।

"नहीं, नहीं, अभी मुझे मालूम हुआ कि आप गरम तेल से जल गई हैं। मेरे मन में आया कि मैं आपको देखूँ।"

"किन्तु आप कोई डाक्टर हैं नहीं ? लाभ ही क्या होता। देखना उसका ठीक है जो कुछ कर सके।" ओ३म् ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया।

डाक्टर बिना दवा के अच्छा नहीं करता किन्तु मैं स्वयं मरीज होते हुए भी बिना दवा के ही अच्छा करता हूँ। घावों की अपनी-अपनी परख है। अमरीका में भी कुछ ऐसे डाक्टर हैं जो अब प्रकृति के ऊपर ही मरीज़ को छोड़कर केवल उन्हें नियमित रूप से रखते हैं। मेरा ऐसा ही कुछ दृष्टिकोण है। किन्तु आपके घाव कहाँ हुआ ? फफोले कहाँ पड़े ?"

"जो पड़े थे वे अच्छे भी हो चुके।"

"डाक्टर की लड़की हैं न आप ?"

ओ३म् कुछ शरमा गई, उसने फिर कहा—तो और नहीं क्या ?

"वही मैं भी कह रहा हूँ।"

ओउम् जी ने नीचे देखा तो चाय का प्याला टूटा हुआ मिला। चाय बिखर गई थी। रमणी बाबू समझ गये थे। उन्होंने सोचा कि सम्भवतः नौकर के ऊपर डाट पड़े। अतः वे बोल उठे—प्याला मुझी से टूट गया है। किन्तु दोषी होते हुए भी मैं निर्दोष हूँ। कारण यह है कि जिस समय मैंने चाय पीने के लिए प्याले को होठों से लगाना चाहा उसी समय आप की याद आई। मैंने नौकर से पूछा तब ज्ञात हुआ कि आप तेल से जल गई हैं। अचानक समाचार सुनकर प्याला हाथ से छूट गया।

"प्याला मेरा था आपका नहीं। केवल आप के हाथ से टूट गया है। आप उसे तोड़ना नहीं चाहते थे किन्तु परिस्थितियों ने उसे तोड़ दिया। आप निर्दोष हैं। मैं मानती हूँ। अपना-अपना भाग्य है। प्याला पूरा भरा था न ?"

"बिलकुल किनारे तक।"

"आप पी न सके इसी का दुःख है।"

"क्या बी० ए० में आपका विषय दर्शन था ?"

"जी हाँ।"

"तभी प्याले की दार्शनिकता में जीवन उमड़ पड़ा है। कितने ही प्याले टूटते हैं। संसार उनकी परवाह ही कब करता है। जो टूट गया, सो टूट गया। प्याले का अस्तित्व रहे या न रहे। लेकिन वह मिट्टी जिसका प्याला बना है, सदैव से है और रहेगी। मूल में कोई अन्तर नहीं, अन्तर केवल रूप में है। नश्वर वस्तु के लिए पश्चात्ताप करना ठीक नहीं ज्ञात होता है।"

"मोह प्याले से है, मिट्टी से नहीं। प्याला बनकर ही वह हमारे सामने आया था। हम उसके उपकार से तभी दबे जब वह हमारा

साथ देने को तत्पर हुआ। उसने आँच में अपने को तपाया। केवल इसलिये कि वह आप के काम आ सके। किन्तु वह बिना अपने कार्य की पूर्ति के ही टूट गया। यदि वह आप को चाय पिलाकर टूठा होता तब तो कोई ऐसी बात न होती। मुझे दुख इस बात का है कि प्याला बिना अपनी तपस्या का प्रतिकार पाये ही टूट गया। मुझे दुख है कि मनुष्य अपनी अवस्था के पहले ही कभी-कभी शरीर त्याग करता है। रूप अपनी अवस्था के पहले ही नष्ट हो जाता है। जवानी उससे हँसकर बात-चीत ही नहीं कर पाती कि वह उठ जाता है।"

"यह सब ईश्वर की लीला है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि मैं ईश्वर पर विश्वास करने लगा हूँ। अन्यथा मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं ईश्वर को नहीं मानता था। जो वस्तु पाँच ज्ञान इन्द्रियों से परे है उसके ऊपर कल्पना के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं दौड़ सकती। ईश्वर एक काल्पनिक संज्ञा है जो हमारी कल्पना को सीमित करता है। निराशा के समय हम उसी कल्पना से टकरा कर जीना चाहते हैं। जिसे ईश्वरत्व में विश्वास नहीं होता, जिसे उस कल्पना में आस्था नहीं होती वह ऐसी दशा में आत्म-हत्या कर लेता है।"

"क्या आप की बहन सरोजिनी ने भी इसी नास्तिकता के कारण आत्म-हत्या की ? मैंने सुना है कि उसने आप के लिये आत्म-हत्या की है। क्या मैंने ठीक नहीं सुना ?"

आप ने ठीक सुना है। वह अक्षरशः सत्य है। उसे ईश्वर में कदापि विश्वास न था। उसने ईश्वर को आजीवन नहीं माना। रोटीवाद, भाई-बहन को सदैव सताता रहा। वे सदैव धनिकों के महलों से ईर्ष्या करते रहे। साम्यवाद की जन्जीर में उनका सारा कार्य-क्रम बँधा था। किन्तु आत्म-हत्या उसने मेरी भलाई के लिये की।

ईश्वरत्व का ध्यान उसे था ही नहीं। नास्तिकता में यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक मनुष्य आत्म-हत्या ही करता चले। वह तो एक सीमा थी जिसका निर्देश मैंने किया है।"

"जाने दीजिये। लड़के! और चाय ले आ।"

"अब मैं नहीं पिऊँगा।"

"मैंने स्वयं भी चाय नहीं पी है।"

"क्षमा कीजिये। मैं समझा कि सम्भवतः आप मेरे लिये.........।"

"आप भी पी सकते हैं। भोजन में सभ्यता, पानी में सभ्यता प्रत्येक स्थान पर रमणी बाबू सभ्यता वर्तते हैं। क्यों? आप का प्याला टूट गया। दूसरा प्याला आना चाहिये। आप ही ने कहा है कि जो टूट गया सो टूट गया।"

रमणी बाबू तकिये को मोड़कर कुछ ऊँचा करके सहारा लेते हुए बोले—जैसी आज्ञा?

"आज्ञा नहीं प्रार्थना है।"

"तर्क के आश्रय से।"

तब तक नौकर चाय लेकर आ चुका था। दोनों चाय बनाकर पीने लगे।

१२

बहुत दिनों तक अजमेर केवल मुसलमानों का ही तीर्थ स्थान रहा। किन्तु शताब्दी पूर्व स्वामी दयानन्द ने अजमेर में प्राण त्याग करके उसे आर्यों का भी तीर्थ-स्थान बना दिया। सुना जाता है कि अजमेर में एक बहुत बड़ी मालूद होती है। उसमें खीर बनती है। वह खीर, पीरजी की समाधि पर चढ़ाई जाती है। खीर का बटुला ही इतना बड़ा है कि दस-बीस आदमी आसानी के साथ प्रवेश कर जाते हैं। लगभग पन्द्रह दिन में वह खीर तैयार होती है। पीर का ऐसा प्रभाव है कि मालूद के दिन कोई भी उस बटुले में जाकर जल नहीं सकता। खीर में जलाने की शक्ति नहीं रहती। लोग उसमें सीढ़ी लगाकर घुस जाते हैं और बटुले से घड़े भर-भर-कर खीर निकालते हैं। वही अजमेर शरीफ़ का प्रसाद है जो प्रत्येक मुसलमान को मिलता है। उसी को खाकर उन्हें जिन्नत पहुँचने का अधिकार हो जाता है।

स्वामी दयानन्द को किसी वेश्या ने जहर दिला दिया। वे उसको वमन क्रिया द्वारा निकालना चाहते थे पर काँच का जहर अँतड़ियों में घुस गया। वे सफल न हो सके और अन्त में कुछ बिलक्षण डाक्टरों के इलाज के लिये उन्हें अजमेर लाया गया। परन्तु जब ऋषि अपनी योगिक क्रियाओं द्वारा ही कुछ न कर सके तब डाक-

टर बेचारे क्या कर सकते। ऋषि यदि चाहते तो अपनी योगिक क्रियाओं द्वारा कुछ दिन और जीवित रह सकते थे किन्तु उनको जीवित रहने में अधिक कष्ट हो रहा था। अतः उन्होंने प्राण त्याग देने का निश्चय किया। दीपमाला का दिन था और प्रातः की बेला। स्वामी जी उपदेश देने के पश्चात् सन्ध्या करने के लिये बैठ गये। उन्होंने सारी जनता को अपने पीछे कर लिया। किन्तु नास्तिक गुरुदत्त को अपनी विज्ञान-प्रणाली पर इतना अधिक विश्वास था कि वे एक कोने में खड़े हो गये। स्वामीजी अब उन्हें देख नहीं सकते थे किन्तु वे भली प्रकार स्वामीजी को देख सकते थे। स्वामीजी कुछ वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हँस पड़े। गुरुदत्त काँप उठा—जिस मृत्यु के विषय में सोचते ही मनुष्य मूर्छित हो जाता है उसी को सामने देखकर स्वामीजी हँस रहे हैं। जब मृत्यु के साथ खेलने वाला कट्टर व्यक्ति भी ईश्वर में प्रगाढ़ विश्वास ही नहीं रखता था अपितु उसी के सहारे जी रहा था तब उसका अस्तित्व अवश्य है। उसे गुरुदत्त ही नहीं समझे। स्वामीजी की मुस्कराहट बढ़ती ही गई। वे पुकार उठे—ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। और अन्तिम शब्द के साथ ही ब्रह्माण्ड फट गया और उनका आत्मा ईश्वर में विलीन हो गया। संसार में शेष था तो केवल मृत्यु शरीर। उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की गई। तभी से अजमेर भारतीयों के लिये एक तीर्थ-स्थान बन गया।

ऐसे ही तीर्थ-स्थान में राजकुमारियों का वह विद्यालय था जिसमें अनेक प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थीं। घोड़े पर चढ़ना, आखेट करना, नृत्य, गीत तथा अन्य कलाएँ भी सिखाई जाती थीं। यह विद्यालय पश्चिमीय ढंग पर था। आदर्शवाद का ध्यान अवश्य रक्खा गया किन्तु उस आदर्शवाद पर भारतीय छाप न होकर इसा-

इयों के प्यूरिटन धर्म का प्रभाव था। नियम बड़े कड़े थे किन्तु आहार-विहार में पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

विद्यालय नगर के बीच में था किन्तु घोड़ों की दौड़ आदि, नगर से दूर एक मैदान था, उसमें होती थी। शिक्षा का क्रम अधिकतर मौखिक ही था। तीन बजे के लगभग ही सभी छात्राएँ अपने-अपने घोड़ों पर बैठकर उस मैदान में चली जाती थीं। वहाँ पहुँचकर वे जलपान करतीं तथा वहीं पर उनका व्यायाम प्रारम्भ होता। सायंकाल से पहले ही सब को छुट्टी मिल जाती थी और घोड़े राजमार्ग पर जाते हुए दिखाई पड़ते थे। राजकुमारियाँ अपनी सुन्दर वेश-भूषा बनाकर जब घोड़ों पर निकलती थीं तब देखते ही बनता था। राजमार्ग पर दर्शकों की भीड़ लग जाती थी किन्तु उस मैदान में जाने के लिये बड़े प्रतिबन्ध थे। मैदान के एक ओर उन्नत पहाड़ियाँ थीं दूसरी ओर हरा-भरा जंगल। उन पहाड़ियों से बहते हुए झरने कल-कल करते हुए बड़े ही आनन्ददायक प्रतीत होते थे। मैदान की घास सदैव एक-सी ही रहती थी। कभी भी बढ़ने-घटने न पाती थी। घटने के समय सिंचाई और बढ़ने के समय उनकी काट-छाँट हो जाया करती थी। लगभग सौ माली उस मैदान में सदैव काम किया करते थे। मैदान के चारों ओर पत्थर की चौकियाँ थीं जिन पर थक जाने पर बालिकाएँ बैठकर आराम किया करती थीं। चौकियों के निकट क्यारियाँ बनी थीं। उन क्यारियों में सदैव फूल दृष्टिगत होते थे। मैदान के बीच में एक बहुत बड़ा चबूतरा था। चबूतरे के बीच में एक चौकोर स्तम्भ-सा बना था। उस पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ थीं। वे गोल सीढ़ियाँ चारों ओर फैली हुई थीं। कभी-कभी दौड़ के समय विद्यालय का प्रधान उस मञ्च पर चढ़कर अपने विद्यार्थियों का निरीक्षण करता था। कँटीदार तारों के कारण इस मैदान में जंगली जानवरों का प्रवेश

न था। केवल कभी-कभी मोर सीमा लाँघकर चले आते थे और मनमाना उपद्रव करते थे। नभ में उड़ती हुई कबूतरों की पंक्तियाँ भी कभी-कभी मैदान में उतर आती थीं।

प्रेमा को पक्षियों से बड़ा प्रेम था। वह बहुधा थक जाने पर अपनी झोली से दाने निकालकर चौकियों पर बिखेर देती थी जिन्हें देखकर लक्का कबूतरों की पंक्ति अपने आप उतर जाती थी। कभी-कभी प्रेमा उन्हें पकड़ भी लेती थी। उनके साथ बड़ी देर तक खेल लेने के बाद फिर उन्हें छोड़ देती। कुछ दिनों के बाद पक्षियों का प्रेमा पर इतना विश्वास हो गया कि वे स्वतंत्र रूप से उसके सिर, बाल और कन्धों पर बैठते और हटाने पर भी नहीं हटते थे। कभी-कभी घोड़े पर बैठने तक उनका साथ रहता था। पक्षियों के प्रेम में पड़कर प्रेमा बहुधा अन्य बालिकाओं से पिछड़ जाती थी और पंक्ति तोड़कर कभी-कभी इसे अन्त में अकेले जाना पड़ता था। संरक्षिका को कई बार प्रेमा को सूचित भी करना पड़ा परन्तु प्रेमा अपने हृदय को न जीत सकी। वर्षा के दिनों में हास्टल के सूने कमरे में जब प्रकाश बुझ जाता था और दस की घन्टी सो जाने के लिये विवश करती थी तब भी प्रेमा को नींद नहीं आती थी। जब अकेलेपन से ऊब जाती तब सितार उसके हाथों में सहारा देने के लिये आ जाता था। उसकी अँगुलियाँ थिरक उठती थीं और शून्यता और नीरवता में एक लहर पैदा कर देती थीं। जब हाथ थक जाते, जब उन सुकुमार अँगुलियों में रक्त भर जाता तब वह सितार भी रख देती थी और खिड़की से बाहर अपनी आँखे गड़ाकर उस अन्धकार में कुछ ढूढ़ती थी। बिजली चमक उठती। बादल बरसने लगते। जुगुनू आकाश के तारों की कमी पूरा करने के लिये उठने लगते थे। भीगे पथ पर चलते हुए जब किसी की आहट आती थी तब वह बालिका

बड़ी ही तन्मयता के साथ देखने लगती। किन्तु जब वह चला जाता तब गुनगुनाने लगती—

जीवन की साध मिटी जाती।

कभी-कभी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही सो जाती थी। प्रातःकाल उठने पर उसे सब स्वप्न लगता। प्रेमा के सामने उसका बचपन नाँच उठती। छोटा-सा बालक.........उसका खेल.........दो गिन्नियाँ, भोजन—फिर एक दिन उसकी बिदाई.........सब स्मृतियों में नाच उठते। मेरा उतरा हुआ चेहरा देखकर कारण पूछती। प्रेमा कहती थी कि कुछ तबियत ठीक नहीं है। रात्रि में नींद नहीं आयी। सहेलियों में वह खूब खेलती थी। किन्तु वह विद्यालय के नाटक आदि में कभी भी भाग न लेती थी। कितनी बार उसकी अन्य सहेलियों ने इसका कारण पूछा किन्तु वह सदैव मौन रही।

पढ़ने में वह बचपन से ही कुशल थी। कक्षा में उसका स्थान सदैव प्रथम रहा। प्रेमा में गर्व तनिक भी नहीं था। उसका सीधा सरल स्वभाव सभी को आकर्षित किये हुए था। वार्षिक अधिवेशनों में मिले हुए इनामों से उसकी आलमारी भर चुकी थी। अब वह अपना पारितोषिक किसी अन्य को दे देती थी।

दिन बीतते गये। प्रेमा बढ़ती गई। उसका रूप विकसित हो उठा। जितनी ही वह बढ़ती गई उतना ही उसे स्मृतियों ने घेरना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु उसे निराशा कभी नहीं हुई। तपस्वी एक बार फिर आवेगा। उसका आना आवश्यक है। ऋषि की सन्तान कभी झूठ नहीं बोलती। उसने ईश्वर को समझने का व्रत लिया है। उसमें स्वर्ग देखने की प्रबल इच्छा विद्यमान है। वह कोई साधारण युवक नहीं होगा। उसने तपस्या से अपने शरीर को राख कर दिया होगा। उसका परिश्रम व्यर्थ नहीं जायगा।

अपनी साधना में महात्मा बुद्ध की तरह वह सफल होकर लौटेगा। लौटेगा अवश्य ऐसी प्रेमा की धारणा थी।

तारों की जगमगाहट में भी प्रेमा अपने हृदय की धड़कनों का सा आनन्द लेती ! कभी उसे मालूम होता कि तपस्वी बालक सामने खड़ा है। वह मिलना चाहता है किन्तु प्रेमा नहीं मिलती। रूठती है, कहती है कि इतने दिन के बाद क्यों आए ? जाओ, नहीं मिलूँगी। निर्द्वन्द पथिक की भाँति तपस्वी आगे बढ़ जाता था। प्रेमा दौड़ जाती थी और कहती थी कि इतने दिनों बाद मिलकर भी आप ने अपना स्वभाव नहीं छोड़ा। वह पकड़ लेती थी और खींचने का उद्योग करती। परन्तु स्वप्न समाप्त हो जाता और कल्पना का अन्त सत्य की कसौटी पर भली प्रकार दृष्टिगोचर होने लगता था। रानी तारा को भी एक दिन एक छोटे से भिखमङ्गे को देखकर उस तपस्वी की बात याद आई थी। उन्होंने प्रेमा को स्मरण कराने का प्रयास भी इस बार छुट्टियों में घर जाने पर किया था किन्तु प्रेमा ने जानकर भी उपेक्षा की दृष्टि से टाल दिया। हृदय को खोलकर दिखाने का प्रयास न कर सकी।

यह अवश्य था कि कभी-कभी छुट्टियों में उस जंगल की ओर गई थी जिधर तपस्वी बालक जाकर अन्तर्ध्यान हो गया था। मीलों जंगल में घुस जाती। घोड़ा थक जाता था। जंगल में रास्ता न मिलने पर परेशान होकर पसीने से लथ-पथ दोनों लौट आते थे।

अजमेर की पहाड़ियाँ बहुत ऊँची नहीं है। रास्ता जाने हुए व्यक्ति बड़ी सरलता के साथ बहुत दूर तक टहलने चले जाया करते हैं। राजकुमारियों को भी कभी-कभी वहाँ जाने का अवसर मिल चुका है। जब कभी प्रेमा को ऐसे अवसर मिले तब उसने उसका उपयोग केवल तपस्वी बालक के खोजने में बिताया।

सोचती थी कि सम्भवतः यहीं कहीं आकर जीवन व्यतीत कर रहा हो।

एक दिन खेल के मैदान से प्रेमा लौट रही थी। देर हो चुकी थी। उसका घोड़ा दौड़ में बहुत थक चुका था। पसीने के कारण जीन तक भीग चुकी थी। आगे का लाल कपड़ा पानी में भीगा हुआ ज्ञात होता था। घोड़े को टहलाने के अभिप्राय से उसने धीरे-धीरे चलना प्रारम्भ किया। दो व्यक्ति आपस में बात-चीत करते हुए चले जा रहे थे। एक सन्यासी था, दूसरा बड़े ठाट-बाट से बहादुर सिपाही की भाँति अकड़ता हुआ चला जा रहा था। दोनों आपस में अजमेर की शोभा पर कुछ कहते हुए कभी-कभी रुक-कर सामने जाने वाली घोड़ों की पंक्ति भी देख लेते थे। किन्तु पीछे उनका ध्यान न था। सड़क का एक छोर उनके सामने बिल्कुल साफ था। पग आगे ही बढ़ते चले जा रहे थे।

सन्यासी कह रहा था—इतिहास के अजमेर से आधुनिक अजमेर की तुलना मत करो। क्षत्रियों के इतिहास से आज-कल के राजपूतों का इतिहास समझने का प्रयास मत करो।

युवक उत्तर दे रहा था—कम से कम इन खंडहरों से आज भी एक अनुपम प्रसन्नता प्रकट होती है जो हमें बरबस अपनी ओर खींचती है। वैभव की आँच में तपी हुई ये वही ईंटें हैं जिनमें राजपूती खून ही नहीं वह क्षत्रिय रक्त भी खौल चुका है। अपने वीरों का नाश होते देखकर ये भी खड़ी न रह सकीं। इनकी भी छाती दरक उठी और प्रलाप करती हुई दीवारें सदा के लिये भस्मीभूत हो गईं। केवल उनके अस्थि-पिन्जर का संकेत मात्र है।

सन्यासी आवेश में आकर कह गया—नहीं, अजमेर की पहाड़ियाँ आज भी पुकारकर कह रही हैं कि चेतो—अजमेर की

मरी हुई सन्तानों मर-मरकर जीना सीखो—तुम अब भी कुछ कर सकते हो। विपत्ति के समय घबराओ नहीं। एक दिन ऐसा होगा कि तुम्हारा फिर से उत्थान होगा।

तब तक पीछे का घोड़ा बराबर में आ चुका था। अश्वारोही ने सन्यासी को पहिचान लिया। उसकी हाथ की लगाम अपने आप खिंच उठी। घोड़ा रुक गया। एक साथ दो आँखें चार हो गईं।

"कौन ? भिखारी ?"

"प्रेमा !"

"याद है !"

"भूली नहीं ?"

"तपस्या पूरी हो गई ?"

"अभी नहीं।"

"कब तक ?"

"पता नहीं।"

"कल मिलोगे ?"

"कहाँ ?"

"उधर पहाड़ी के किनारे।"

"काम ?"

प्रेमा मौन हो गई। उसकी आँखों में आँसू निकल आए।

"आओगे न ?"

"प्रयास करूँगा ?"

"बस एक बार ?"

"अच्छा अवश्य आऊँगा ?"

घोड़ा आगे बढ़ गया। पैदल पीछे रह गये। दोनों ने कान लगाकर सुना—घुड़सवार गुन-गुना रहा था "जीवन की साध मिटी जाती।"

"कवि ! यह कौन है ?"

"एक बालिका ।"

"युवती जान पड़ती है ।"

"मेरी आँखों से देखो ।"

"आपका बचपन का साथ ।"

"एक राजकुमारी से ? यही न, इसी पर आश्चर्य कर रहे हो ? बालिका ईश्वर नहीं है। इतना जानते हो न ? जयगढ़ की राजकुमारी यही है। इसे ही दिखाने तुम्हें लाया था। कल वह पहाड़ी के पार मिलेगी। आगे चलो। कल यह बालिका ही तुम्हें ईश्वर की ओर संकेत करेगी।"

"अब हम लोग कहाँ चल रहे हैं ?"

"नगर से दूर—एक पर्ण कुटी में।"

दोनों चले जा रहे थे।

× × ×

सूर्य की अन्तिम किरणें झुरमुटों से विदा ले रही थीं। दिन समाप्त ही होने वाला था। आकाश में बादलों के ऊपर सुनहली किरणें पड़ रही थीं। पहाड़ियाँ शान्त थीं। रात्रि का आगमन उन्हें भी भयभीत कर रहा था। किन्तु निकट के मैदान में खटपट की ही ध्वनि सुनाई देती थी। ऐसा मालूम होता था कि अजमेर से विदेशियों का प्रभुत्व हटाने के लिये राजपूत चढ़ाई कर रहे हों। मैदान की उठती हुई धूल आकाश में विलीन हो रही थी। वायु सहारा देकर कभी-कभी बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ा देता था।

कवि और शिकारी दोनों एक शिला पर बैठ गये। वे घोड़ों की टापें सुनते और सोचते थे कि जब टापों का स्वर मन्द पड़ जायगा तब सब राजकुमारियाँ निवास की ओर जायँगी तभी प्रेमा

उनकी ओर आती दिखाई देगी। अतः वे फिर अपने वार्तालाप में खो गये।

"तुम्हें यह राजकुमारी कैसी लगी ?" कवि ने कहा।

"बहुत अच्छी, ओ३म्जी से भी सुन्दर।" शिकारी ने कहा। "मैंने अपना सारा परिचय जो बालिका से सम्बन्धित था, बता दिया था। याद है न ?"

"याद है, इतनी शीघ्रता के साथ भुलाया नहीं जा सकता।"

"तुम कह रहे हो कि प्रेमा ओ३म् से भी सुन्दर है ?"

"हाँ।"

"तब तुमने रूप किस तरह पहिचाना। जिसे मन चाहे वही रूप है। तुम ओ३म् की ओर उसके रूप को ही देखकर आकर्षित हुए हो। गुण उसके बाद तुम्हारे सामने आए। आज उस रूप का भी आकर्षण समाप्त हो रहा है जब तुम प्रेमा के रूप की प्रशंसा कर रहे हो। समानता करके तुमने अपने माने हुए रूप का तिरस्कार किया है। तात्पर्य यह है कि तुम रूप को स्थायी नहीं मानते। तुम्हारा तात्पर्य जवानी से है। रूप की प्रतिक्रिया हुई है जवानी के भीतर। तुम जवानी ढूढ़ते हो। प्रेमा यौवना है। यौवन में सौन्दर्य की लहरें उठ रही हैं।

"ऐसा ही होगा। परन्तु मैं ओ३म् के भावों में ईश्वरत्व की झलक पाता हूँ। उसके रूप को समझ चुका हूँ। वह मुझे निराधार ज्ञात होता है। यदि कोई क्रियाशीलता में आनन्द की सृष्टि कर सकती है तो वह मेरे लिये ओ३म् ही हो सकता है। ओ३म् से राजकुमारी सुन्दर लगती है। इसका तात्पर्य केवल इतना है कि बालिका का बचपन है ओ३म् में जवानी। मैंने रूप शब्द भी नहीं प्रयोग किया। रूप और सौन्दर्य का अन्तर भली प्रकार समझता हूँ।"

"भिखारी तुम आ गये ?" किसी के घोड़े पर से शब्द हुए !

"तुम आ गईं !" मुड़कर कवि ने कहा ।

"समय हो गया था ।" प्रेमा घोड़े से उतर गई। उसे उसनें झाड़ी से बाँध दिया। वह कवि के समक्ष आकर खड़ी हो गई। उसने अपने बचपन के साथी को घूरकर देखा। पुनः आँखें शिकारी की ओर उठ गईं।

"भिखारी ! यह कौन है ?"

"मेरा मित्र ।"

"नमस्ते ।" प्रेमा ने कहा ।

पाण्डेय जी कुछ कह न सके। उन्होंने उत्तर में हाथ जोड़ दिये। उनके अधरों पर मुस्कराहट छा गई। वे उठ गये। प्रेमा भिखारी के निकट आकर बैठ गई।

"अब भी भिक्षा माँगते हो ?"

"नहीं। बिना माँगे ही मिल जाता है ।"

"बिना माँगे ही मिल जाने वाला भारत आज नहीं है ।"

"अपनी अपनी दृष्टि का फेर है ।"

"तब मैं भी भिखारिन बनूँगी ।"

"क्षत्री कभी भिक्षा नहीं माँगते ।"

जन्म से नहीं, मनुष्य कर्म से कुछ हो सकता है। मेरा जन्म क्षत्री घराने का है किन्तु मैं कर्म करके ब्राह्मणी बन सकती हूँ।

"किस लिये ?"

"आप के साथ रहकर भीख माँगने के लिये ।"

"तुममें मेरे प्रति इतनी ममता क्यों है ? मैं रूपवान भी नहीं धनवान भी नहीं। एक निर्धन तपस्वी के ऊपर दया—फिर ममता।"

"नारी जो हूँ।"

"नारी माया है ।"

"कबीर और तुलसी भी यही मानते आए हैं।"

"तब नारी तपस्या में भंग डालती है। मानती हो।"

"तब मैं आप का बन्धन बनकर नहीं रहूँगी। आप के पथ का काँटा निकालने वाला बनना चाहती थी। काँटे गड़ाना मेरा कार्य नहीं। आपको सहयोग की आवश्यकता नहीं।"

"मैं अपने में पूर्ण हूँ।"

"किन्तु अभागी नारी अपने में अपूर्ण है।"

"नहीं, भूल रही हो प्रेमा। मनुष्य अपने में पूर्ण है। परन्तु तब उसकी पूर्णता में सांसारिकता की आवश्यकता नहीं। मीरा को किसी की आवश्यकता न पड़ी। उसमें पूर्णता थी।"

"मीरा में साधना थी।"

"तुम में साधना नहीं है? साधना जन्म से नहीं होती। समय के द्वारा ही उसकी प्राप्ति होती है। समय द्वारा साधना का प्रयास करो सुख की नहीं, आनन्द की इच्छा करो। जीवात्मा से मिलने की बात छोड़ महान् आत्मा में मिलने का प्रयास करो। रूप को छोड़कर ईश्वर को पहिचानो। मेरे सम्पर्क में आकर तुम्हें कायरता प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं।"

"मैं साधना करूँगी। आप के साथ ही मेरी साधना पल्लवित होगी। आप का सहारा।"

"भ्रम है। सहारा कैसा? पूर्णता में अपूर्णता कैसी?"

"कोरे ज्ञान से काम नहीं चलता। भावना की हत्या कैसे की जाये। अन्तर्द्वन्द के सहारे जो आज तक जीता रहा हो उसे निराश मत करो। आए हुए अतिथि को द्वार से मत लौटाओ?"

"न कोई नारी है न कोई पुरुष। सारहीन शरीर के द्वारा, जो अन्तर आत्मा और परमात्मा में परिज्ञात होता है वह सत्य नहीं है।

प्रेमा, भूलकर दुःख के पथ पर मत चलो। यदि साधना के स्वतन्त्र पथ पर मत चल सको तो दान, दया और भक्ति का पथ पकड़कर चलो। किन्तु सांसारिकता के माया जाल में अपने को मत बाँधो। दुनिया में चमत्कार की आवश्यकता नहीं जो एक क्षण मात्र के सुख का साधन है। ईश्वर का आनन्दात्मक चमत्कार आदि अन्त से परे है। उसी का आभास पाने का प्रयास करो।"

"निराश होकर लौटना होगा ?"

"मनुष्य से। ईश्वर से नहीं।"

"ईश्वर भी अवतार लेता है।"

"लेकिन मैं ईश्वर नहीं हूँ।"

"जीवात्मा ईश्वर का अंश है।"

"परन्तु उसमें उसके मिलने तक अपूर्णता रहती है।"

"आपने कहा है कि मनुष्य पूर्ण है।"

"वह मैंने मनुष्य की व्याख्या सांसारिकता के समक्ष की थी।" कभी भी मनुष्य मनुष्य से मिलकर पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। उसे ईश्वर में मिलने ही पर पूर्णता का बोध हो सकेगा।"

"मन नहीं मानता।"

"यही वासना है। वासना जीवन का निम्नतम स्तर है।"

"क्या आप वासना की दृष्टि से ईश्वर को नहीं देखते ?"

"शब्द चमत्कार की आवश्यकता नहीं। उसके अर्थ पर विचार करो। मैं तर्क द्वारा तुम्हें पराजित करना नहीं चाहता। तुम में कुछ अपना है इसलिये सन्देश देने आया था।"

"आज्ञा है कि ईश्वर को समझो ?"

"इसीमें कल्याण है।"

"कभी-कभी आप का दर्शन हो सकेगा ?"

"अभी मन का पाप नहीं गया, प्रेमा।"

प्रेमा के नेत्रों में कुछ चमका। किन्तु वह पी गई। कवि समझ गया। उसने कहा—याद है वह गीत—

"जीवन की साध मिटी जाती।"

"बस, इसी प्रकार इच्छाएँ मिट जायँगी। तब महान् इच्छा की पूर्ति होगी। जन्म-मरण के बन्धनों से मनुष्य छूट जायगा।" कहते हुए कवि ने अपनी पोटली खोल दी। चारों तरफ मेवों को बिखराते हुए कवि ने कहा—इन्हें खाओ प्रेमा।

"एक बार फिर कहो योगी।"

कवि का मन डिगा नहीं। उसने उत्तर भी न दिया। उठकर नीचे से अपना अधोवस्त्र उठाकर बिछाता हुआ शिकारी से कहने लगा—देखते क्या हो? भोग लगाओ। मुझे भूख लग रही है। मेरा भोजन का समय हो गया।"

"भिखारी का यही भोजन है।"

"तपस्वियों के लिये अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं।"

प्रेमा और शिकारी दोनों मेवों को खाने लगे। शिकारी जीवन की विषमताओं को देखकर अचम्भित सा रह गया। रूप और यौवन की उपेक्षा करने वाला कवि कितना महान् है। किन्तु उसे अब कवि से घृणा भी होने लगी थी। बालिका के ऊपर उसे दया आ रही थी। जब तक दोनों वार्तालाप कर रहे थे तब तक बद्रीदत्त जी मौन थे। किन्तु भोजन के समय की निस्तब्धता में वे बोल उठे—ईश्वर हो या न हो पर दया में मुझे बहुत बड़ा विश्वास था। आज दया से विश्वास चला गया।

'धोखे में हो शिकारी, तुम" दया के ऊपरी स्तर को जानते हो। भीतर प्रवेश करने की क्षमता तुम में नहीं है। बालक यदि कृपाण लेने के लिये मचलकर रोने लगे तो क्या उस पर दया करके कृपाण दे दोगे? बिच्छू यदि जल में भीग रहा हो तो क्या

दया करके उसे अपने हाथ पर उठाकर कपड़े के भीतर कर लोगे ? बिना जाने हुए भिखमङ्गे को भीख देना दया नहीं पाप है। तुम नहीं जानते हो कि वह तुमसे पैसे लेकर गाँजा पी रहा है कि भोजन कर रहा है। भोजन दान करो, उसे वस्त्र दो। पैसे देने की आवश्यकता नहीं।

"किन्तु भोजन और वस्त्र को भी बेच करके वह गाँजा क्रय कर सकता है।"

"इसीलिये मैंने बताया कि प्रथम उसकी प्रवृत्तियों को जान लेना चाहिये। आज प्रेमा के ऊपर दया करके मैं उससे उसका स्वर्ग छीन नहीं लेना चाहता। नारी होने के नाते तुम उसे कमज़ोर समझते हो। मैं नारी को ही नहीं, जीव मात्र को बराबर समझता हूँ। ईश्वर के समक्ष सब जीवों की समान उपयोगिता है।"

"भिखारी फिर कब मिलोगे।" प्रेमा ने एक मेवे को अपने दाँत से दबाते हुए पूछा।

"यदि तुम में साधना जागेगी, यदि तुम मोह से निकलकर ज्ञान की डाली पर अपने पग बढ़ाओगी तो हम अवश्य कभी न कभी मिलेंगे। किन्तु इसके विपरीत होने पर हमारा वह अपनत्व जो तुममें लीन है, नष्ट हो जायगा। हम तुम कभी भी न मिल सकेंगे।"

प्रेमा ने उठते हुए कहा—देर हो रही है। आज्ञा दीजिये, वह देखिये बालिकाओं की कतारें जा रही हैं।

"रोकता कौन है। जाओ।

प्रेमा अपने अश्व पर चढ़ गई। वह पीछे की ओर देख रही थी। उसकी कातर आँखें कुछ कहती हुई चली जा रही थीं।

सहसा कवि ने पुकारा—प्रेमा, एक बात सुनती जाओ।

अश्व रुक गया। प्रेमा घोड़े से उतर पड़ी। कवि निकट आ गया। उसने कहा—दीक्षा लो प्रेमा और वह एक कड़ा अपने हाथ का निकालकर प्रेमा के हाथ में पहनाता हुआ बोला—जाओ प्रेमा! जाओ।

प्रेमा चली गई और गंगा जिस प्रकार समुद्र में अपने को समर्पित कर देती है उसी प्रकार प्रेमा ने अश्वारोहियों की पंक्ति में अपने को मिला दिया।

"मुझे अलखनन्दा जाना है।" शिकारी ने कहा।

"जाओ।"

"मैं चाहता हूँ कि आप भी चलें।"

"चल सकता हूँ। किन्तु अधिक दिन तक ठहर नहीं सकता।"

"ठहरना मुझे भी नहीं है।"

"तब ठीक है। हम लोग कल अलखनन्दा के लिये प्रस्थान करेंगे। आज को रात्रि यहीं बितानी है। अब तुम नगर में अपने मित्रों से मिलने जा सकत हो।"

"नहीं, अब नहीं जाऊँगा। वे रोक लेंगे।"

१३

पर्वतीय प्रान्त को गुन्जित करती हुई डाक्टर भाटिया की मोटर पच्चास मील की कठिन पहाड़ियों को पार करती हुई अपने विश्राम स्थल में खड़ी हो गई। सूचनार्थ ड्राइवर ने हार्न बजा दिया। बच्चे पिता से मिलने के लिये सीढ़ियों पर दौड़ पड़े। राधा पीछे बँधा हुआ सामान खोलने लगा।

'पिताजी आ गये' छोटी लड़की दौड़ती हुई पिता से लिपटकर चिल्ला उठी। छोटा बालक हरी 'पिता-पिता' करता हुआ अन्तिम सीढ़ी पर लुढ़क गया। वह रोने लगा।

डा० भाटिया ने दौड़कर बच्चे को पुचकारते हुए कहा—बेटा! सीढ़ी बड़ी खराब है। हम उसे अभी मार देते हैं। उसने तुम्हें गिरा दिया। कहकर डाक्टर साहब ने दो बार सीढ़ी को पीट दिया। तब भी बच्चा चुप न हुआ। उन्होंने उसे चुप करने के लिये हार्न के निकट जाकर दो-एक बार उसे बजा दिया। बच्चा चुप हो गया। तब तक ओ३मूजी की माता भी नीचे उतर आयीं थीं। पति ने स्त्री की ओर झुककर तिरछी दृष्टि से देखकर कहा—कुशल है न?

"बड़ी जल्दी आए?"

"एक दिन की देर देर नहीं कही जा सकती । गाड़ी का सफ़र, इतनी कड़ी भीड़—एक दिन कुछ है ही नहीं । लोगों का तीन-चार दिन का कार्य-क्रम बिगड़ जाता है ।"

"एक दिन मानों कुछ है ही नहीं ।" कहते हुए पत्नी अपने पति के पास आकर खड़ी हो गई । अधिकार समय की बाट जोहा करता है । सामान ऊपर पहुँच जाने पर पूरा परिवार ऊपर जाने के लिये सीढ़ियों पर चढ़ने लगा ।

बार-बार के हान ने ओ३म् को भी चौंका दिया । उनकी 'कामायनी' मुड़ गई और पिता को प्रणाम करने के लिये वह भी उठ खड़ी हुई ।

पिता ने देखते ही आशीर्वाद देकर बुलाया और निकट की चारपाई पर बिठा लिया । माता जी नये बक्स की ताली भाटिया जी से लेकर उसे खोलने लगीं । बक्स का कुल सामान एक-एक करके चारपाई पर रख दिया गया । ओ३म् की माताजी जिस वस्तु को उठाती थीं उसे भली प्रकार उलट-पुलटकर देखती जातीं । पति महोदय उसकी कीमत बता देते थे । पिता की पीठ की आड़ से ओ३म् भी कभी-कभी सामान की ओर देख लेती थी । अब उसको अपनी माँ की बातों में पूर्ण विश्वास हो रहा था ।

जब पूरा बक्स खाली हो गया तब बच्चे मिठाई वाली टोकरी की ओर बड़ी सावधानी से देखने लगे । माँ ने सब बच्चों को मिठाई दी । मिठाई ओ३म् को भी मिली । आज भी वह बच्ची ही थी । अन्य बच्चों की तरह उसका भी अधिकार उसी प्रकार था ।

"कुल पाँच हजार लग गये" पिता ने एक साँस खीचते हुए कहा ।

"तो क्या हुआ । बार-बार ब्याह नहीं होता । पढ़ाई में चाहे जितना रुपया लग जाय परन्तु गहने-कपड़ों का नाम सुनते ही आप को ज्वर चढ़ आता है । यदि मुझे भी आप ले गये होते तो

कम से कम पाँच हज़ार और लगते। पाँच ही हज़ार में छुट्टी मिल गई।" ओ३म् की माता ने सामान बक्स में रखते हुए कहा। ओ३म् उठकर चली गई। बच्चे खेलने के लिये बाहर चले गये।

डा० भाटिया ने कहा—रमणी बाबू एक लखपती आदमी हैं।

"अच्छा, तुम्हें कैसे मालूम हुआ।" पत्नी ने पूछा।

"मेरे मित्र उन्हें जानते हैं। इनका बहुत पुराना मकान अल्मोड़े में भी है। अधिकतर वे वहीं पर रहते हैं। नागपुर में इनकी जमीदारी है। व्यापार भी खूब चलता है। चार भाई हैं। दो बहिनें थीं। एक इन्हीं छुट्टियों में छत से गिरकर मर गई।"

"रमणी बाबू व्याह के लिये सहमत हैं न ?"

"यह मैंने अभी उनसे पूछा नहीं।"

"तब क्यों इतना बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया ?"

"व्याह तो होगा ही। आज न होगा तो कल होगा। सामान वृथा नहीं जायगा। पहले लड़की से पूछ लो तब लड़के की बारी आएगी। मैं अपनी लड़की से पहले पूछना चाहता हूँ उसके बाद उसकी राय ज्ञात हो जाने पर रमणी बाबू से पूछा जायगा। मेरे उपकारों से वे इतने दबे हुए हैं कि मेरी बात का विरोध नहीं कर सकते। प्रत्येक समय मेरी प्रशंसा के पुल ही बाँधा करते हैं।"

"ओ३म् से मैंने पूछा। उसने कोई विपरीत बात न कही। शरमाकर वह अपने कमरे में चली गई।"

"उसने कुछ न कहा ?" डाक्टर भाटिया ने दुहराया।

"लड़कियाँ चाहे जिस कक्षा में पहुँच जायँ, उनकी लज्जा नहीं जा सकती। पुरुषों की तरह हाँ नहीं सामने नहीं करतीं। आप उनके भावभंगी से ही समझ सकते हैं। आप क्या चाहते हैं कि ओ३म् आकर कहे कि वह रमणी बाबू से व्याह करेगी। उसे कोई आपत्ति नहीं ?"

"किन्तु तुमने अपने ब्याह के समय अवश्य कह दिया होगा।" हँसते हुए डाक्टर ने कहा।

"मैंने कह दिया था कि डाक्टर बड़े खराब होते हैं। मैं डाक्टरों से ब्याह नहीं करना चाहती। समझे।"

"डाक्टरों से नहीं, तभी डाक्टर से तुम्हारा ब्याह हुआ। डाक्टर भाटिया को तुमने अवश्य पसन्द किया होगा ?"

'बिल्कुल नहीं। डाक्टर और मेहतर एक होते हैं।"

"इतना बुरा होने पर भी तुम्हारे पिता ने तुम्हें मेरे गले में बाँध ही दिया। छोड़ा नहीं। मेहतर ही समझकर छोड़ देते।"

"अब यही विषय शेष है।" पत्नी ने क्रोधावेश में आते हुए कहा।

"मैं लड़की की अनुमति ले लेना ही ठीक समझता हूँ। जीवन का सम्बन्ध खेल समझकर मत बिगाड़ो।"

"मैं पूछ चुकी हूँ।"

"तुम्हारा पूछना तुम्हारी शीघ्रता का द्योतक है। जल्दी में काम बिगड़ जाता है। मेरे पूछने में लाभ के अतिरिक्त हानि नहीं दिखाई देती।'

"पूछ ही लो। दिल का संकोच मिट जाय।"

डाक्टर साहब उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने कमरे में जाकर कपड़े उतारे। हाथ-मुँह धोया। दाढ़ी बनाई और तब फिर एक बार मुँह धोकर चाय की आशा में कुर्सी पर बैठ गये। थोड़ी देर में ओश्म् ने मेज पर जलपान की तश्तरी लाकर रख दी। नौकर पानी दे गया।

"क्या चाय नहीं बनी है ?" पिता ने पूछा।

"आ रही है। दूध गरम हो रहा है।" लड़की ने उत्तर दिया।

"आज चाय हमारे साथ पियो। तुमसे दो-एक बातें करनी हैं। जाओ चाय लेती आओ।"

चाय लाकर ओ३म् ने दो कप तैयार किए। फिर एक प्याला पिता की ओर बढ़ा दिया। डाक्टर साहब ने एक घूट चाय का पीते हुए कहा—कोई नया मरीज़ आया है ?

"दो।"

"उन्हें स्थान मिल चुका ?"

"हाँ।"

"फूल की क्यारियाँ ठीक हो गईं ?"

"माली काम कर रहा है।"

"रमणी बाबू कैसे हैं ?"

"लगभग अच्छे हो चुके हैं।"

तुम्हें रमणी बाबू कैसे आदमी मालूम होते हैं। मुझे एक सभ्य और सज्जन व्यक्ति ज्ञात होते हैं। इस बार मेरे एक मित्र ने बताया है कि अल्मोड़े और नागपुर दोनों स्थानों पर आप के विशाल भवन और जिमींदारी भी है। आप लखपती आदमी हैं। आप ने भी प्रयाग विश्वविद्यालय से इतिहास और दर्शन दोनों में एम० ए० पास कर लिया है। मेरा कम्पाउन्डर दिन-रात इनकी प्रशंसा ही किया करता है। आप की सज्जनता की परख इसी बात में हो गई कि अपने मित्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी बहिन को यक्ष्मा के रोग से छुड़ाने के लिये आपने क्या नहीं किया। आकाश और पाताल एक कर दिया। रमणी बाबू में हृदय है और हृदय बड़ी कठिनता के साथ मिलता है। धन और विद्या हृदय के सामने तुच्छ हैं।"

स्त्री जन सुलभ लज्जा से ओ३म् का चेहरा लाल हो गया। वह सब कुछ समझकर भी न समझ सकी कि पिता को क्या उत्तर दे। उसके हृदय में तूफान उठ खड़ा हुआ। बद्रीदत्त और रमणी बाबू

दोनों उसकी दृष्टि में द्वन्द युद्ध करते हुए सामने आ गये। वह काँप उठी। किन्तु वह कम्पन पिता पर प्रकट न हो सका। पाण्डेय उसे कितना प्यार करता है। उसकी दुनिया रमणी बाबू से व्याह कर लेने पर राख हो जायगी। परन्तु पिता के सामने विद्रोह कैसे किया जाय ? जिस पिता की बाल्यकाल ही से भावना रही हो कि मैं अपनी पुत्री का विवाह किसी लखपती से ही करूँगा उसकी आशाओं में दीपक की लौ कैसे लगा दी जाय ? मेरे पिता प्रत्येक प्रकार से मुझे सुख ही पहुँचाना चाहते हैं। उस सुख से भी उन्हें सुख मिलेगा। उनका आत्मा शान्त रहेगी। मैं उस सुख की घातिका कैसे बनूँ। किन्तु इस विवाह से मैं सुखी न हो सकूँगी। बद्री को भूलना असम्भव है। यदि पिता से बद्रीदत्त के विषय में कुछ कहूँ तो.........। किन्तु यदि पिताजी ने इन्कार कर दिया तब क्या होगा। मैं अपनी आत्मा के साथ उन्हें भी दुःख पहुँचाने का कारण बनूँगी। मैं सदैव पाण्डेय से दर्शन आदि के विषय में ही बातें करती रही। कभी उसके घर की परिस्थिति भी न पूछ सकी। यदि मुझे एक बार फिर कुछ दिनों का समय मिलता। परन्तु नहीं।

"क्या सोच रही हो बेटी ?" पिता ने बड़े प्यार से पूछा।

"कुछ नहीं।"

"तब, तुमने उत्तर क्यों नहीं दिया ?"

आज्ञा.........शिरोधार्य।

"जा, अपनी माँ को भेज दे।"

ओ३म् चली गई। उसके जाने के पश्चात् डाक्टर साहब बड़े जोर से खिलखिलाकर हँस पड़े। उनके मुँह से निकल पड़ा—ठीक है। एक घूट चाय का पीते हुए उन्होंने देखा कि ओ३म् की माँ चली आ रही हैं। उन्होंने पहुँचते ही पूछा—पूछ लिया ?

ताने के स्वर से डाक्टर साहब व्यङ्गपूर्वक बोले—और क्या तुम्हारी तरह मनमानी करने लग जाता।

"क्या कहा ?"

"सब ठीक है।"

"अब तनिक रमणी बाबू से भी पूछ लो।"

"वहीं जा रहा हूँ।" कहकर डाक्टर साहब ने चाय का कप खाली करते हुए कहा—पान रमणी बाबू के पास ही भेज देना और वे बाहर की बैठक में चले गये।

डाक्टर साहब के बैठक में प्रवेश करते समय रमणी बाबू एक पुस्तक के पन्ने उलट रहे थे। उन्हें एक ओर रखते हुए कुछ खिंचे हुए से बोले—आ गये डाक्टर साहब! नमस्ते।

नमस्ते का प्रत्युत्तर देते हुए डाक्टर साहब निकट की खाली कुर्सी पर बैठ गये। एक बार कमरे में चारों ओर भेद-भरी दृष्टि दौड़ाकर फिर रमणी बाबू के चेहरे पर एक विचित्र कौतूहलपूर्ण मुस्कान डालकर कुछ सचेष्ट होते हुए बोले—दुनिया गोल है। आना स्वाभाविक है। एक स्थान से चला हुआ व्यक्ति कभी न कभी चले हुए स्थान पर पहुँचेगा ही। आप का घाव कैसा है ?

"आप की यात्रा का अर्थ सिद्ध हुआ अथवा.........।"

"मेरी यात्रा सदैव ही पूर्ण रहती है। यात्रा क्या है—दो-चार दवाएँ, कुछ मरीज़ों की अन्यावश्यक सामग्री तथा बाल-बच्चों के लिये गहने-कपड़े और अन्त में बच्चों के लिये मिठाइयाँ। यही मेरी यात्रा का उद्देश्य है। न वकील हूँ न व्यापारी। आप का तरह कोई बड़ा जमीदार भी नहीं। परन्तु यह सब होता ही रहता है। आप के घाव में पट्टी बाँधने के समय के अतिरिक्त दर्द कब-कब होता है ?"

"दर्द अब बिल्कुल नहीं होता। घाव भरा ज्ञात होता है। उसमें कोई किसी प्रकार की खुजलाहट तक नहीं होती। जहाँ आप का हाथ लग जाय वहाँ भी सन्देह।"

"बात ठीक कहते हो किन्तु कभी-कभी मुझे अपने पर भी विश्वास नहीं रहता। यह तो समय और परिस्थितियाँ हैं। जो बन गया सो बन गया। आपरेशन कोई साधारण वस्तु नहीं है। तनिक भी चूक जाने में जीवन नष्ट हो जाता है। परन्तु मैं प्रति दिन आपरेशन भी नहीं करता। मेरा कार्य-क्षेत्र ही दूसरा है। आपरेशन में मेरा कम्पाउन्डर सिद्धहस्त है। मुझसे भी सुन्दर आपरेशन करता है। सम्भवतः उसके आपरेशन में आपको इतना कष्ट न सहना पड़ता। परन्तु वह उस दिन दो घण्टे बाद आया था।"

"डाक्टर भाटिया के हाथ से आपरेशन कराने वालों का भाग्य कुछ और ही होता है। कम्पाउन्डर सभी का आपरेशन कर सकता है। किन्तु जिसे डाक्टर भाटिया प्यार और सन्देह दोनों की दृष्टि से देखते हों उसका आपरेशन कम्पाउन्डर नहीं कर सकता।"

डाक्टर मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—सन्देह और कट्टरता की कसौटी ही पर आदमी को परखा जाता है। विश्वामित्र के राज्य ले लेने से ही हरिशचन्द्र की परीक्षा हुई थी।

"ठीक है। डाक्टर साहब, क्षमा करें। मैंने बड़ा उद्धतकार्य किया है। आप के उपकारों से दबा हुआ हूँ। उनसे मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है।"

"किंतु आज मैं तुम्हें उन उपकारों से मुक्त करने आया हूँ। अपने किये गये उपकारों का बदला चाहता हूँ। हैरान क्यों हो गये ? डाक्टर भाटिया भी बदला चाह सकता है।"

"आज्ञा दीजिये। मैं सब कुछ छोड़कर आप की आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हूँ।"

डाक्टर ने कहा—बदला बड़ा कड़ा है।

रमणी बाबू—ब्राह्मण हूँ। एक ही बार कहता हूँ। वे क्षत्रिय हैं जो तीन बार कहने पर प्रतिश्रुत होते हैं।

तब तक ओ३म् पान लेकर आ चुकी थी।

डाक्टर ने ओ३म् का हाथ पकड़कर रमणी बाबू के हाथों में दे दिया।

रमणी बाबू काँप उठे। परन्तु हाथ न हटे।

१४

अमा के अन्धकार में सम्पूर्ण सैनीटोरियम बड़ा भयानक लग रहा था। वृक्षों की शाखाएँ भूतों के हाथ-पैर से दिखाई देते थे। कहीं-कहीं डाली कट गई थीं। वहाँ पर भूतों के मुख का अनुमान लगाया जा सकता था। पोर्टिको के सामने का एक बड़ी लालटेन का टिमटिमा दीप किसी वस्तु को स्पष्ट करने के स्थान पर भ्रम उत्पन्न कर रहा था। यकायक सैनीटारियम के दवाखाने के खुलने का मर-मर रव हुआ। जहरवाली आलमारियों के कमरे में एक छाया बढ़ी और फिर कमरा बन्द हो गया।

कोने में रक्खी हुई आलमारी से मोमबत्ती मेज़ पर लाकर रक्खी गई। सम्पूर्ण कमरा एक क्षीण प्रकाश में हँस पड़ा। फिर दूसरी आलमारी खुली। उसमें से ज़हर की कई शीशियाँ निकालकर सामने रख ली गईं। मेज पर ज़हर की इतनी शीशिया सम्भवतः डाक्टर भाटिया के कम्पाउन्डर ने भी न रक्खी होंगी। अमुक ज़हर का असर देर में होगा। इससे पीड़ा भी होगी। अमुक से मनुष्य तुरन्त मर जायगा। ज़हर के 'लेबिल' देख-देखकर ढेर फिर आलमारियों में चले गये। केवल तीन शीशियाँ ही रह गईं। छाया मेज़ पर बैठ गई। ऐसा परिज्ञात होता था कि कोई

मादक अपनी मधुशाला में बैठा हुआ सोच रहा हो कि यदि उसकी कादम्ब हाला बन गई तो ! तब भी वह पियेगा। पीने में ही उसे सुख है। वह सदैव से पीता आया है।

परन्तु वहाँ मदिरा न थी। वहाँ तो जहर को वास्तविकता थी। जीवन और मृत्यु के बीहड़ प्रश्न थे। एक दूसरे कोने से एक गिलास भी लाकर रख दिया गया। बार-बार हाथ बोतल की काग तक जाता था और फिर रुक जाता था।

भावना-क्षेत्र में कुहराम मचा हुआ था। एक कोने पर बद्रीदत्त की स्थापना थी दूसरे कोने पर पिता का सहारा लिए हुए रमणी बाबू खड़े थे। बीच में ओ३म् थी। एक बार इधर झुकती, दूसरी बार उधर। फिर दोनों ओर से मुँह फेरकर कहती—नहीं, कुछ भी नहीं। यह गिलास ही सहारा देगा। बद्रीदत्त प्रेम के सहारे चलकर यहाँ तक पहुँचा है। रमणी बाबू पिता की आशा से आकर खड़े हैं। क्या करूँ ? बड़ी कड़ी होड़ है।

आत्म-हत्या ! परन्तु वह पाप है। मैंने आत्म-हत्या करने वालों को जीवन भर सबसे बड़ा पापी समझा है। आत्म-हत्या कायरता है। संसार से डरकर आत्म-हत्या की जाय ऐसा नहीं हो सकता। संसार का सामना करना होगा। जीना होगा। जीने के लिये मन की प्रतिद्वन्दिता स्वीकार करनी होगी। पिता के शब्दों को मानना होगा। अपने तड़पते हुए प्यार की आहुति देनी होगी। एक सुखी हृदय में कुहराम मचा देना होगा। वह मुझमें ही ईश्वर की कल्पना करता है। रूप द्वारा ईश्वर पाना चाहता है। कल उसका रूप और ईश्वर कहाँ चला जायगा। कल उसकी साधना यदि उससे विद्रोह कर उठे तो क्या होगा ? निराशा बड़ी घातक होती है। निराश होकर यदि मेरी तरह वह भी आत्म-हत्या की बात सोचने लगे तब क्या होगा ? इस पाप का कारण—इस आत्म-हत्या

का पाप-मुझी पर होगा। मैंने ही उसे प्यार सिखाया है। वह कर्तव्य समझता था। दीनता और दया में विश्वास करने वाला, जेलों में चक्कियाँ पीसने वाला व्यक्ति, जिसके हाथों के घट्ठे अब भी गड़ते हैं, जिसकी पेड़ियों के निशान अब भी साफ-साफ दिखाई देते हैं उसी पत्थर जैसे कड़े दिल में मैंने प्रेम का तीर मारा था। उस शुष्क जीवन को रसमय बनाने का मूल कारण मैं थी। मैंने ही उसे एक नये मार्ग का अनुकरण करने को बाध्य किया। आज उसे कैसे ठुकरा दूँ? किस तरह उसे अपने दिल के घाव और परिस्थितियों की चुनौती दूँ, उसकी अँगूठी........नहीं। इसे निकालकर फेंक दूँगी। किन्तु फेंकने से क्या लाभ? वापस कर दूँगी।

मन कहता है कि पिता से कह दूँ। मान जायँगे। फिर ध्यान आता है कि वे अपनी बात के बड़े पक्के हैं। उन्होंने एक बार जो कुछ सोच लिया उसे वे करके ही छोड़ेंगे। वे रूप और यौवन को समझ चुके हैं। उनके सामने यौवन की परिभाषा ही कुछ ऐसी निकृष्ट है जिससे हृदय से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। यौवन का उचित मूल्य जो भोग की कसौटी पर ही आँकता है उसके सामने स था है। डाक्टर कभी हृदय नहीं पहिचान सकता। यद्यपि यह अवश्य है कि वह दैनिक ही हृदय की परीक्षा करता है, अध्ययन से लेकर अपने व्यवसाय कार्य तक मौलिक रूप में उसे छूकर देख-कर ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु वह उस हृदय की वास्तविकता नहीं जान पाता। जानता है कवि—जिसने कभी स्वप्न में भी उस हृदय को चर्म चक्षुओं से नहीं देखा। डाक्टर कोरा डाक्टर है। वह शरीर की स्थूल वस्तुओं का ज्ञानी है तब भी हृदय को नहीं पहिचान सका। कला-कार! उसे तुम ही समझते हो। तुमने उसे खूब समझा है। कवि के मित्र हो। उस दिन तुम्हारी और कवि की मैत्री मुझे बुरी लग रही थी। उसकी अकर्मण्यता कहीं तुम्हें भी अपनी ओर आकर्षित न कर

लें। किन्तु नहीं, कवि के सहारे ही तुम हृदय के वास्तविक पारखी बन सके।

परन्तु अब तुम्हारे सामने आना भी पाप होगा। तुम्हें भूलना होगा। परन्तु भूलूँ कैसे ? कोई भी वस्तु आज तक भुलाई जा सकी है। समय पटल पर बने हुए वे चित्र क्षण भर के लिये आँखों से ओझल भले ही हो जायँ किन्तु मनुष्य अपना हृदय पक्ष कभी नहीं खो देगा। उसे सदैव याद रहेगा। अपने शरीर के घाव पुर जाने पर भी उनके दाग़ स्मृति दिलाते हैं। तुम्हारी चोट हृदय पर लगी है। वह कैसे भुलाई जा सकेगी। अब तुम विद्रोह भी नहीं कर सकते। यदि मैं विद्रोह कर दूँ, यदि मैं अपने पिता को धोखा देकर भाग जाऊँ तो क्या तुम मुझे स्थान दे सकोगे। किन्तु यह कायरता है। तुमने मुझे बीर बनाया है। मुझमें ईश्वर ढूँढ़ने का प्रयास किया है। मैं तुम्हारा ईश्वर बनकर कायर हो जाऊँ। तुमने छुट्टियों की समाप्ति के पूर्व आने को भी कहा था। अब चार ही दिन शेष हैं। तुम आए भी नहीं, न आओगे। न आओ। तुम्हारा आना भी सम्भवतः तुम्हारे दिल में कुहराम मचा दे। तुम अलखनन्दा कभी न आओ।

ओ३म् फूटकर रो पड़ी। बन्द दरवाजों से प्रतिध्वनि प्रयास करने पर भी बाहर न निकल सकी। मेज से कई बार मस्तक टकराया। शब्द होने लगा। मेज विद्रोह करने लगी। परन्तु उसका सुनने वाला वहाँ कौन था। घुँघुराले बाल बिखर गये थे। आसुओं की धारा बहकर गालों पर नदी बना रही थी। काले-काले बालों ने चन्द्रमा ऐसे मुख को बुरी तरह अपने में छिपा लिया था। आसुओं में वे बुरी तरह भीगकर लट के रूप में हो गये थे। उसका हाथ बार-बार मेज पर गिरता उठता था और उसकी सिसकियों के साथ काँप उठता था। सिसकियों को सुनकर दवाइयों की

आलमारियों में रहने वाले कीड़े भी चुप हो गये थे। मोमबत्ती भी जलकर अपनी समाप्ति पर आ गई थी। थोड़ी देर के बाद अँधेरा हो गया।

घन्टो इसी प्रकार पड़े रहने पर प्रातः होते देखकर ओ३म् ने कहा—एवमस्तु और दवाइयों को यथास्थान रखते हुए कमरे से बाहर हो गई।

उस समय उसके कमरे की घड़ी का पाँच का एलार्म बज रहा था। किन्तु अभी किसी की नीद नहीं खुली थी।

रमणी बाबू के कमरे की खिड़की खुली हुई थी। बाहर घनी रात के कारण कमरे का चीण प्रकाश अन्धकार में घुसता हुआ सा ज्ञात होता था। उनकी दृष्टि भी बाहर के अन्धकार से टकरा रही थी और विचारधारा भी किसी गहन पथ पर तीव्रता धारण किये हुए थी।

वे भी सायंकाल की अनोखी घटना पर विचार कर रहे थे। डाक्टर भाटिया का रहस्यपूर्ण व्यवहार किसी भी प्रकार उनकी समझ में ही न आ रहा था। वही कमरा था, वही कुर्सी जिस पर बैठे डाक्टर भाटिया वार्तालाप कर रहे थे। ओ३म्जी आईं और उनका हाथ मेरे हाथ में दे दिया। बिजली की चणिक चमक की भाँति सब कुछ हो गया। जादू का खेल, मदारी का चमत्कार सब इसके आगे फीका था। जीवन का सम्बन्ध एक चण में—कुछ देर सोचने को भी न मिला।

कुछ कहने को भी समय न रहा। यह भी डाक्टर का ऐक्सपेरीमेन्ट मालूम होता था। उसने अपनी भावनाओं के सामने अन्य के विचारों को कुछ समझा ही नहीं। सम्भवतः ओ३म्जी

से भी कुछ न पूछा गया होगा। उस दिन आते ही ओ३म्‌जी को सब कुछ सौंपकर डाक्टर साहब बाहर चले गये थे और आज फिर आते ही यह घटना—। उन्होंने किसी से नहीं पूछा। ओ३म् का इतना बड़ा बीस वर्षों का जीवन बाहर ही बीता है। अगर वह भी किसी को प्यार करती हो तो उसे कितनी बड़ी निराशा होगी। उसका जीवन कितना दुखमय हो जायगा। मैं उसे भली प्रकार क्षमा कर सकता हूँ। मेरे सामने उस प्यार का मूल्य बहुत अधिक है। किन्तु मैं अपने लिये नहीं उसी के लिये सोचता हूँ। मेरा अपना अब है ही क्या? मैंने 'नारी' के बारे में सोचा ही नहीं। यदि मैंने कभी सोचा भी है तो वह प्रिय बहिन सरोज के विषय में ही सोचा है। सोचने में उसी के बारे में समय न मिल सका। परन्तु मैं उसके लिये भी कुछ न कर सका। उसका घर भी न बसा सका। वह वीरान से ही उठ गई। बच्चा जब उत्पन्न होता है तब उसमें स्वभावत प्रेम की भावना अवश्य रहती है। धीरे-धीरे उस प्रेम में अंकुर उत्पन्न होता है। वह सब प्रेम केवल माँ के लिये ही रहता है। आगे चलकर उस प्रेम के बहुत साझीदार बन जाते हैं। ज्यों-ज्यों साझीदारों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्यार कम होता जाता है। कारण यह है कि प्यार सीमित है और उसे पाने वाले बहुत से लोग हैं। मनुष्य बिना प्यार पाये जी ही नहीं सकता। बिना सहारे के वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ा सकता। बुद्ध गोपा का प्यार लेकर ही तपस्या के लिये गये थे। गोपा का प्रेम इतना दृढ़ था कि अप्सराएँ भी गौतम को मोहित न कर सकीं।

परन्तु मैं—मैं क्या सोचूँ। मेरा प्यार मेरी बहिन के बाद भी उसी काल्पनिक बहिन से ही सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। ओ३म्

को मैं प्यार कर सकूँगा अथवा नहीं । पर इतना अवश्य है कि उसे अपनी धर्मपत्नी बना लेने में कोई त्रुटि नहीं—यदि वह सहमत हो।

एक बात और है। डाक्टर साहब में शीघ्रता क्यों दिखाई पड़ती है ? सम्भवतः मैं हाथ से निकल न जाऊँ। मैं तो कह चुका—डाक्टर का कोई एक्सपेरीमेन्ट होगा।

१५

"राही !"

"क्या है ?"

कहाँ जाओगे ?

"अलखनन्दा।"

"आज नहीं पहुँच सकते। रुको, विश्राम करो। भोर होते ही चले जाना। सन्ध्या हो चली है। आगे कोई ग्राम भी निकट नहीं मिलेगा।"

"न सही, हम दो हैं। चले जायँगे। संन्यासी, तपस्वी और शिकारी रात में ही जागते हैं।"

"अच्छा, अलखनन्दा में किसके यहाँ जाओगे ?"

"मालूम होता है कि बिना बताए हुए छुट्टी नहीं मिलेगी। हम लोग डाक्टर भाटिया के सैनीटोरियम में जायेंगे। अब छुट्टी दो। हम लोग चले।"

"क्या आप लोगों में से कोई यक्ष्मा से पीड़ित है ?"

"नहीं।"

"क्या आपके घर का कोई किसी रोग—"

"नहीं।"

"तब क्या आप डाक्टर साहब के कोई रिश्तेदार हैं ?"

"हाँ, कुछ इसी तरह समझो।"

"तब आप को अवश्य रुकना पड़ेगा ?"

"क्यों ?"

"मैं डाक्टर भाटिया का कम्पाउन्डर हूँ। मोटर से कुछ सामान लेने के लिये मैदान उतरा था। यहाँ आते-आते पेट्रोल समाप्त हो गई। आदमी गया है। सुबह तक पेट्रोल आ जायगी। मैं आप को मोटर पर पहुँचा दूँगा। आप रात्रि यहीं व्यतीत करें।"

"मैं कभी गाँव में रात्रि नहीं व्यतीत करता।"

"यह गाँव नहीं है।"

"अभी तुम्ही ने कहा है कि यह गाँव है। आगे कोई रहने के लिये गाँव न मिलेगा।"

मैंने उचित ही कहा है। यह केवल नाम का ही गाँव है। इसमें इस घर के अतिरिक्त कोई दूसरा घर नहीं है। हमारे मित्र ही इसमें रहते हैं। मैं इसीलिये यहाँ ठहरा हूँ। आप को भी आराम मिलेगा।

"मैं नहीं, किन्तु मुझे अपने शिकारी की चिन्ता अवश्य है। इसे सहायता चाहिये। सदैव नगर में ही रह आया है। मैं इसे बहुत कष्ट दे रहा हूँ।"

"और आप ?"

"मैं निकट ही झरने पर रहूँगा। प्रातः सूर्योदय के प्रथम ही उपस्थित हो जाऊँगा। आप मेरे विषय में तनिक भी चिन्ता न करें।"

"आपका भोजन ?"

"मेरे पास है।"

कवि चला गया। शिकारी कम्पाउन्डर साहब के निकट आकर बोला—चलिये।

कम्पाउन्डर आगे-आगे और शिकारी पीछे-पीछे चल पड़ा। थोड़ी देर में कम्पाउन्डर अपने मित्र की झोपड़ी के निकट पहुँच गया और एक कमरे का द्वार खोलकर बोला—आप तब तक यहीं आराम करें।

जलपान तथा भोजन के पश्चात् कम्पाउन्डर अपने उसी कमरे में आ गया। उसने अपना भी बिस्तर खोलकर पृथ्वी पर ही बिछा लिया। उसकी अकेली चारपाई पर एक ऊचा गद्दा बिछाकर एक सफ़ेद रेशम की चादर रखकर शिकारी का भी स्थान निश्चय किया गया। थोड़ी देर में शिकारी भी टहलकर आ गया। भोजनोपरान्त शिकारी का व्यायाम आवश्यक था।

"आप भोजन के बाद कहाँ चले गये थे?" कम्पाउन्डर ने अपने तकिये को मोड़कर उसके सहारे करवट लेते हुए पूछा।

"स्वास्थ्य नियमानुसार भोजनोपरान्त टहलना लाभदायक होता है। मैं कितना भी थक क्यों न जाऊँ परन्तु अपने टूटे-फूटे नियमों पर चलने का प्रयास करता हूँ।" शिकारी ने चारपाई पर बैठते हुए कहा।

"डाक्टर भाटिया भी प्रतिदिन सायंकाल भोजनोपरान्त आधे घन्टे बाहर टहलते हैं। मैंने भी कुछ दिन उनका अनुकरण किया किन्तु फिर नियम में शिथिलता आ गई। मनुष्य बड़ा कमज़ोर है।"

"उसे दृढ़ बनना चाहिये। कमज़ोरी मनुष्य का नाश कर देती है। विजय दृढ़ रहने से ही मिल सकती है।"

"जय और पराजय आप के लिये चाहे महत्व रखती हो परन्तु अब मेरे लिये इतनी साधारण हो गई है कि उसकी विवेचना करना

मैं अपनी ही मूर्खता समझता हूँ। सैनीटोरियम में कितने मरीज आते हैं। कोई अच्छा होकर जाता है। कोई अलखनन्दा में ही अपने शरीर छोड़ देता है। हमें कभी अपने चिकित्सा में सफलता मिलती है कभी असफलता। अब सफलता पर प्रसन्नता नहीं होती और न असफलता पर निराशा ही प्रकट करने का कोई कारण ज्ञात होता है। मृत्यु और जीवन साधारण हो गये हैं।"

"अपना-अपना दृष्टिकोण है।" शिकारी ने कहा।

"जाने दीजिये इन बातों को। अब तनिक घरेलू बातों पर विचार-विनिमय होने दीजिये। आप डाक्टर साहब के कैसे रिश्तेदार हैं? उनके भाई या अन्य कोई ?"

"मैं न तो उनका कोई रिश्तेदार हूँ और न सम्बन्धी ही हूँ। मेरा परिचय सूक्ष्म में इतना ही है कि डाक्टर साहब की सुपुत्री ओ३म्-जी मेरे साथ पढ़ती हैं। उनसे एक ही ओर का रहने वाला होने के कारण मित्रता हो जाना स्वाभाविक था। इस बार जब हम लोगों का समाज छुट्टियों के लिये चल पड़ा था तब ओ३म्जी का प्रस्ताव था कि हम लोग लौटते समय साथ ही मैदान चलेंगे। मैं उनका साथ लेने के लिये अलखनन्दा एक दिन पहले आ जाऊँ। इसी लिये चल पड़ा था।"

"और यह तपस्वी ?"

"वे मेरे मित्र हैं।"

"किन्तु आपके मित्र का स्वभाव अत्यन्त कड़ा है। स्वभावों की विपरीतता होते हुए भी आप में उनमें मित्रता एक आश्चर्य की वस्तु है। वह योगी आप विद्यार्थी।"

"परन्तु मेरे विचार में इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। केवल कुछ परिस्थितियाँ ऐसी समान हो गईं कि हम दो मित्र बन बैठे।"

"क्या तपस्वी सदैव आपके साथ रहते हैं ?"

"नहीं। इस समय वे हमारे साथ केवल भ्रमण करने के विचार से ही चल रहे हैं। उनकी इच्छा पर ही प्रत्येक बात निर्भर रहती है।"

"विकट तपस्वी है।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं।"

"आप ओ३मूजी के मित्र हैं। अतः उनके विषय में एक नया समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न होंगे। ओ३मूजी का विवाह परसों बड़े धूम-धाम से होगा। आप अवश्य चलें। उसमें आप का सम्मिलित होना सोने में सुहागे का काम करेगा।"

"बारात कहाँ से आएगी ?"

"आने-जाने का प्रश्न नहीं है। बारात नहीं आएगी। दूल्हा स्वयं उपस्थित है।"

"कुछ भी समझ में नहीं आया। आप हँसी कर रहे हैं ? मैं समझ गया।"

"आप कुछ नहीं समझे। मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। डाक्टर भाटिया का एक मरीज था। वह यक्ष्मा से पीड़ित था। उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई डाक्टर साहब के चाल में आ गया। विवाह तय हो गया। डाक्टर साहब कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं।"

"साधारण ही होते तो डाक्टर कैसे होते। वे अवश्य असाधारण व्यक्ति हैं। उनके प्रयोगों पर संसार के बड़े-बड़े डाक्टर चकित हो गये थे।"

"उनके जीवन के प्रयोग भी चलते हैं। दवा के प्रयोगों के अतिरिक्त उन्होंने मन सम्बन्धी तथा अवस्था सम्बन्धी प्रयोग भी किये हैं।"

"डाक्टर का काम ही क्या है। किन्तु ओ३मूजी का विवाह

इतनी शीघ्रता के साथ तय हो गया। इसमें आश्चर्य अवश्य है। उन्होंने मुझे सूचित भी न किया।"

"सूचित न करने का कारण डाक्टर साहब की शीघ्रता है। डाक्टर साहब की शीघ्रता का कारण उनके प्रयोग हैं। मैंने आप को बताया है कि डाक्टर साहब के जीवन सम्बन्धी प्रयाग भी चलते हैं।"

"जीवन सम्बन्धी और मृत्यु सम्बन्धी प्रयोग कैसे होते हैं। सभी प्रयोग जीवन सम्बन्धी होने चाहिये। मृत्यु सम्बन्धी प्रयोगों का करने वाला कोई पागल ही हो सकता है।"

"आप हमारी बात समझ नहीं सके। मेरा तात्पर्य यह है कि डाक्टर साहब एक कलाकार भी हैं। यदि वे साथ-साथ लेखक भी होते तो आज साहित्यकारों में उनका भी नाम होता।"

"आप का रहस्यवाद कुछ भी समझ में नहीं आया। यदि ऐसा होता—कि बात हो क्या है।"

"डाक्टर साहब जीवन को अच्छी तरह समझते हैं। अनेक वर्ष रूप और जवानी को समझने में व्यय कर चुके हैं। अवस्था का ज्ञान उन्हें भली प्रकार है। देखकर ही मनुष्य की प्रवृत्तियाँ पहिचान जाते हैं।"

"डाक्टर साहब रूप और जवानी समझ चुके हैं। जीवन का मूल्य अच्छी तरह जानते हैं। यह रहस्यवाद के अतिरिक्त और क्या है?"

"आश्चर्य में मत पड़िये। उन्होंने जवानी समझकर ही ओम्‌-जी का विवाह इसी छुट्टी में करना निश्चय किया है। मैं विवाह के सामान के लिये ही आया था।"

"वह मैं जानता हूँ। डाक्टर साहब की अवस्था क्या है?"

"लगभग ७० वर्ष।"

"तब अवश्य डाक्टर रूप और यौवन जानता है। किन्तु रूप और यौवन की अपेक्षा उसमें जीवन और मृत्यु अधिक सुन्दर समझने की क्षमता थी। मृत्यु और जीवन पर यदि डाक्टर ने विचारा होता तो वह सच्चा कलाकार होता। क्या डाक्टर ने कभी ईश्वर भी समझने का प्रयास किया है ? रूप और यौवन एक ही शब्द है। अवस्थाओं के अन्तर मात्र होने से इसमें मौलिक भेद नहीं है।"

"डाक्टर की परिभाषा भिन्न है। उसने रूप और यौवन तथा जीवन तीनों को तीन दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। तुम्हारा मित्र यौवन में योगी क्यों हो गया ? डाक्टर के लिये यह प्रश्न बहुत सरल है। वे स्वयं बिना कुछ पूछे ही उत्तर दे देंगे।"

"वह मैं पूछ ही नहीं सकता। मेरा मित्र योगी क्यों है इसे पूरा उत्तरी भारत जानता है। क्या आपने आज तक योगी कवि का नाम नहीं सुना है ?"

"अवश्य, क्या रूप और ईश्वर को समझने वाला योगी कवि है जिसकी वीणा और तम्बूरे पर सम्पूर्ण बन नाच उठता है। मनुष्य की कौन चलावे, सम्पूर्ण चेतन जगत गीत के स्वरों में लय हो जाता है।"

"वही योगी कवि प्रातः आपकी मोटर पर बैठकर यात्रा करेगा। आपको जो कुछ पूछना होगा उसी से पूछियेगा। वह उत्तर देगा। उसके पास संग्रहीत शस्त्र हैं। समय पर वह उन शस्त्रों का प्रयोग करता है।"

"आप को नींद आ रही है ?"

"कुछ ऐसा ही है।"

दोनों व्यक्ति निद्रा माता की गोद में शीघ्र विश्राम करने लगे। थकावट के कारण रात का बीतना ज्ञात न हुआ। प्रातः तपस्वी की पुकार पर दोनों उठे। कवि भीतर आया। कम्पाउन्डर ने झुककर नमस्कार किया। वह पैर भी छूना चाहता था। परन्तु कवि पीछे हट गया। उसने कभी किसी से अपने पैर नहीं छुवाए थे। वह बोल उठा—अतिथि का अपमान मत करो।

कम्पाउन्डर पीछे हट गये।

"आपका तेल आया?" कवि ने पूछा।

"वह सायंकाल ही आ चुका था। ड्राइवर गाड़ी साफ़ कर रहा होगा। हम लोग जलपान के पश्चात् प्रस्थान करेंगे।"

"अलखनन्दा अब कितनी दूर है?"

"दूर तो नहीं है किन्तु मोटर का दो घण्टे का रास्ता है। हम लोग दस बजे तक सरलता के साथ पहुँच जायँगे।"

"भगवान की जैसी इच्छा।"

———

१६

मन्त्री देशराज का मन्दिर लगभग पूर्ण हो चुका था। मन्त्री ने रात-दिन एक करके अपने स्वास्थ्य की वलि देकर विशाल मन्दिर को इतनी शीघ्रता के साथ समाप्त किया कि दर्शक तथा नित्य प्रति के यात्री आश्चर्य करते थे। मूर्ति की स्थापना भी हो गई। बड़े साधारण ढंग से पूजा इत्यादि का प्रबन्ध भी कर दिया गया। मन्त्री दो-चार दिन तक किसी प्रकार अपने मन को बहलाता रहा किन्तु उसे तुष्टि न हुई। उसका न्याय अधूरा था। पुजारी के ऊपर आरोपित अपराधों की पुष्टि विधान द्वारा आज तक प्रतिपादित न हो सकी थी। मन्त्री भली प्रकार समझता था कि कवि के बिना न्याय की इस उलझी हुई गुत्थी को दूसरा कौन सुलझा सकता है। परन्तु कवि की छान-बीन करने पर भी उसके विषय में निराशा ही हुई। मन्त्री का न्याय सम्पूर्ण राज्य में प्रसिद्ध है। राजा स्वयं मन्त्री के न्याय से प्रभावित था। उसने कभी भी मन्त्री के न्याय में परिवर्तन नहीं किया। अन्य देशों के झगड़े उसने भली प्रकार क्षण भर में निपटा दिये हैं। कितने रहस्यों का पता लगाकर अपराधियों को दण्ड दिया है। प्रजा ने देशराज की सेवाओं के कारण ही मन्त्री देशराज से न्याय मन्त्री देशराज कहना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु

आज मन्त्री का न्यायासन डोल रहा है। उसे अब जगन्नाथजी ठहरना भी अधिक दिन नहीं है।

एक दिन मन्त्री ने विचारा कि यदि वह स्वयं ही कवि की खोज में बाहर जायगा तो सम्भव है कवि मिल जाय। यदि वह न भी मिला तो देशाटन हो जायगा। काम के भार से ऊब गया हूँ। थोड़ा स्वास्थ्य लाभ ही रहेगा। अतः मन्त्री ने घोषणा की कि वह लगभग दस दिन के लिये अकेले पहाड़ियों की ओर जाना चाहता है। सहायक मन्त्री को कार्य सौंपकर एक रात्रि में मन्त्रीजी बिना किसी को सूचित किये हुए ही अदृश्य हो गये।

कई दिनों के पश्चात् वे महानदी के उपजाऊ मैदान में पहुँचे। दिन भर पैदल चलने के कारण वे थक गये थे। एक वृक्ष के सहारे वे श्रम निवारण कर रहे थे। उन्हें नींद आ गई और वे सो गये।

मन्त्री देशराज सदैव आभूषण पहनते थे। उनके कानों में बालियाँ रहती थीं। हाथों में कड़े गले में सदैव एक सोने की मोटी जन्जीर और उनका तावीज लटका करता था। मन्त्री का सौन्दर्य आभूषणों के कारण और भी निखरा पड़ता था। बिना मुकुट के वे किसी राजा से कम नहीं थे। उनका व्यक्तित्व भी बड़ा आकर्षक था।

गोधूलि बेला में अभी कुछ देर थी। कछार के किनारे से पानी पीकर गौवें घर की ओर चरती हुई चली जा रही थीं। चरवाहे बालक तथा बालिकाएँ अपने खेल का अन्तिम भाग जीत और हार के निर्णय में तल्लीनता के साथ लगाये हुए थे। कारण यह था कि थोड़ी ही देर में उनका पशु समुदाय घर की ओर चलने लगेगा।

दिनेश भी अपने दादा की गायें चरा रही थी। गिल्ली-डन्डे में उसका दाँव हार चुका था। वह हारकर दूर बैठकर निराशा की दृष्टि से खेल के अवशेष को देख रही थी। इतने में उसे कुछ प्यास प्रतीत हुई। वह उठी और कुछ कंकड़ बटोरती हुई उस गरी के वृक्ष की ओर चल पड़ी जिसके सहारे मन्त्रीजी लेटे निद्रा का सुख भोग रहे थे। हार के मद में भूली हुई दिनेश ने नीचे न देखकर ढेले नारियलों पर बरसाने प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी देर के परिश्रम में लगभग आठ नारियल गिर पड़े। ढेलों के शब्द तथा नारियल के टूटकर गिरने की ध्वनि ने महामन्त्री को सचेत कर दिया। कारण यह था कि एक नारियल भी लुढ़कता हुआ मन्त्री-जी के बिल्कुल निकट ही गिरा था। दिनेश ने समझा था कि आगन्तुक को चोट लग गई होगी। वह शीघ्र ही निकट आई और अपनी त्रुटियों के लिये उसने क्षमा माँगी। मन्त्री स्वयं प्यासे थे। उन्हें भूख भी लगी थी। क्षमा के उत्तर में उन्होंने नारियल बालिका से ले लिया और अपनी प्यास बुझाई।

दिनेश मन्त्री के गहनों और वेशभूषा को देखकर बहुत प्रसन्न थी। उसकी लालायित आँखें गहनों से टकराकर लौट आयीं। मन्त्री समझ गये थे। उन्होंने लड़की को निकट बुलाया और उसका परिचय पूछा। दिनेश ने अपना पूर्ण परिचय दे दिया। मन्त्री ने अपने गले का हार निकालकर कहा—तुम इसे चाहती हो ?

दिनेश ने कहा—बहुत अच्छा है। यदि मेरे पास होता...

मन्त्री—इसे ले जाओ। मैं तुम्हें दे रहा हूँ।

दिनेश—किन्तु मैं नहीं ले सकती।

मन्त्री—इसका कारण ?

दिनेश—बाबा ने कहा है कि किसी की वस्तु मत लो। मेरा धर्म देना है। किसी से कुछ लेना नहीं।

मन्त्री—तुमने मुझे नारियल दिये हैं। मेरी प्यास बुझाई है। उसी का बदला है। तुम बदले में कोई वस्तु ले सकती हो।

दिनेश—बाबा कहते हैं कि बदला और भी बुरा होता है। किसी के साथ कुछ करके उसका प्रतिकार नहीं माँगा जाता।

मन्त्री—तब किस तरह तुम्हें दूँ। तुम्हारा हृदय चाहता है कि तुम इसे ग्रहण करो। तुम्हारे बाबा का आदेश इसके विपरीत है। किन्तु यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?

"बासुरी है।" लड़की ने उत्तर दिया।

"तुम गाना भी गा सकती हो ?"

"क्यों नहीं ?"

"फिर एक गीत सुना दो।"

"तुम्हें गीत न सुनाऊँगी, तुम फिर बदले में कुछ देने लगोगे। मेरे मन में आज न जाने क्यों लालच समाई हुई है।"

"मैं कुछ नहीं दूँगा। मैं स्वयं लालची हूँ। लालची के मन में सदैव लेने की ही बात रहती है। देने की बात कभी सोचता ही नहीं।"

"परन्तु अभी तुम जंजीर दे रहे थे।"

"अब नहीं दूँगा। गीत सुना दो।"

दिनेश ने किसी का आग्रह नहीं टाला था। उसने एक करुण गीत सुनाया। मन्त्री बड़े प्रसन्न हुए। बालिका की शिक्षा पर उन्हें आश्चर्य हो रहा था—वे बार-बार उसके गीत को दुहरा रहे थे—'सपनों का अंचल लहराया। बहुत सुन्दर गाया।' दिनेश समझ रही थी कि पथिक ने सम्भवतः कभी गीत सुना ही नहीं है। इतनी प्रशंसा किसी ने न की थी। उस दिन शिकारी भी न बोल सका था। अपने कौतूहल को शान्त करने के लिये उसने पूछा—क्या कभी आपने गीत नहीं सुना है ?

"प्रतिदिन ही सुनता हूँ। किन्तु तुम्हारे समान बालिका का इतना सुन्दर गीत नहीं सुना। तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"मेरा घर थोड़ी ही दूर है। चलोगे ? हमारे बाबा अतिथि का बहुत सत्कार करते हैं। रात हो रही है। चलो हमारे यहाँ ही सो रहो।"

मन्त्री ने स्वीकृति दे दी। बालिका ने अपनी गाएँ एक ओर कर लीं। डंडा कन्धे पर रख लिया और चल पड़ी। महामन्त्री पीछे-पीछे चले। बछिया और बछवे बालिका को घेरे हुए चलते थे। कभी उसका अधोवस्त्र खींचते, कभी उसकी टाँगों के बीच आ जाते, कभी दूर तक दौड़ जाते और कभी खड़े पीछे रह जाते थे। जब कोई पीछे रह जाता तब बालिका पुकारती—श्याम नाराज़ न हो जाओ। राधा रूठ जायगी। उसने अपनी बछियों और बछवों तथा गायों के भी नाम रक्खे थे। लता, श्यामा, राधा, रघुवीर, बलराम आदि उसके नाम थे जिनके द्वारा वह किसी को भी पुकारती थी। पशुओं पर मनुष्य की भाँति केवल नाम पुकारकर ही अपना प्रभुत्व स्थापित करने का काम सुन्दर बालिका को भली प्रकार आता था। महामन्त्री को उस बालिका की प्रत्येक बात बहुत अच्छी लग रही थी। वे भी उस झुण्ड में थे किन्तु बछवे और उसकी राधा तथा श्यामा दूर ही रहती थीं। मन्त्री भी चाहते थे कि पशु के बच्चे उनसे भी खेलें किन्तु महामन्त्री से खेलने का साहस कौन कर सकता है।

थोड़ी देर में घर आ गया। बालिका ने द्वार पर सब को बाँध दिया। पथिक को संकेत करके वह भीतर ले गई। बाबा एक आसन पर बैठकर सन्ध्या कर रहे थे। महामन्त्री बैठ गये। बालिका चली गई। उसने अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ कर दिया। दो बड़ी-बड़ी पीतल की बाल्टियाँ बालिका का हाथ लगते ही

चमकने लगी। मालूम होता था कि वे सोना हैं। उनमें जल भर-कर पथिक को बुलाकर हाथ-पैर धुलवाये और फिर जल-पान के लिये एक थाली में मेवे लाकर रख दिये।

"खाओ अतिथि" सन्ध्या का आसन छोड़ते हुए बुड्ढे ने कहा।

'आपकी आज्ञा की बाट जोह रहा था।' कहकर मन्त्री जल-पान करने लगे। भूख से क्षुब्ध देशराज ने थोड़ी देर में थाल खाली कर दिया। बाबा आगन्तुक को छोड़कर दूध दुहने के लिये चले गये। लड़की भी उन्हें सहायता पहुँचाने के लिये बाहर चली गई। महामन्त्री अकेले रह गये। वे सोचने लगे—इन दो व्यक्तियों के परिवार के सुख के सम्बन्ध में। उन्हें दुःख का ध्यान ही न रहा। जीवन का वास्तविक चित्रण पाकर महामन्त्री को कुछ शान्ति हुई। परन्तु बालिका को देखकर उन्हें अपनी पुत्री प्रेमा की याद आये बिना न रही। वे अपनी प्यारी पुत्री के विषय में बड़ी देर तक सोचते रहे। एक दिन वह रानी बनेगी। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि वह महामन्त्री देशराज की कन्या है। उसकी सम्पूर्ण ममता रानी तारा में ही निहित है। ठीक ही है। मेरी रानी तारा का प्रेम-परिवर्तन—कुछ भी हो, रानी रानी है।

'ठण्डा दूध पीते हो या गरम ?" बुड्ढे बाबा ने प्रवेश करते हुए पूछा। उनके चेहरे पर श्रम की बूँदें आ गई थीं।

"मैं ताजा और ठण्डा ही पीता हूँ।" मन्त्री ने अनमनस्क होकर उत्तर दिया।

बाबा ने भरा हुआ गिलास बढ़ा दिया। मन्त्री पी गया। बाबा ने बाल्टी से धवल दुग्धधारा फिर उसके गिलास में गिराई। मन्त्री दूसरा गिलास भी खाली कर गया। बुड्ढे ने तीसरा गिलास भर

दिया। वह भी खाली हो गया तब कहीं मन्त्री ने गिलास पृथ्वी पर रक्खा।

बाल्टियाँ पृथ्वी पर रखते हुए मन्त्री से बुड्ढे ने कहा—आप कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जायँगे? आपका परिचय।"

"परिचय बहुत सीधा-सा है। जयगढ़ का राजमन्त्री देशराज राज्य के कामों से घबड़ाकर दो-चार दिन इधर-उधर भटकना भी पसन्द करता है।"

"महामन्त्री देशराज! मेरा मित्र कवि आप से भली प्रकार परिचित है। आपके न्याय की प्रशंसा वह मुक्त-कण्ठ से करता था। उसका कहना है कि आपके समान न्यायप्रिय मिलना कठिन है। आज मेरा अहोभाग्य। आप मेरे अतिथि हैं।"

"मेरा अहोभाग्य कि आप ऐसे ऋषि के दर्शन कर सका। आपकी पुत्री बड़ी ही चतुर है। उसी की अनुकम्पा से मैं आपके द्वार पर आ सका।"

"बालिका अबोध है। यह मेरा भाग्य है जो आपको मेरे द्वार तक खींच लाया।"

"परन्तु आपकी शिक्षा का प्रभाव बालिका पर पूर्णरूप से है। उसे कम से कम अतिथि का सत्कार करना भली प्रकार ज्ञात है। उसने मुझे नारियल तोड़कर दिये जिससे मेरी प्यास बुझी। मैं प्यास और भूख के कारण थककर बैठा हुआ था। मुझमें तनिक भी शक्ति न थी। बालिका मेरे आभूषण देखकर कुछ सकुचाई। मैं समझ गया। मैंने अपना हार उतारकर उसे देना चाहा किन्तु उसने इन्कार कर दिया। मैंने विभिन्न प्रकार से सिद्ध करना चाहा कि हार मैं उसके कर्तव्य के मूल्य में दे रहा हूँ परन्तु असफल रहा। अब मैं चाहता हूँ कि अपने सम्पूर्ण आभूषण बालिका को दे दूँ। मुझे वह अपनी लड़की ज्ञात होती है। मेरे भी एक इतनी बड़ी ही

लड़की होती परन्तु। बुड्ढे बाबा, मुझे उसे अपने आभूषण पहना देने में सुख होगा। मुझे तुम ऐसा करने में मत रोकना, नहीं तो मेरी आत्मा को चोट लगेगी।

"महामन्त्री को सब कुछ अधिकार है।"

"कवि कहाँ है ?"

"अजमेर में।"

"कब आयेगा ?"

"तिथि निश्चित नहीं है किन्तु वह आयेगा निकट भविष्य में ही। कवि, योगी तथा सन्यासियों के विषय में तिथि निश्चित करना सरल नहीं।"

"मैं कवि से मिलना चाहता हूँ। यदि वह न मिला तो मेरा न्याय अधूरा रह जायगा। मेरे न्याय में सहायता केवल कवि ही दे सकता है। उसकी मुझे बड़ी आवश्यकता है।"

तब तक दिनेश आ गई थी। मन्त्री ने उसे अपने पास बड़े प्यार से बुलाया और एक-एक करके अपने सम्पूर्ण आभूषण दिनेश को पहना दिये। पगड़ी उसे खेलने के लिये दे दी।

"इन्हें पहचानती हो बेटी !"

"अतिथि।"

"नहीं, जयगढ़ के मन्त्री देशराज, न्यायमन्त्री देशराज यही हैं।"

१७

सम्पूर्ण सैनीटोरियम सजा हुआ था। चारों ओर झंडियाँ लग हुई थीं। दरवाजे पर शहनाई और घर में रेडियो बज रहा था। दिन डूब गया था। परन्तु सैनीटोरियम में अँधेरा न था। हजारों दीप चारों ओर जगमगा रहे थे। घर के भीतर पण्डितजी अपना लोकाचार कराने में तल्लीन थे परन्तु डाक्टर साहब अपने कम्पाउन्डर की प्रतीक्षा में न जाने क्या-क्या सोच रहे थे। ब्याह की पीली रेशमी साड़ी ही मुख्य थी जिसके लिये डाक्टर अधिक चिन्तित थे। कभी सोचते थे कि कम्पाउन्डर स्वयं गाड़ी चलाने में पथ से विपथ पर चला गया हो तो आज पाँच हजार रूपये पानी में पड़ जायँगे। निराश होकर उसने एक गर्म श्वास खींची और व्रत के कारण थकी हुई देह का भार कम करने के लिये वे घर में गये।

विवाह का मुहूर्त निकला जा रहा था। अतः दूसरी पीली साड़ी से ही काम निकालना उचित समझा गया। ब्याह प्रारम्भ हो गया। भाँवरे पड़ने लगी। इतने में नौकर ने सूचना दी कि कम्पाउन्डर साहब आ गये। उनके साथ दो दूसरे अतिथि भी हैं। अतिथि तथा कम्पाउन्डर घर के भीतर मण्डप के निकट बैठ गये। भाँवरे पड़ रही थी और शिकारी बैठा हुआ अपनी भाग्य-विडम्बना की माप कर रहा था। अचानक वह उठ खड़ा हुआ। कवि

को उसने बाहर बुलाया। बाहर आते ही शिकारी रो उठा। वह कवि के चरणों पर गिर पड़ा। कवि ने उठाकर छाती से लगा लिया।

"अधीर हो उठे ?"

"हृदय जो है।"

"अब भी सुधार हो सकता है।"

"वह सुधार नहीं अनर्थ होगा।"

"एक बात मानोगे ?"

"कहो ?"

"लौट चलो।"

"अभी ?"

"इसी समय।"

"कम्पाउन्डर क्या कहेगा ? तुम्हें अपनी प्रियतमा को आज दूसरे घर नहीं अपने पति के घर जाते समय उपहार देना चाहिये। उसे अन्तिम विदा देकर प्रसन्न रखने की चेष्टा करनी चाहिये। तुम आज हताश हो ? तुम्हारी निराशा तुम्हें खा जायगी। कायर न बनो।"

"अगर बेहोश हो गया तब क्या होगा ?"

"तब चलो। अभी कमजोर हो। यही रूप की प्रतिक्रिया है। शिकारी ! आज भी तुम बालक हो। तुम सहारा चाहते हो। चलो, तुम्हें ऐसा सहारा दूँ कि तुम्हारा जीवन सफल हो जाय। किन्तु तर्क को छोड़ दो। सरलता में रूप ढूढ़ो। मूर्खता में ईश्वर ढूढ़ो। ज्ञान में तथा उसके बनाए हुए वहिर्जगत से हटकर सरल भावनाओं में आओ। तुम्हें वह मिलेगा जो तुम चाह रहे हो। मैं तुम्हें ठीक ही पहचान गया। तुम्हारे टूटे हुए दिल को मैं जोड़ दूँगा। तुम्हारी मृत आत्मा में मैं जीवन फूँक दूँगा। तुम्हें हारकर भी जिता

दूँगा। तुम्हारे स्वप्न को सत्य बना दूँगा। तुम्हें रूप में ईश्वर दिखा दूँगा। और क्या चाहते हो ? चलो, बहुत दूर चलना है। महानदी के कछार में मेरा मित्र मेरी बाट जोह रहा है।" कहता हुआ कवि आगे बढ़ गया। शिकारी ने भी अनुकरण किया।

वे कुछ ही दूर गये होंगे कि डाक्टर भाटिया की मोटर फिर आ गई। डाक्टर साहब उतर पड़े। उन्होंने कहा—आप हमारे अतिथि थे। आपके मैं दर्शन भी न कर सका और आप चल पड़े ? अपराध क्या था ? आप लौट चलें, प्रातः जहाँ कहेंगे पहुँचा दूँगा। आइये, मोटर में बैठ जाइये।

"लौटने की आवश्यकता नहीं, जिस वस्तु को हम ढूँढ़ने आए थे वह वस्तु हमें मिल गई। अब लौटना ही यथेष्ट है। जीवन में जो संघर्ष लेकर आया था वह बिना आपके मिले हुए ही पूरा हो गया।"

"किन्तु मेरी लड़की का ब्याह ?"

"उसके लिये अनेक बधाइयाँ।"

"थोड़ी देर के लिये ही लौट चलें ?"

"सन्यासी कभी दो बार कोई बात नहीं कहता। मेरा एक प्रश्न था 'रूप क्या है' ? उसका उत्तर मिल गया। जवानी समझ में आ गई।"

"इतनी शीघ्रता में समझ गये ? मैंने उसे वर्षों में समझा है। आप इतने शीघ्र समझ गये ? आप ही लौट चलें।" डाक्टर ने शिकारी की ओर संकेत किया।

"क्षमा करें मैं योगी का साथ नहीं छोड़ सकता।" शिकारी ने उत्तर दिया।

"मेरी लड़की ओ३म् के आप मित्र हैं। आपको उसके ब्याह में सम्मिलित होना चाहिये। मानव धर्म यही है।"

"मुझे जिस कार्य से शान्ति मिलती है वही करता हूँ। यह मेवों का थैला और यह डिब्बा उसे दे दीजियेगा। मैं स्वयं आपसे क्षमा माँग रहा हूँ। फिर कभी उपस्थित होऊँगा। इस समय जाने दें। इसीमें सब का भला है।"

डाक्टर निराश हो गया। उसने मोटर में बैठकर उसका फाटक घुमाकर बन्द करते हुए कहा—कभी-कभी छोटी-छोटी घटनाएँ भी मनुष्य के जीवन में कुहराम मचा देती हैं। यह वैसी ही घटना है।

मोटर लौट गई। कवि और शिकारी चल पड़े।

"दिल टूटकर भी जुड़ता है?" शिकारी ने पूछा।

"ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार घाव के बाद दोनों तरफ के मांस मिलकर एक हो जाते हैं। जीवन कोई कच्चा घड़ा नहीं है जिसे तोड़कर कोई जोड़ नहीं सकता। जीवन वह परदा है जिस पर प्रत्येक रंग चढ़ सकता है। पक्के से पक्का रंग चढ़ जाने पर भी उसका रंग अच्छा धोबी धो सकता है। जब फिर सफेदी आ गई तब जो रंग चाहिये चढ़ा दीजिये। आज ठोकर खाकर मनुष्य गिर पड़ा है। कल उसकी ठोकर अच्छी हो जायगी। वह फिर उसी तरह तनकर चलेगा। गिरना बढ़ना जीवन का क्रमिक विकास है। आदमी हारता है तब भी सीखता है; जीतता है, तब भी सीखता है। मेरे विचार से हारकर ही वह अधिक सीख पाता है। जीतने पर उतना अधिक नहीं सीख सकता। उसका कारण यह है कि उसको जीत में इतना आन्दोलन है कि वह उसी में विभोर हो जाता है। सोचने का, पश्चात्ताप करने का समय उसे हारने पर ही मिलता है। जीवन से निराश होना सबसे बड़ी भूल है। दुनिया के जितने भी कार्य हैं वे मनुष्य मात्र के लिये केवल प्रयोग हैं। इनसे घबराना ठीक नहीं।"

"तुम कहते हो कि जियो, जीना होगा।"

"हाँ, तात्पर्य यही है। मेरे लिये जियो!"

"यह कैसे ?"

"महानदी पर चलकर बताऊँगा।"

फिर दोनों अविराम पथ पर चल पड़े।

उधर सैनीटोरियम में सुहाग रात मनाई जा रही थी। सजे हुए कमरे में रमणी बाबू बैठे थे। चारपाई पर एक ऊँचा गद्दा बिछा हुआ था। सामने एक मेज लगी हुई थी। उस पर एक फूलदार मेज-पोश पड़ी थी। सहसा कमरे का परदा हिला और एक हाथ में मिठाई की तश्तरी और दूसरे हाथ में पान की तश्तरी लिये हुए वधू ने प्रवेश किया मेज पर तश्तरियाँ रख दी गईं। ओ३मूजी ने अपने घूँघट में से ही हाथ जोड़ दिये।

रमणी बाबू मुस्करा उठे। उठकर हँसते हुए ओ३म् को अपनी चारपाई पर बिठाया और नमस्ते का उत्तर गाल पर एक चुम्बन की छाप से दे दिया।

"आप बड़े खराब हैं ?"

"आप से कम कम।"

"मनुष्य बड़ा विभत्स है।"

"नारी के सामने ही।"

ओ३मजी ने अपनी आँखें बन्द करते हुए भुजपाश में रमणी बाबू को लपेटते हुए कहा—और यही जीवन है।

रमणी बाबू एक बार फिर अपने चुम्बन की मुहर लगाते हुए बोले—मुझे आज अपने भाई की याद आ रही है।

"विवाह के समय परिवार को याद आना स्वाभाविक ही है।"

"ऐसी बात नहीं है। यह किताब चित्रलेखा मेरे भाई की है। उसका नाम भी इस पर लिखा हुआ है। वह भी प्रयाग ही पढ़ने

गया है। एम० ए० का वह भी विद्यार्थी है। केवल मुझे उसका विषय नहीं ज्ञात है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह किताब यहाँ कैसे आई। मैं उसकी किताब कैसे उठा लाया। फिर सोचता हूँ कि भूल से आ गई होगी।"

"बद्रीदत्त पाण्डेय आप का भाई है?"

"तुम उसे जानती हो?"

"मेरे सहपाठी हैं। उन्होंने भी हिन्दी ली है।"

"उसे दर्शन का विद्यार्थी होना चाहिये।"

"लेकिन बात वैसी नहीं है। वे मेरे मित्रों में से हैं। उन्होंने इस बार लौटते समय मेरे यहाँ आने को भी कहा था। परन्तु न जाने क्यों न आए। यह पुस्तक उन्होंने मुझे चलते समय दी थी। हमारे पाठ्यक्रम की पुस्तक है। आपके बिस्तरे के साथ नहीं आई थी।"

ओ३म् बद्रीदत्त को न पाकर भी पा चुकी थी। यही वह सोच रही थी कि उसके पति ने चुम्बन की तीसरी छाप उसके ओठों पर जमा दी।

१८

'बहुत थक गया हूँ कवि !'

"सामने गाँव भी दिखाई पड़ रहा है। एक बार और प्रयास करके देखो। तुम्हें तुम्हारा निवास-स्थान मिल जायगा।"

"बिल्कुल चल नहीं सकता।"

"आराम कर लो। थोड़ा जल पीकर तब चलेंगे। इन गिरे हुए नारियलों का उपयोग होना चाहिये। प्रकृति की भेट भी अस्वीकृत करना ठीक नहीं।"

कवि ने नारियल तोड़कर जल पिया और शिकारी को भी पिलाया। शिकारी फिर चलने के लिये उद्यत हुआ। दोनों चलकर पर्णकुटी पर पहुँच गये। दिनेश के स्वागत ने कवि और शिकारी दोनों की थकावट दूर कर दी।

रात्रि में सभी उस चौपाल में बैठे जहाँ एक दिन दिनेश ने अपना गीत सुनाया था। तपस्वी आज ग्राम से भाग कर न गया। बुड्ढा कुछ अचम्भित था। वह जानता था कि आज कुछ नवीनता अवश्य है। कवि का प्रसन्न मुख उसक' त्यक्ष प्रमाण है।

"शिकारी एक उचित पात्र है। दादा, मैं चाहता हूँ कि दिनेश को इसे सौंपकर मुक्त हो जाऊँ। अब कब तक भार ढोया जायगा। आपकी क्या राय है ?"

"तुम्हीं दिनेश के भविष्य हो। तुम्हारी बात कौन काट सकता है। तुमसे अच्छा कौन होगा जो पात्र ढूँढ़ सकेगा। तुम्हारी बात मुझे मान्य है।"

"कल शुभ लग्न में विवाह हो जाय तो आप को कोई विशेष कठिनाई न होगा।"

सब कुछ तुम्हें करना है। मैं कुछ नहीं जानता। एक बात शेष कहनी है। राजमन्त्री देशराज ने तुम्हें बुलाया था। उनका न्याय ही तुम्हारे बिना अधूरा है। आज से दो दिन बाद रानी के समक्ष उनका अन्तिम न्याय होगा यदि तुम न पहुँच सके तो मन्त्री के न्याय का चाट पहुँचेगी।

"मैं उस दिन अवश्य जाऊँगा। रात हो गई। मुझे आज्ञा मिले। न ग्राम से बाहर जा रहा हूँ।"

दूसरे दिन कवि ने विवाह का सुचारु रूप से प्रबन्ध किया। मण्डप सजाकर एक नये ढङ्ग से कवि ने हिन्दी भाषा में मन्त्रों के अर्थ का उच्चारण करवाकर विवाह कराया। सम्पूर्ण गाँव के लोग उपस्थित थे। प्रीति भोज हुआ। चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। तब तक एक बालक ने सूचना दी कि तीन पालकियाँ कवि को पूछती हुई चली आ रही हैं। कवि बाहर निकल आया। उसने देखा कि महामन्त्री देशराज और दो अन्य व्यक्ति अपनी-अपनी पालकियों से निकल रहे हैं!

"आप लोगों का स्वागत हो। महामंत्री देशराज का आशीर्वाद।"

"कवि की जय हो।" महामन्त्री ने कहा।

"आप ही कवि हैं?" ओ३म् ने कहा।

"आप का परिचय।"

"मैं ओ३म् हूँ। आप मुझे नहीं जानते। आपका शिकारी कहाँ है? क्या उसने आपका साथ छोड़ दिया?"

उसने अवश्य छोड़ दिया था परन्तु मैंने उसे बाँध लिया है। आपने बड़े समय पर पधारने की कृपा की है। उसका कल ही ब्याह हुआ है। आज प्रीतिभोज है। चलिये भीतर चलिये। महामन्त्री पधारें।"

"किन्तु मैं यहीं से लौट जाऊँगी। मैं ईश्वर समझ चुकी हूँ।"

"रूप और यौवन को समझने वाले की पुत्री यदि ईश्वर को समझ गई है तो आश्चर्य ही क्या है। आपका शब्द बदले की आग से ओत-प्रोत है। आप ओ३म् नाम भले ही रख लें किन्तु अभी आपने कुछ नहीं समझा है।" फिर भी जाने वाले को कौन रोक सका है। मैं आने वालों का स्वागत करता हूँ। जाने वालों का स्वागत करना मेरा धर्म नहीं। जाने वालों को बिदाई देने के लिये इस समय वर और बधू हैं।"

"किन्तु मुझे क्यों लौटा रहे हो। मैं शिकारी से मिलकर ही जाऊँगा। उससे कहिये कि तुम्हारा भाई रमणी द्वार पर खड़ा है।"

मैं स्वागत करता हूँ। आप भीतर प्रवेश करें। महामन्त्री को कष्ट हो रहा है।

"कवि, आप वास्तव में कवि हैं, मुझे क्षमा करें" और ओ३म् बिना उत्तर पाए ही भीतर प्रवेश कर गई। मंत्रीजी और रमणी बाबू भी भीतर गये।

मंत्री ने बधू के सामने आभूषणों के ढेर लगा दिये। ओ३म् और रमणी बाबू ने भी इतना वैभव न देखा था। बुड्ढा ऐश्वर्य देखकर चकित रह गया। उसकी आँखों में आँसू छलछला आए।

"कवि को गहनों का ढेर कुछ अच्छा न लगा। वह बोल उठा—महामंत्री गहनों से कवि को खरीदने का प्रयास कर रहे हैं। किन्तु वह स्वयं सेवा करने के लिये तैयार है। उसे भुलावा देना उचित नहीं।"

नहीं, कवि ऐसी बात नहीं है। मेरी पुत्री भी इतनी ही बड़ी है। किन्तु उसे मैं कुछ बन्धनों के कारण अपना नहीं कह सकता। वह एक दिन रानी होगी। मैं उसके प्राप्य को अपनी कहकर क्यों बिगाड़ूँ। दूर से देखकर तुष्टि कर लेता हूँ। किन्तु उसे कुछ दे नहीं सकता। दिनेश को कुछ दकर अपने मन की पुष्टि करना चाहता हूँ। तुम आपत्ति कर रहे हो।

"आपत्ति नहीं महामंत्री—यह मोह है।"

"दान का मोह" रमणी बाबू बोल उठे।

"बहुत बड़ा प्रश्न है। किन्तु मृत्यु का भी मोह होता है। आज के तीसरे दिन राजमत्री के न्याय में उसकी भी पुष्टि हो जायगी।"

"रानी तारा, प्रेमा, और सभी इष्ट मित्र रहेंगे। कवि बिना तुम्हारे मेरा न्याय अधूरा रहेगा। कवि, सन्यासी और तपस्वी की तिथि निश्चित नहीं रहती। इसीलिये प्रार्थना करने के लिये उपस्थित हुआ था।"

"मैं अवश्य उपस्थित रहूँगा। आप लोग विश्राम करें।"

— — —

१६

महारानी तारा का प्राचीन मन्दिर ही पुजारी के न्याय के लिये चुना गया था। अतः उस भग्न मन्दिर में ही न्यायालय का सम्पूर्ण आयोजन किया गया। सिंहासन पर महारानी तारा बैठी थीं। उनके निकट ही प्रेमा बैठी थी। महामंत्री निकट के न्यायासन पर विराजमान थे। उनके सामने कागज़ों का ढेर लगा था।

नियत समय पर पुजारी उपस्थित किया गया। दर्शकों की भीड़ लग गई। मंत्री का न्याय सुनने के लिये जगन्नाथपुरी निवासी उमड़ पड़े थे।

मंत्री ने कहा—पुजारी! कुछ कहना चाहते हो।

"नहीं।"

"तुम्हें हमारे न्याय में कोई संदेह है?"

"बिल्कुल नहीं। देशराज नहीं न्याय मंत्री न्याय कर रहा है। देशराज अन्यायी हो सकता है किन्तु राजमन्त्री अन्याय नहीं कर सकता।"

"मैं रानी से आज्ञा चाहता हूँ कि न्यायालय के नियमानुसार अभियुक्त के विरोध में लगाए गये अभियोगों को घोषित करूँ।"

रानी—तथास्तु।

मन्त्री—त्रिकम साहदेव महाराज जयगढ़ की हत्या इसी मन्दिर में अर्धरात्रि में विष देकर इसी पुजारी ने की है। कवि इसके लिये साक्षी है।

पुजारी ब्राह्मण नहीं यह शूद्र है। इसने कवि के समक्ष स्वीकार किया है। ब्राह्मण न होने के कारण मन्त्री और रानी दोनों पुजारी को क्षमा नहीं कर सकते। मन्त्री उन्हें प्राणदण्ड देता है।

चोबदार ने डंके पर तीन बार चोट की।

मन्त्री ने पूछा—क्या है ?

भीड़ से आवाज आई—कवि कुछ कहना चाहता है। कवि ऊपर आ गया।

"कुछ कहना है कवि।" मन्त्री ने कहा।

"फाँसी कब होगी ?" कवि ने पूछा।

"वह देखो फन्दा झूल रहा है।" मन्त्री ने कहा।

"किन्तु राज नियम है कि यदि कोई किसी के लिये फाँसी चाहता हो तो उसको बदले में फाँसी देकर मुक्त किया जा सकता है। राजनियम की १९३वीं धारा में ऐसा बिधान है।"

"किन्तु राजद्रोही महान् पापी है। उसके लिये मरने को कोई तैयार नहीं होगा। यही कारण है कि उसकी घोषणा नहीं की गई।" मन्त्री ने कहा।

"आपका अनुमान ठीक नहीं।" कवि ने कहा।

क्यों ?

"वह मेरा मित्र है।"

उसके बाद कवि सिंहासन के निकट जाकर बोला—प्रेमा ! मैं आ गया। अन्तिम बार मिलने को मैंने वचन दिया था। जा रहा हूँ।

कवि ने नीचे आते ही फाँसी का फन्दा अपने गले में डाल लिया और उसने पैर से नीचे के पटरे ढकेल दिये।

प्रेमा तड़पकर बेहोश हो गई। वह मर चुकी थी।

दिनेश, बद्रीदत्त, रमणी बाबू, बुड्ढा, रानी, महामन्त्री, सब चकित थे।

रमणी बाबू ने कहा—रूप।

महामन्त्री ने कहा—ईश्वर।